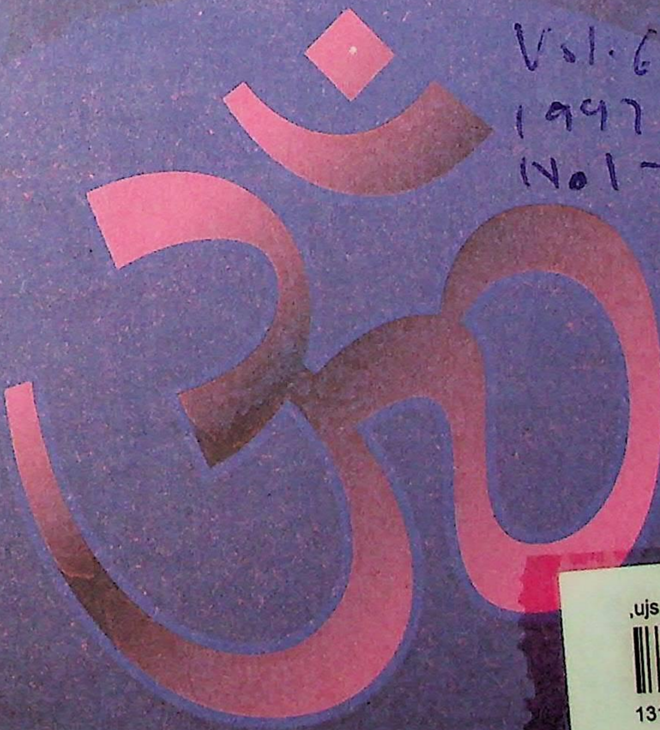
131670



अगस्त 1997
ज्योति-पर्व विशेषांक

साधन

संस्थापक -
समर्थ गुरू परम सन्त डा. चतुर्भुज सहाय जी





रामाश्रम सत्संग, मथुरा

❖

भूतपूर्व संरक्षक एवं सम्पादक
परम भागवत पण्डित मिहीलाल जी

निवर्तमान संरक्षक
ब्रह्मलीन परमसन्त श्री डा. बृजेन्द्र कुमार जी

निवर्तमान सम्पादक
ओम प्रकाश 'विरल'

❖

आनरेरी सम्पादक परिवार

सम्पादक
डा० नरेन्द्र कुमार

सह-सम्पादक
कृष्णाकान्त शर्मा

उप सम्पादक
मधुवन प्रसाद यादव
रुद्र प्रसाद मिश्र

प्रबन्ध सम्पादक
आलोक कुमार

❖

साधन

ज्योति पर्व विशेषांक

अगस्त - १९९७

इस अंक में

क्या — कह



साधन

यो भूतं च भव्यं च सर्व यश्चधितिष्ठति।
स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥

-अथर्व0 10/8/1

जो अर्न्तयामी प्रभु भूत, भविष्य और वर्तमतान का स्वामी है उस कैवल्य रूप आनन्दकन्द परमात्मा को मैं (सप्रेम) प्रणाम करता हूँ।

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

ज्योति पर्व विशेषांक

वर्ष : 65
अकं : 1

(अगस्त - 97)

वार्षिक मूल्य : रु०-60.00
इस अंक का : रु०-12.00

विनय

"मैं" और "तू"

मैं अनाम हूँ, तू है नामी । मैं हूँ सेवक, तू है स्वामी॥
दीन-दुखी मैं, दीनबंधु तू। दयापात्र मैं, दयासिन्धु तू॥
भीतिग्रस्त मैं, तू भयहारी। तिमिरयुक्त मैं, तू तिमिरारी॥
ज्ञानरूप तू, मैं अज्ञानी । लहर रूप मैं, तू है पानी॥
याचक हूँ मैं, तू है दाता। ज्ञानदृष्टि दे, हे जगत्राता॥
माया का, आवरण हटा दे। 'मैं-तू' का यह भेद मिटा दे॥

-श्री बालकृष्ण जी गर्ग

सम्पादकीय

साधन के पैंसठवें जन्म दिन पर हम आपकी सेवा में ''ज्योति पर्व'' विशेषांक प्रस्तुत कर रहे हैं। विशेषांक का ज्योति पर्व नाम व कुछ रुप रेखा तो परम पूज्यं विरल जी द्वारा तैयार की गई थी, लेकिन उनके अचानक गुरुधाम चले जाने के कारण, वह इसे मूर्त रूप में प्रस्तुत नहीं कर सके। वे कैसे इसे प्रस्तुत करते इसकी तो हम कल्पना भी नहीं कर सकते। वे तो गुरु महाराज के दरबार के चमकते हुए रत्न थे। बस उनका ही नाम लेकर प्रयास कर रहे हैं। अभी एक भाई ने प्रश्न किया था कि रामाश्रम सत्संग की प्रमुख देन मानव समाज को क्या हैं।? परम पूज्य पंडित जी महाराज कहा करते थे कि परमात्मा कुछ मुक्त आत्माओं को संसार में भेजते हैं, और आज्ञा देते हैं कि लोगों के हृदयों में जो धर्म, ईमान, ऊँच नीच आदि के कारण घृणा की दीवारें बन गई है उन्हें ढहा दो। जन साधारण को एक स्थान पर खड़ा कर दो। सब के हृदय धो दो। लेकिन बहुत कम लोग ही ऐसा कर सके। गुरु महाराज उन्हीं मुक्त आत्माओं में से एक थे जिन्होंने पूरे समाज को उठाने का प्रयास किया। आज समाज में अनेक मत, अनेक सम्प्रदाय अनेक जातियाँ। एक जाति में अनेक उपजातियाँ। सबके ईश्वर अलग-अलग सबकी मान्यताऐं अलग-अलग कोई कहता है स्त्रियाँ शास्त्र नहीं पढ़ सकतीं। कोई कहता है इस जाति के लोग मन्दिर में जाकर भगवान के दर्शन नहीं कर सकते। कई प्रकार की विचारों की दीवारें सबको अलग-अलग किए हुऐ हैं। कोई कहता है मेरा परमात्मा श्रेष्ठ है। बस इसी पर लड़ाई। लाखों लोगों का खून बह गया। इतिहास उठा के देखें तो जितना खून धर्म के नाम पर बहा है उतना राज्य या सम्पत्ति के लिए नहीं। गुरु महाराज ने सारी मानवता का एक साथ उद्बोधन किया अरे-भाई उस सत्य को जानने के लिए एक बार मेरे पास तो आजाओ। मैं कोई पीर पैंगम्बर नबी या अवतार नहीं हूँ; आपके समान ही साधारण व्यक्ति हूँ। मैंने एक रास्ता पालिया हैं उस सत्य को जानने का। आओ में आप को भी दिखलाता हूँ। उस रास्ते पर चलोगे तो वास्तव में सत्य क्या है, जानजाओगे और तुम्हारी प्यास एवम् संघर्ष समाप्त हो जाऐंगे आज तक तुम अपने अहम् के प्रकाश में अपने को देखते रहे हो आज इस आत्मा के प्रकाश में अपने की देखो तो तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर मिल जाऐगा। तुम्हारी सारी शंकाओं का समाधान हो जावेगा।

गुरु महाराज ने अलग से कोई परमात्मा नहीं दिया। कोई परमात्मा राम को मानता हैं, कोई कृष्ण को, कोई शिव को मानता है कोई अल्लाह या गॉड को। उन्होंने यह भी नहीं कहा कि आप राम को छोड़ कर कृष्ण का ध्यान करो या शिव को छोड़ कर अल्लाह का ध्यान करो। उन्होंने बड़ी शास्त्रोक्त एवम् वैज्ञानिक पहुँच पूर्ण परमात्मा को जानने की विकसित की। आज विज्ञान का युग है। विज्ञान का सत्य केवल सत्य ही चाहता है। अतः परमात्मा क्या है उसे शास्त्रों के अनुसार ही मत मानो। अपने हृदय में एक प्रयोग करो और उस परमात्मा को समग्र रूप से जानो। शास्त्रों ने परमात्मा को जानने के लिए धारणा 'ध्यान' और समाधि लिखी है। उस परमात्मा का पूर्ण ज्ञान तुम्हें ध्यान या समाधि की अवस्था में मिलेगा। यदि आप धारणा में ही संघर्ष करते रहे तो ध्यान और समाधि में कैसे जाओगे। यदि जाग्रत में ही संघर्ष है तो निद्रा कैसे आवेगी। उन्होंने कहा भाई धारणा में आप के जो भी इष्ट है उन्हें ले लो लेकिन इसके आगे ध्यान और समाधि में जाओ। धारणा में आप अलग-अलग रह्रेंगे लेकिन जहाँ ध्यान और समाधि में जाओगे सब एक। जाग रहे है तब तक हम और आप सब अलग हैं। अगर निद्रा में चले गये तब सब एक। धारणा के आगे ध्यान में जाओगे तो वहाँ तुम जानोगे राम क्या है कृष्ण क्या है शिव और आत्मा क्या है। वहाँ सारे संशय भिट जावेंगे। अब तक तो आप कहते ही रहे हैं- अल्ला ईश्वर तेरे नाम लेकिन अब आप देखोगे कि सब एक ही है। यहाँ सर्वत्र वही है, वही परमात्मा अनेक रूपों मे नाना प्रकार के कार्य कर रहा है। यहाँ सारे संशय समाप्त हो जाएगे सारे संघर्ष समाप्त हो जाएगे। आपको समाधान मिल जाएगा।

गुरु ज्ञान नहीं वल्कि प्रकाश देता है। ज्ञान तो हर व्यक्ति के अन्तर में है लेकिन वहाँ अंधेरा है अतः वह अपने अन्दर भरे ज्ञान को पढ़ नहीं पाता। लेकिन जब गुरु का प्रकाश अन्तर में पहुँचता है तब वह इस ज्ञान को स्वयं पढ़लेता है।

ज्योतिर्मयं पूर्णमनन्तशक्तिः; संसारसारं हृदयेश्वरं च।
विज्ञानरूपं सकलार्तिनाशम्; श्री सत्यदेवं नितरां नमामि॥
स्नेहं दयां वत्सलतां विधाय; चितं प्रमुग्धं कृतमत्र येन।
तं दीननाथं भव सिन्धुपोतम, श्री सत्यदेवं नितरां नमामि॥

गुरु पूर्ण प्रकाशवान है सम्पूर्ण ज्ञान का आगार है। इन सबसे आगे वह स्नेह दया एवम् वत्सलता का भंडार है। सम्पूर्ण ज्ञान के साथ-साथ उसमें दया है ममता है। ऐसे पूर्ण गुरु का यह दरबार है। यहाँ आपका भी स्वागत है आप चाहे किसी धर्म या सम्प्रदाय के हों आप सभी आयें। क्योकि-

सबके लिए खुला यह दरबार ही ऐसा है।
कोई भी चला आऐ यह द्वार ही ऐसा है।



श्री गुरुमहाराज जी के शब्द

अधिकारी

ईश्वर के लिए तड़प होना तथा आत्मिक उन्नति की चाहना रखना अधिकारी का लक्षण है। जिसने न तो अभी तक किसी को गुरु बनाया है और न कोई साधन किया है परन्तु चाहता है कि इस मार्ग में लगूँ उसका नाम "अधिकारी" है। शिक्षक के मिल जाने पर ऐसा मनुष्य साधन में जुट पड़ता है और अपना काम बना लेता है।

यह सब बातें हमने इसलिए कहीं हैं कि आप लोग अपने लिए अंदाजा लगा सकें कि अभी आप इनमें से किस दर्जे पर हैं। आप सब अपने को सतसंगी कहते हैं परन्तु मैं सत्संगी उसको समझता हूँ कि जो सत् के ग्रहण और असत् के त्याग के लिये गुरुमत से काम करै।

गुरुमत उस शिष्य को कहते हैं जो मन-वचन और कर्म से गुरु की आज्ञा ही में चले अपनी समझ से कोई काम न करै।

आजकल मनमत का इतना जोर है कि प्रत्येक शिष्य इस बात का इच्छुक रहता है कि हम जो चाहते हैं उसी के अनुसार गुरु बतलावें और हमारी ही हाँ में हाँ मिलावें, ज़रा से भी उसके विरुद्ध न जाँय। यदि कोई बात ऐसी बतादी जावे कि उनकी समझ में ठीक न हो तो उसको हरगिज करने को तैयार नहीं होते यह सब मनमत कहलाते हैं।

मेरे प्यारो! यदि इस सत्संग में सम्मिलित होने की गरज तुम्हारी इतनी ही है कि आँख बन्द करके शिर औंधा लें तो मैं कहूँगा कि तुम अभी मनमत ही हो जब तक कि यहाँ के बाहिरी नियमों को भी पालन न करो। यहाँ के सिद्धान्त यह है कि निष्कामता के साथ अभ्यास करो और सबकी सेवा करने के लिए हर समय उद्यत रहो। मनुष्य मात्र की सेवा करना ही ईश्वर की पूजा है, इसका बड़ा अच्छा फल मिलता है। जो सच्चे हृदय से सेवा करता और सेवा लेने से बचता है वही परमात्मा का प्यारा बनता है। अपने लिए कुछ न करो जो कुछ भी हो तुम्हारा दुसरों के लिए हो। लगलिपट के आत्म उन्नति कर डालो फिर उसका संसार में प्रचार करो आजकल अंधकार बहुत छाया हुआ है। इसको अपने ज्ञान के प्रकाश से छाँट डालो और भूले भटके मनुष्यों को ईश्वर की ओर ले जाओ। इस कर्त्तव्य को ध्यान में रक्खो। परमात्मा तुम्हारी सबकी सहायता करेगा। ओम् शम्।

प्रेषक - ललित कुमार

गृहस्थो! उठो और चलो

–श्री गुरुदेव

हम दो चीजों के बने हुए हैं-एक स्थूल शरीर और दूसरी आत्मा। शरीर जिससे शक्ति लेकर काम करता है वही आत्मा है। शरीर में जड़ परमाणु हैं और आत्मा चेतन है। हमारा ध्येय यह होना चाहिए कि दोनों को ही बलवान बनायें। शरीर रोगी होने पर उसका उपाय करते हैं, इसी तरह आत्मा के ऊपर के काले पर्दे को हटाना है। इस पर्दे को हटाने की जो क्रियायें हैं उनको ही 'साधन' बोला जाता है। हमको और कुछ नहीं करना है, अंतःकरण से धूल और गुबार को हटा के उसे साफ कर देना है। शुद्ध अंतःकरण ही विम्ब ठीक ले सकता है और हमको ईश्वर का साक्षात्कार करा सकता है।

हमारी दशा

हमारी बुद्धि ऐसी हो गयी है कि जिस दयनीय दशा में पड़े हैं उसी में रहना पसन्द करते हैं। हमको सुख और शान्ति की तलाश तो है पर जिस रास्ते पर चलने से वह हमको प्राप्त हो सकेगी, उस पर जाने को तैयार नहीं होते। जिस दलदल में फँसे हुए क्लेश भोग रहे हैं, उससे निकलना नहीं चाहते। काँटे चुभ रहे हैं, त्वचा से खून निकल रहा है, पीड़ा हो रही है पर उस कँटीले जंगल से निकलना नहीं चाहते। उसका कोई उपाय न सोचते हैं न करते हैं।

मनुष्य अपने को विद्वान और ज्ञानवान समझता है। पर यह कैसा ज्ञान है, कैसी समझ है जो हानि-लाभ, सुख-दुःख को भी नहीं विचार सकता। ऐसों को क्या उपाधि दी जाय। अपना कल्याण किसमें है, जो इस बात को सोचता है वही वास्तव में मनुष्य है।

मन

शरीर और आत्मा के बीच में एक तीसरी शक्ति है जिसे मन कहते हैं। मन की शक्तियाँ ही प्राणी को उठाके आत्मा तक ले जाती हैं और मन की शक्तियाँ ही प्राणी को उठाके नीचे संसार में गिराती हैं। मन के बिना हम ईश्वर तक भी नहीं पहुँच सकते। यही वह घोड़ा है जो अपनी पीठ पर सवार कराके भगवान के दरबार में पहुँचता है। हमारा मन रूपी घोड़ा स्वतंत्र हो गया है। वह हमारे काबू से बाहिर चला गया है। उस पर अधिकार करना है। उसे 'संयम' में लाके उससे काम लेना है। जिन उपायों से मन पर अधिकार जमाया जाता है उसका ही नाम 'साधना' है।

'साधना' में हमको मन से रजोगुण व तमोगुण का प्रभाव हटाके उसे सतोगुणी बनाना है। सत् की प्रधानता आने पर साधना समाप्त हो जाती है, साधक सिद्ध बन जाता है और बिना कोशिश के वह आगे बढ़ता जाता है।

गुरु

साधना के लिए हमें किसी ऐसे पुरुष से मिलना चाहिए जो अपने को सत् प्रधान बना चुका हो, ऊर्ध्वगामी हो चुका हो। ऐसे पुरुष के मिल जाने पर उससे उसकी क्रिया पूछनी चाहिए, उसकी बात पर विश्वास करना चाहिए और फिर उस पर अमल करना चाहिए। उनकी आज्ञानुसार चलने में थोड़ी कठिनाइयाँ हमको आती है। उनको बारम्बार ठीक करना ही अभ्यास कहलाता है। अभ्यास कभी बनता है कभी बिगड़ता है, इसकी परवाह न करते हुए साधक को अपनी कोशिश जारी रखनी चाहिए। वह अवश्य एक दिन ठीक हो सकता है। जो लोग लगन के साथ अभ्यास में जुट पड़ते हैं, वह कामयाब होते हैं और जो लापरवाही और ढीलेपन से काम करते हैं, उन्हें देर लगती है, फेल हो जाते हैं।

गुरु करने में जल्दी नहीं करनी चाहिए, उसे खूब परख लेना चाहिए, कि वह इस विद्या का जानकार है या

नहीं। ऐसों की संगत में बारम्बार बैठने, उनसे मिलते रहने और उनका व्यवहार देखने से पता चल सकता है कि वह किस श्रेणी का आदमी है। व्यवहार से परमार्थ का पता लगता है। व्यवहार की जाँच कुछ काल में हो जाती है। उस समय तक उसकी बताई हुई क्रिया को करते रहना चाहिए।

गृहस्थ-धर्म

गृहस्थों के ऊपर अपने बाल-बच्चों के पालन-पोषण का भी भार होता है, उसके लिए उन्हें कुछ धन्धा भी करना लाजिमी है। स्वभाव ऐसा बनाना चाहिए कि जिस समय भजन हो उस समय दिल में व्यावहारिक बातों की याद दिल में न आने पावे। अपने इष्ट में ही पूरे तौर पर ध्यान रहे। जब उसे निवृत्ति हो जाय तो व्यावहारिक कामों में तन-मन से जुट जाना चाहिए। भले ही व्यावहारिक कामों में हमें ईश्वर की याद न रहे, इससे कोई हर्ज नहीं होता। धीरे-धीरे ऐसी आदत बन जाती है जिसमें दोनों काम साथ चलते रहते हैं। आरम्भ में दुनिया नहीं रहनी चाहिए।

हमारा लक्ष्य केवल ईश्वर को राजी रखना और उसकी मर्जी पर चलना है। उसके दयापात्र बनने के लिए बाहिरी और अन्तरीय दोनों की ही शुद्धि की जरूरत है। दूसरों के प्रति हमारा व्यवहार अच्छा और पवित्र हो, धर्मशास्त्र के अनुकूल हमारा आचरण हो, सच्चाई, ईमानदारी, दया और सेवा स्वभाव से हमारे कर्मों, में होना चाहिए। व्यवहार में चालाकी मक्कारी नहीं होनी चाहिए। इससे परमार्थ में उन्नति होती है।

स्त्री, बच्चे, कुटुम्बी, पड़ोसी वल्कि मनुष्य मात्र के लिए हमें यह देखना चाहिए कि उनका क्या हक है और वह हमसे ठीक तरह से पहुँचता है या नहीं। व्यापार, नौकरी, अतिथि-सत्कार, दुखियों की मदद, अनाथ और विधवाओं की सहायता में हम धर्म के अनुसार चल रहे हैं या नहीं. झूठ, मक्कारी, दगाबाजी, चालाकी, चोरी, पर निन्दा इत्यादि त्याज्य कर्म तो हमसे सरजद नहीं हो जाते। यह सब बाहिरी बातें हैं जिन पर चलने से भगवान प्रसन्न होते हैं और अभ्यास में उन्नति होती है।

ईश्वर में पूर्ण श्रद्धा होना, उससे हर समय डरते रहना ताकि कोई बुरा कर्म न हो, '' उसकी '' याद किसी समय भी न भूले-इसकी कोशिश करना, दुनियाँ का लगाव दिल से कम होना, भगवगान ने जितना दिया है और जैसे वह रखना चाहता है उसी में राजी रहना, अधिक तृष्णा न करना और जो कुछ उद्योग करने पर मिला है उसी में सन्तोष रखना, क्रोध को रोकना, अपने को बड़ा न समझना, दूसरों को हकीर (अत्यन्त छुद्र) न जानना, दिल में किसी से द्वेष न रखना, संध्या और भजन के समय दिल को हाजिर रखना, उसको भटकने न देना, धर्म के कामों में रुचि होना इत्यादि यह सब अन्तर की बातें हैं, जिनकी बहुत जरूरत है। इनके बिना साधना पूरी नहीं होती।

जिस तरह बाहिरी कर्मों के सुधारने की आज्ञा है वैसे ही भीतरी विचारों के शुद्ध रखने का हुक्म है। क्योंकि विचार गन्दे होने पर शारीरिक कर्म भी ठीक नहीं होते। विचार में कमी आते ही इन्द्रियों के व्यापार ढीले पड़ जाते हैं। जैसे श्रद्धा या मुहब्बत की कमी हो तो भजन ठीक नहीं हो सकेगा।

जो साधक गुरु की देखरेख में चलके अपने अन्दर बाहिर को सम्हाल लेता है उस पर परमात्मा राजी हो जाता है, उसकी नजदीकी हो जाती है, उसे दर्शन सुलभ हो जाता है। वह अपने असली मकसद को पा लेता है।

परमार्थ और व्यवहार

भजन पूजन ओषधि है और उत्तम व्यवहार पथ्य। जो रोगी दवा पीता जाय और परहेज न करे उसे रोग से छुटकारा कौन दिला सकता है? इसी प्रकार जो परमार्थ, और व्यवहार को अलग-अलग समझता है, वह धर्मरूपी शरीर के एक अंग को सड़ा डालता है और कभी ईश्वर दर्शन नहीं कर पाता।

समझो! तुम दारुण भव रोग के शिकार हो चुके हो, इसलिए तुम्हें अशान्ति और कष्ट हो रहा है यदि सुख और शान्ति का जीवन बिताना चाहते हो और यदि भगवान के कृपापात्र बनना चाहते हो तो भजन रूपी ओषधि घट में उतारो, व्यवहार रूपी परहेज ठीक करो, गृहस्थ जीवन में ही तुम पर प्रभु दया करेंगे, राजी होंगे व दर्शन देंगे।

साधना का उद्देश्य

-दादा गुरु के शब्दों में

(परम पूज्य श्री महात्मा रामचन्द्र जी महाराज हमारे समर्थ गुरुदेव के गुरु थे। इसी से उनकी महानता व पूर्णता का अन्दाज लगाया जा सकता है। उन्हीं के शब्दों में पाठक पढ़ें साधना का उद्देश्य-सं०)

"जियादा जमाअत ऐसे लोगों की है जो परमार्थ के असली रूप को नहीं समझते और न समझने की कोशिश करते हैं। इस रास्ते पर चलने वाले लोग अच्छी और बुरी हजारों उम्मेदों को बाँध कर रवाना होते हैं, इन्हीं के कारण वह बजाय उत्तर की सुहावनी बरफानी घाटियों में पहुँचने के दक्खिन के रेतीले मैदानों में जा गिरते हैं। यह सब इसलिए होता है कि हम हजारों दुनियावी उम्मीदों की गठरी सिर पर लाद के ऊँची चढ़ाई पर चढ़ रहे हैं, इसलिए साँस फूलता है, पाँव लड़खड़ाते हैं, और करीब है कि ओंधे मुँह खन्दक (खाई) में जा गिरें। अच्छा यह है कि अब भी इस बोझा (आशाओं) को उतार के अलग फेंक दें और सावधानी से फिर चढ़ाई शुरु कर दें। आओ। देखो कि रास्ता क्या है, मकसद या मुराद (अभिप्राय) क्या है और मकसद के पाने का जरिया क्या है,? मकसद और जरिया में भेद है? देखना यह है कि हम जरिया को मकसद मानकर चल रहे है या मकसद को ही मकसद समझकर?''

जरिया के अर्थ साधना है और मकसद अन्तिम पद को कहते हैं। पन्थ का भेद या असली रास्ता यह है कि दिल लालसाओं से बिल्कुल साफ रहे। अभ्यास करने वालों में ऐसी इच्छा होना कि आगे पीछे के हालात मालूम होने लगें, अथवा ऐसी सिद्धियाँ आजायें जिससे अद्भुत बातें दृष्टिगोचर हों, जिससे महिमा फैले और प्रतिष्ठा हो, बुरा है।

इस रास्ते में तो यह वायदा भी नहीं किया जाता कि किसी के गुनाह माफ करा दिये जायेंगे, अथवा कयामत में उनको बख्श दिया जायेगा।

दुनिया के काम निकलवाने का वायदा भी नहीं किया जाता। ताबीज-गण्डे, दुआ से काम निकलवाने, मुकद्मात में जीतने, रोजगार या व्यापार में तरक्की होना, झाड़-फूँक से बीमारी दूर करना, भविष्य की बात बतला देने इत्यादि से इस मार्ग का कोई सरोकार नहीं है।

न ऐसी अन्तरीय कैफियतों (अनुभव) के पैदा होने की कोई मियाद है कि आज से ही संध्या पूजन के समय वह डूबा रहे और आनन्द में सराबोर रहे, अपने व पराये की खबर न रहे।

न यह ही उम्मीद है कि तुम्हारे स्वप्न या अनुभव बिल्कुल सही ही उतरेंगे! ईश्वरीय दया व कृपा से तुम्हें जल्दी ऐसा होने लगे तो यह तुम्हारा भाग्य है और इसमें आश्चर्य करने की भी गुञ्जायश नहीं है।

ऐसी आशायें बाँध के सत्सङ्ग में शरीक होना और अभ्यास में कदम रखना नादानी है। हमारा लक्ष्य केवल ईश्वर को राजी रखना और उसकी मर्जी पर चलना है। वह हमसे कैसे राजी रहेगा, कैसे वह हमारे ऊपर कृपा करेगा इसी एक बात पर विचार करना है।

उसके दया पात्र बनने के लिये बाहरी और अन्तरीय दोनों शुद्धि की जरूरत है। दूसरों के प्रति हमारा व्यवहार अच्छा और पवित्र हो, धर्मशास्त्र के अनुकूल हमारा आचरण हो, सच्चाई, ईमानदारी, दया और सेवा स्वभाव से हमारे कर्मो में होना चाहिये। स्त्री, बच्चे, कुटुम्बी, पड़ौसी बल्कि मनुष्य-मात्र के लिये हमें यह देखना चाहिये कि उनका क्या हक है और वह हमसे ठीक तरीके से पहुँचता है या नहीं। व्यापार, नौकरी, अतिथि सत्कार, दुखियों की मदद, अनाथ और विधवाओं की सहायता से हम धर्म के अनुसार चल रहे हैं या नहीं, झूठ, मक्कारी, दगाबाजी, चालाकी, चोरी, परनिन्दा इत्यादि त्याज्य कर्म तो हमसे सरजद नहीं हो जाते। यह सब बाहरी बाते हैं जिन पर चलने से भगवान प्रसन्न होते हैं और अभ्यास में उन्नति होती है।

कुछ ऐसी बातें हैं जो अन्तर की हैं। उन्हें भी समझ लेना चाहिये ताकि साधना में आगे बढ़ सको। वह है ईश्वर में पूर्ण श्रद्धा होना, उससे हर समय डरते रहना ताकि कोई बुरा काम न हो। उनकी याद किसी समय भी न भूले इसकी कोशिश करना, दुनिया का लगाव दिल से कम होना, भगवान ने जितना दिया है और जैसे वह रखना चाहता है, उसमें राजी रहना, अधिक तृष्णा न करना और जो कुछ उद्योग करने पर मिला है उसी में सन्तोष रखना, क्रोध को रोकना, अपने को बड़ा न समझना, दूसरों को हकीर (अत्यन्त क्षुद्र) न जानना, दिल में किसी से द्वेष न रखना, संध्या और भजन के समय दिल को हाजिर रखना, उसको भटकने न देना, धर्म के कामों में रुचि होना इत्यादि। यह सब ऐसी बातें हैं जिनकी सालिक या पन्थाई के लिए बहुत जरूरत है, इसके बिना साधना पूरी नहीं होती।

जिस तरह बाहरी कर्मों के सुधारने की आज्ञा है वैसे ही भीतरी विचारों के शुद्ध रखने का हुक्म है क्योंकि विचार में कमी आते ही इन्द्रियों के व्यापार ढीले पड़ जाते हैं। जैसे यदि श्रद्धा या मुहब्बत की कमी हो गई तो भजन कभी ठीक नहीं हो सकेगा। अब्बल तो ऐसा आदमी करेगा ही नहीं और अगर किसी तरह दिल मसोस के किया भी तो उल्टा-सीधा, जल्दी-जल्दी कर लेगा जिससे कोई फायदा नहीं होगा। भगवान के हेतु कमाई का कुछ भाग निकालना और उसे श्रेष्ठ धर्म कार्यों में खर्च करना भी गृहस्थ का कर्त्तव्य शास्त्रों ने बताया है। पर लोभी उसे नहीं निकाल सकता, सारी आमदनी या तो जोड़ता है या अपने ऐश आराम में खर्च कर डालता है, यह पाप है, उससे धर्म ही का नाश नहीं होता बल्कि उस पापी पर आगे चलके अनेक संकट आ गिरते हैं और वह पैसा अपने साथ दूसरे धन को भी लेकर उन्हीं में निकल जाता है। यज्ञ-तप और दान यह तीनों धर्म के सत्कर्म माने जाते हैं। ऊपर के सब काम यज्ञ व तप है और शुभ कर्मो में पैसा लगाना दान है, इन दोनों के बिना कल्याण नहीं होता।

अगर कोई आदमी बाहरी कर्म करने में अहतियात करले तो भी जब तक मन की दुरुस्ती और सम्हाल नहीं होगी, उसका काम न तो पक्का होगा और न अधिक काल तक ठहरेगा। वक्त पर मन धक्का देगा और गलती हो जावेगी। इसलिए सबसे जरूरी मन की साल-सम्हाल है।

लेकिन यह अन्दर की खराबियाँ जरा समझ में कम आती हैं। और समझ में भी आ जाती हैं तो उनकी दुरुस्ती का तरीका और ढंग मालूम नहीं होता अगर ढंग मालूम भी होते हैं तो मन की खींचा-तानी के कारण उन पर अमल करना मुश्किल होता है। इसलिए इन जरूरतों के लिहाज से पीर कामिल यानी आदर्श गुरु की तजबीज की जाती है।

गुरु इन सारी बातों को समझकर शिष्य को खबरदार करता है, उसकी देख भाल रखता है। इनके इलाज और तदवीरें बतलाता है। मन की दुरुस्ती के लिए योग्यता, इलाज में सरलता, और क्रियाओं में शक्ति पैदा करने के लिए कई प्रकार के जाप, अभ्यास और साधनाओं की तालीम करता है। इन्ही सब कामों के लिए गुरु धारण करना पड़ता है।

● ● ●

समर्थ गुरु श्री महात्मा रामचन्द्र जी महाराज के शब्दों में-प्रेमी प्रबुद्ध पाठक पूज्य गुरुदेव के इस उद्बोधन के अगले क्रम में-पढ़ें कि 'साधना का उद्देश्य' क्या है। मनन करें व अपने जीवन में उतारें। अपने हृदय में गहराई से देखें कि हम यहाँ किस लक्ष्य को लेकर आये हैं।-सं०

मेरे गुरुदेव

-ब्रह्मलीन परमभागवत श्री पं० मिहीलाल जी

उन सद्गुरु की महिमा कौन कह सकता है कि जिनके दर्शन भाव से ही जीवन भव-बन्धन से मुक्त हो, आनन्द के सुन्दर सुदेश में विश्राम पाता है। उनके भावपूर्ण उपदेश संसार के तप्त जीवों को अमृत की वर्षा का कार्य करते हैं और अनेक जन्मों की कालिमा को प्रकाश के रूप में बदल देते हैं।

वे मनुष्य धन्य हैं जिन्हें जीवन में गुरु दर्शन प्राप्त हुआ और वह तो महान ही धन्य हैं जिन्होंने अपने गुरु के पद्म रूपी चरणों की धूलि (पराग) अपने मस्तक पर धारण कर ली। श्री चरणों की उस रज का महत्व किसी-किसी ने ही जान पाया है।

यह ध्रुव सत्य है कि जैसे माता के बिना संसार में प्राणी आ नहीं सकता, इसी प्रकार बिना गुरु के इस महान सांर से पार भी नहीं जा सकता, चाहे वह करोंड़ों जन्म धारण करे। यह ठीक ही कहा गया है।

''न गुरोरधिकं तत्वं न गुरोधिकं तपः।''

गुरु से बढ़कर संसार में कोई तत्व नहीं है, गुरु से बढ़कर कोई तप नहीं है। श्री गुरु को इतना महत्व देने का कारण यही है कि गुरु से ही परम ज्ञान की उपलब्धि होती है जिस ज्ञान की विशेषता को शास्त्रकारों ने ब्रह्म-प्राप्ति या ब्रह्म-साक्षात्कार का मुख्य कारण माना है।

तुम जानते हो सत्य एक है, वही धर्म है। जब प्राणी सत्य मार्ग को त्याग देगा तो असत्य की ओर जायेगा, अर्थात् सही और सुन्दर मार्ग से विमुख होगा। बस यही दुःख का हेतु बन जायेगा। सत्य मार्ग से अलग होना ही अधर्म पर चलना है। अतः जब-जब लोग धर्म को भूल जाते हैं और अधर्म पर चलने से दुखी होते हैं तो भगवान ही किसी मानव शरीर में आकर फिर धर्म का ज्ञान करा जाते हैं। वही अवतार कहलाते है और उन्हीं को हम लोग सन्त या सद्गुरु कहते हैं।

ऐसी ही एक दिव्य आत्मा नर शरीर में आई। उनका नाम परम सन्त श्री डॉ० चतुर्भुज सहाय जी था। मनुष्य की सन्तप्त दशा देखकर उनकी करुणा उमड़ आई और उन्होंने मानव मात्र को उनके आन्तरिक बन्धनों से मुक्त कर शान्ति प्रदान करने की ठानी। आपका कहना था कि पहले तुम अपने अन्तःकरण को शुद्ध करो। उसके शुद्ध होने ही से तुम्हें एक उज्ज्वल ज्ञान मिलेगा, जिसके प्रकाश में तुम अपने दुःखों को जानोगे और उनसे छूटने का प्रबन्ध भी स्वयं कर सकोगे। इसके लिए नित्य कुछ देर प्रभु की समीपता करो। दस मिनट भगवान के सामने बैठकर उनसे शक्ति प्राप्त करो। जब तक तुम ऐसा नहीं करोगे, स्वयं शक्तिवान नहीं हो सकोगे। शक्ति मिलते ही तुममें निर्भयता आयेगी, जिससे अत्याचारों से स्वयं बच सकोगे और दूसरों को भी बचा सकोगे।

प्रारंभ की कथाः- पूज्य गुरुदेव का जन्म पुण्य सलिला श्री भागीरथी के पास एटा के अन्तर्गत चमकरी गाँव में शुभ मिती कार्तिक शुक्ला चतुर्थी विक्रमी सम्वत् 1940 तदनुसार 3 नवम्बर 1883 में हुआ। यह स्थान गंगा और यमुना के बीच बसा हुआ है। चमकरी में आपके पूर्वजों की बड़ी प्रतिष्ठा थी। आपके पिता जी का नाम श्री लाला रामप्रसाद जी था। आपने कायस्थ वंश की कुलश्रेष्ठ शाखा को गौरवान्वित किया था। बालकपन में आपको कथा अथवा धार्मिक कहानी सुनने का बड़ा शौक था। जब कोई पण्डित कथा कहते तो आप अत्यन्त समीप बैठ ध्यान से सुनते रहते। स्वभाव बहुत शान्त था, एकान्तप्रिय था। एक ही बात पर बहुत देकर तक विचार करते रहते। प्रारंभिक शिक्षा आपको घर पर ही मिली।

जितनी रुचि आपको हिन्दी और संस्कृत से थी, उर्दू तथा अंग्रजी से नहीं थी। आपने ऐलेक्ट्रो तथा होम्योपैथी का ज्ञान प्राप्त किया। आपके पिता को आयुर्वेद चिकित्सा का अच्छा ज्ञान था। अतः आपको आयुर्वेद का भी अच्छा ज्ञान हो गया।

तब की बातें:- देश में इस समय एक संस्था आर्य समाज ही कुछ सुधार का कार्य कर रही थी। अतः आपने उसी में कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। शास्त्रों और धर्मग्रन्थों का ज्ञान अच्छा प्राप्त कर लिया था इसलिए संस्था के लोगों ने आपको अपना मार्ग दर्शक बना लिया। परन्तु जब वहाँ लोगों की भावनाएँ एक दूसरे के प्रति द्वेष की देखीं तो जी हट गया और आर्य समाज का काम करना छोड़ दिया। आप की हार्दिक इच्छा थी कि लोग आपस में प्रेम का बरताव करें, हिन्दू और मुसलमान लड़ें नहीं। उनका विचार था कि सम्प्रदाय दो भले ही हों परन्तु मनुष्य तो एक हैं। दोनों एक ईश्वर की सन्तान हैं।

आपने डाक्टरी का कार्य प्रारम्भ कर दिया जितने भी अस्वस्थ लोग आते, सब को ओषधि देते, उनकी सेवा करते, किसी ने जो दे दिया वही ठीक था। गरीबों और मुहताजों को दवा बिना मूल्य देने लगे। उनको भोजन-वस्त्र देना तो एक स्वाभाविक बात थी।

ऐसा ईश्वरीय नियम है कि जो जिस लगन में रहता है, भगवान उसे पूरा करते हैं। सन्तों के जीवन व उनकी सुहबत से आपको यह पता तो लग ही गया था कि शान्ति न तो धन में है, न वैभव में, न इस विद्या में है। वह तो बिना भगवान की शरण जाए, और बिना आत्म-ज्ञान के किसी प्रकार आ नहीं सकती और उसके लिए किसी सदगुरु के चरण पकड़ने होंगे। मनुष्य के अन्तर में जब प्रभु विरह की ज्वाला भड़क उठती है तो राज-पाट, धन-दौलत, माता-पिता, सगे-सम्बन्धी सब को छोड़ उससे मिलने के लिए वह आतुर हो उठता है और उसे पाकर ही शान्त होता है। इस विरह अग्नि को बुझाने के लिए यह पानी काम नहीं देगा, इसके लिए तो पानी और ही है। इसे वह या उसका अन्तर्यामी ही जानता है, तीसरा नहीं जानता। इसी वास्ते उसका प्रबन्ध भी परमात्मा ही करता है।

उन्ही के शब्दों में-'उन्हीं' के शब्दों में उनकी कहानी:- "मुझे अचानक गुरु महाराज के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मैं फतहगढ़ था और वह (महात्मा श्री रामचन्द जी महाराज) अलीगढ़ तहसील से बदलकर फतहगढ़ आए थे। इलाज कराने के बहाने उनसे मुलाकात हुई। परन्तु मैं नहीं पहचान सका कि यह उच्चकोटि के एक महात्मा हैं।"

"उनका मेरे ऊपर आन्तरिक प्रेम था। इसी भावना से प्रेरित होकर रात्रि के समय जब मैं सो जाया करता था मेरे ऊपर "तवज्जह गायबाना" (अज्ञात दशा में हृदय शुद्ध करना) का प्रयोग प्रारम्भ कर दिया और अनजान अवस्था में ही माया के कठिन दलदलों से पार करके सुन्दर तथा सुहावने अध्यात्म क्षेत्र में खड़ा कर दिया और उसी देश का अधिवासी बना लिया। यह बात मुझे कई मास पश्चात् ज्ञात हुई।"

"इतना कर चुकने के उपरान्त जब आपने खूब भली प्रकार अन्तर-क्षेत्र को मुलायम बना लिया, और बोने के योग्य हो गया तो एक दिन मुझे कुछ दूर एक सघन कुञ्ज में जो बड़ा हरा-भरा और गंगा के किनारे था, जहाँ एक छोटी सी कुटी थी, बैठा कर प्रथम पाठ दिया।"

"आपने कहा कि थोड़ी देर मुड़ के बिल्कुल मेरे मुकाबिल (सामने) हो जाओ ताकि जो अक्स पड़े ठीक तुम्हारे में उतरे। आँखें हलके से बन्द कर लो और अपने मन को देखते रहो कि वह क्या-क्या कर रहा है। अब मैं कुछ नहीं देख रहा था। केवल मन के कृत्यों को देख रहा था। आरम्भ में तीन-चार मिनट तक विचारों का ताँता लग गया। जब यह कुछ बन्द हुआ तो एक स्याह पर्दा सम्मुख आया। आगे चलकर वह फटने लगा। उसमें से एक चमकता हुआ सूर्य दिखाई दिया। अद्भुत् आनन्द प्रतीत हुआ। इस समय मुझे कुछ खबर नहीं थी। मस्ती की दशा बढ़ रही थी। इसके बार मुझे ऐसा लगा कि मैं किसी दूसरी दुनिया में हूँ। अनेक दिव्य लोक सामने थे। भिन्न-भिन्न प्रकार की दिव्य आत्माएँ सम्मुख दर्शन दे रही

थीं। अनेक प्रकार के दिव्य शब्द सुने जा रहे थे। आगे खिंचाव और बढ़ा और एक शक्ति का भास हुआ जो सबको चला रही है, सब पर उसका नियंत्रण है। सबकी अधिष्ठाता है- ऐसा जान पड़ा। किसी ने संकेत में कहा-यह ही सर्वशक्तिवान् ईश्वर है, यही खुदा है। इसी का नाम आदि प्रकृति, मूल-माया, सर्वेश्वरी जगदम्बा है शक्ति का दर्शन है। माया यहाँ से आगे नहीं जाती, प्रकृति का खेल यही समाप्त होता है। यही ब्रह्माण्ड की हद है।''

''यह सब चालीस पैंतालीस मिनट के अन्दर हो गया। जिन अवस्थाओं के लिए लोग तरसते हैं, जिनकी प्राप्ति के लिए जीवन भर पाँव रगड़ते हैं-वह प्रथम दिन ही मिल गयी। जो दर्शन जन्मान्तर में भी नसीब नहीं होते वह केवल गुरु-कृपा से मुझे प्रथम दिन ही मिल गए।''

आज्ञा पत्रः- पूज्य श्री महात्मा जी महाराज में आपकी श्रद्धा अटूट थी। आपने अपना सर्वस्व गुरु के चरणों में अर्पण कर दिया था। श्री महात्मा जी महाराज ने भी जल्दी ही कुछ कार्य आपके सुपुर्द कर दिया। सन् 1919 में ही उन्होंने लिखित रूप में एक आज्ञा-पत्र आपको दिया और लिखा कि इस कार्य में हाथ बँटाना भी तुम्हारे लिए आवश्यक है, साथ ही उनको इसके लिए शक्ति भी प्रदान की। उन्होंने यह भी कहा था-'' मैं यह सब काम अपना नहीं कर रहा। अपने गुरु महाराज का कर रहा हूँ। मै न रहूँ तो इस काम को तुम पूरा करना। मेरी आत्मा को इससे बढ़कर कोई दूसरी प्रसन्नता की बात नहीं होगी और यही मेरी दक्षिणा समझना। इसके लिए मैं हर समय तुम्हारी सहायता करूँगा।''

सेवक-भावः- बहुधा देखा गया है कि शिष्य अपने गुरु के ही लिए उनके जीवन काल तक ही सब कुछ करता है। फिर न तो वह गुरु-माता की चिन्ता करता है न उनके बच्चों को ही याद करता है। परन्तु आपकी ऐसी धारणा कभी नहीं हुई। जीवन भर यही कहते रहे कि मैं गुरु नहीं हूँ। गुरु तो और हैं। मैं तो उनकी तरफ से एक काम करने वाला उनका सेवक हूँ।

आपका कहना था कि उत्तम शिष्य वही है जो गुरु के शरीर न रहने पर भी उनका अभाव या उनको अनुपस्थित न समझे। फिर गुरु-पुत्रों का भी पूरा ध्यान रखे। कोई ऐसा कार्य न करे कि जिससे उनकी हानि या अपमान होता है।

आपका कहना था कि जब गुरु शरीर में नहीं रहते, तब वह उस ईश्वरीय अव्यक्त दशा में रहते हैं जहाँ देश काल और अवस्था की कोई रुकावट नहीं रहती। वह सदैव साथ रहते हैं।

प्रचार कार्य, व पुस्तकों का प्रकाशन

गुरु की आज्ञा पाकर आपने अपना समस्त जीवन प्रचार कार्य में लगा लिया। आपका नियम था कि जो अतिथि घर आ जाय, उसका पूरा सत्कार किया जाय। उदारता के तो आप एक उदाहरण थे। आपके प्रेमपूर्ण व्यवहार ने प्रचार-कार्य की नींव को और भी दृढ़ कर दिया। एक बात में आपका सिद्धान्त बड़ा सुन्दर था। वह शिष्यों से गुरु-शिष्य का नाता नहीं रखते थे। वह पिता और पुत्र का सम्बन्ध पसन्द करते थे, जिससे दोनों में घनिष्टता रहे, एक को दूसरे का हर समय ख्याल रहे। अपने सुन्दर व्यवहार से जिज्ञासु को अपनी ओर आकर्षित कर कुछ ही समय में अपना सारा ज्ञान उसके पात्र में उँडेल देते थे। ज्ञान डालने में देर नहीं होती, मनुष्य का मुख फेरने में समय लग जाता है।

आप कहा करते थे कि सबसे बड़ी पूजा (इबादत) गुरु का दर्शन और सबसे बड़ी तीर्थ यात्रा गुरु के घर तक जाना ही है। गुरु के सम्पर्क ने उन्हें कितना तेजस्वी बना दिया था, वह कैसे सौम्य मूर्ति थे कि चित्त बराबर उन्हें देखने ही को चाहता था।

सन् 1930 में एटा में आपने प्रथम भण्डार बसन्त पंचमी के अवसर पर किया। पहले भण्डारा केवल फतहगढ़ ही होता था। 14 अगस्त सन् 1931 ई. में श्री पूज्य महात्मा जी महाराज ने-जो आपके अन्तरात्मा ही थे-अपनी जीवन लीला समाप्त कर दी। वह दिल खोलकर रोये नहीं किन्तु कितने ही दिनों तक उस शोक में झुलसते रहे। आन्तरिक वेदना से आपके नेत्र सुर्ख ही रहते-अश्रु बराबर छल-छलाते रहते। परन्तु जो कार्य आपके सुपुर्द किया

गया था, उसमें तनिक भी ढिलाई नहीं की। प्रचार का काम और भी अच्छी दशा में आ गया।

आरम्भ में आपने 'भक्ततुकाराम', सहजोबाई और आमनदेवी दो भागों में प्रकाशित की। उर्दू में एक पुस्तक 'इरशादात' लिखी। एक पुस्तक मुख्यतः सत्संगियों के वास्ते लिखी जिसका नाम 'अभ्यासियों का कर्तव्य' था। कई स्थानों पर वर्ष में आपको सत्संग कराने के लिए जाना भी पड़ता था। इन बातों के लिए धन की आवश्यकता थी। परन्तु आपके पास इतना धन नहीं था। परन्तु इस कार्य में परम पूज्य हमारी श्री गुरु-माता जी (सह-धर्मिणी) ने बहुत सहारा दिया। घर का बहुत सा खर्च आपने कम कर दिया। स्वयं अपने हाथ से भोजन बनाना, साधकों तथा अन्य आए हुए अतिथियों की सेवा एवं बहुत से काम करने का भार आपने अपने ऊपर ले लिया। गुरु माता की सेवा और त्याग को देख दादा गुरु ने उन्हें पहले से ही सत्संग कराने की आज्ञा दे रखी थी। इधर सत्संग के काम में जो सहायता उन्होंने की उससे गुरु महाराज की आत्मा बड़ी ही प्रसन्न थी। वह कहा करते थे कि इनमें (गुरु-माता में जिन्हें सब लोग 'जिया' के नाम से भी सम्बोधन करते हैं) मुझसे भी अधिक शक्ति है।

अवस्थाओं का बोधः- गुरु महाराज की शैली यह थी कि आप कभी भी किसी अवस्था का ज्ञान केवल कहकर नहीं कराते थे वरन् उस अवस्था में पहुँचाकर कहते थे-'देखो! इस समय आप लोग अमुक स्थिति में हैं।' यदि कोई कहीं दूसरी बात सोचने लगता, तत्काल कह देते- '' देखो भाई! विचारों को हर समय अपने गुरु की ओर रखने का प्रयत्न करो। सन्त सब बेअदबी क्षमा कर देता है परन्तु सबसे बड़ी बेअदबी यह है कि अपना ख्याल उसकी तरफ से हटा कर दूसरे ख्यालों में चला जाय। इसे वह क्षमा नहीं करता।''

आप कहते थे कि साधक के काम क्रोधदि दोष तो जल्दी दूर हो सकते हैं परन्तु अहंकार का छूटना महान कठिन है। जिन भाइयों को कुछ प्रचार का कार्य सौंपा था, उनकी आप पूरी देखभाल करते थे। आप चाहते थे कि साधक का लगाव किसी संसारी वस्तु में न हो जाय। साधकों की अवस्था बदलने में आपको कुछ भी देर नहीं लगती थी। प्रवचन करते-करते या कभी-कभी बात ही करते-करते साधकों को समाधि की बड़ी ऊँची अवस्थाओं में पहुँचा देते थे और फिर बतलाते कि इस समय यह अमुक समाधि का दृश्य है। कई बार तो सत्संग (ध्यान) के बाद लोगों को ऐसा होते देखा कि वे नेत्र खोले हुए भी कुछ न देखते, कान खुले हुए भी कुछ नहीं सुनते, चित्त की वृत्ति इतनी निरोधावस्था को पकड़ जाती कि हम लोग उसे समझ ही नहीं पाते थे। इस अवस्था के आ जाने पर न तो आप हीं कुछ बोलते और न हम लोगों को ही कुछ पूछने की इच्छा होती। सैकड़ों मनुष्य एक पत्थर की मूर्ति की भाँति बैठे रह जाते। यहाँ तक कि पलक मारना तक बन्द हो जाता। पर इस दशा में अज्ञान और बेहोशी नहीं होती थी।

ऐसी अवस्था प्राप्त कराते हुए आप समझाते थे कि सबसे ऊँची समाधि इसी को कहते हैं। वैसे आगे धर्म मेघ (सहज) समाधि है परन्तु ज्ञान का उतार इसी समाधि में होता है। इस समाधि में मन तो बहुत नीचे रह जाता है, बुद्धि भी यहाँ पहुँचने में असमर्थ होकर अपनी उड़ान बन्द कर देती है। इसीलिए इसे असम्प्रज्ञात समाधि का नाम देते हैं। परन्तु यह अवस्था जिसमें से आप अभी आए हैं इससे भी ऊँची महाशून्य समाधि की अवस्था है। आपने बताया कि इस समय जो तुम्हें यह अवस्था प्राप्त है यही मुक्ति की झलक है।

'साधन' का जन्मः- अगस्त 1933 में 'साधन' का प्रथम अंक प्रकाश में आया। आप के लेखों ने अंधेरे में प्रकाश का काम किया। लोग सोते से जाग गए। गुरु महाराज ने देश में एक नई लहर उत्पन्न कर दी।

पत्र के निकलते ही विद्वान पुरुषों की दृष्टि इस पर पड़ी। पत्रों के सम्पादकों ने देखा तो बहुत ही प्रसन्न हुए। ''वंगवासी'' कलकत्ता ने आप को लिखाः-''इस पत्रिका 'साधन' से एक बड़े अभाव की पूर्ति हुई। वास्तव में इसके द्वारा पाठकों को ज्ञान और विवेक राज्य में प्रवेश करने की बड़ी सुविधा होगी और पर्याप्त सहायता मिलेगी'' इसी प्रकार 'आर्यमित्र' 'कर्मवीर' 'अयोध्यावासी पत्र' 'प्रताप' आदि सबने मंगल कामनाएँ भेजीं।

बेकार नहीं खोना चाहिए। हमें यह जानना चाहिए कि हम क्या हैं? आत्मा में बल पैदा करने के लिए हमें उस सर्व शक्तिमान से सम्बन्ध जोड़ना होगा। आज हमारे सारे प्रयत्न शरीर की रक्षा के लिए हो रहे हैं। भौतिक साधनों को ही हम सब कुछ समझ बैठे हैं। यह हमारी सरासर भूल हे। शरीर के साथ-साथ आत्मा को भी खुराक पहुँचाना हमारा धर्म है। अगर हम ऐसा नहीं करेंगे तो हमारी आत्मा निर्बल हो जायेगी। जब हम ऐसा करना प्रारम्भ कर देंगे तो स्वयं मालूम होगा कि हमारे विचारों में कितना भारी परिवर्तन होने लगा है, कर्म कितने सतोगुणी होने लगे हैं। कल तक हम जिन विकारों के शिकार होते आए हैं वे हमें छोड़ देंगे। बेड़ा पार हो जायेगा और हम वास्तव में मनुष्य बन सकेंगे। इसके लिए यह जरूरी नहीं है कि हम दुनिया के काम छोड़ दें। बस हम अपनी रहनी-सहनी साधनामय बना लें।

सतोगुणी कर्म स्वयं होने लगते हैं। बुद्धि में समता आ जाती है, मेरे-तेरे के घेरे टूट जाते हैं, अपना पराया व ऊँच-नीच के भाव हट जाते हैं, घर बाहर के सारे प्राणी मालिक के ही लगने लगते हैं परिणामतः सब प्यारे लगने लगते हैं। गुरुदेव चाहते हैं कि साधक साधना से प्रकाश पा जीवन में ऐसी रहनी रहे।

"वे" बताते हैं "अष्टांग योग के यम-नियम चरित्र निर्माण के साधन हैं। बुरे कर्म और बुरे भावों का त्यागना 'यम' और सद्भाव और सद्कर्मों का पकड़ना 'नियम' है। इसकी साधना में मनुष्य को अपना स्वभाव बदलना पड़ता है। मन को रज और तम से हटाकर सत् में लाना होता है। जिनका चरित्र अच्छा नहीं जिनका व्यवहार ठीक और उत्तम नहीं, वह ईश्वर को कभी नहीं पा सकते। मनुष्य अकेला बैठा रहे, परन्तु विषयी पुरुषों की संगति से अपने को बचाए रक्खे-चाहे वह घरवाले और हितू सम्बन्धी ही क्यों न हों।"

अपना जीवन शान्ति से बीते व जीवन में सहनशीलता आ जाय-इस तरह की हम साधकों की रहनी हो जाए इसके लिए व प्रभु का प्यारा बनने के लिए पूज्य गुरुदेव दो बातें बताते हैं। वह हैं "रिजा व तवक्कुल"। "वह" लिखते हैं:- "इनके बिना न तो मनुष्य पूर्ण बनता है न प्रभु का प्यारा। 'रिजा' के अर्थ हैं सुख-दुःख में समानता, मालिक की मर्जी में खुश और 'तवक्कुल' के अर्थ हैं-मालिक के ऊपर निर्भर रहना। दूसरे मानियों में रिजा को निर्पेक्षता और तवक्कुल को पूर्ण समर्पण कह सकते हैं। इन दोनों गुणों के बिना न मालिक से घनिष्टता होती है न मोक्ष मिलती है।"

पूज्य गुरुदउेव एक सत्य सिद्धान्त की ओर हम सब साधकों का ध्यान आकर्षित करते हुए लिखते हैं:-

"जब मनुष्य किसी की बुराई करता है अथवा किसी के लिए बुरा सोचता है तो जिसके लिए यह व्यवहार करता है उसके पापों का फल उससे हटकर निन्दक के पास पहुँच जाता है और वह ऐसा आदमी उसके पापों की गठरी अपने सिर पर लेकर उसको हलका बना देता है।"

"सभ्यता (अखलाक) भी एक चीज है जो साधक के पास अवश्य होनी चाहिए। असभ्य मनुष्य कभी सन्त या पूर्ण पुरुष नहीं बन सकता।"

"सिद्ध बन जाना और चीज है और महत्व पद प्राप्त करके महातमा बन जाना और चीज है। व्यवहार सम्हाले बिना अर्थात् अखलाक दुरुस्त किए बिना परमार्थ किसी तरह भी सिद्ध नहीं होता। इसलिए सदाचारी बनना, अपनी रहन-सहन को ठीक करना यह भी हमारा कर्त्तव्य है।"

"किसी से राग-द्वेष नहीं करना चाहिए। सबके साथ समानता का व्यवहार हो, सबके लिए प्रेम हो, सब की भलाई की इच्छा हो-यही साधुता है। दुष्टों के आघात को सहन करना और उनके लिए बुरा न चाहना ही सज्जनता है।"

बात आज से 6-7 वर्ष पूर्व की है एक सन्त ने बड़े ही स्नेह से समझाया था कि 'भजन-पूजन उपासना आदि हम सबके लिए ओषधि है और उत्तम व्यवहार पथ्य। जो रोगी दवा पीता जाय पर परहेज न करे वह कैसे रोग से मुक्त होगा? जो परमार्थ और व्यवहार में से एक ही को सब कुछ समझता है वह अपने एक अंग को गला डालता है और पूर्णता पाने लायक ही नहीं रहता और वह ईश्वर दर्शन भी कभी नहीं कर पाता।' इसी रहस्य को स्पष्ट करते हुए पूज्य गुरुदेव लिखते हैः-

"समझो! तुम दारुण भव रोग के शिकार हो चुके हो, इसलिए तुम्हें अशान्ति और कष्ट हो रहा है। यदि सुख और शान्ति का जीवन बिताना चाहते हो और यदि भगवान के कृपापात्र बनना चाहते हो तो भजन रूपी ओषधि घट में उतारो, व्यवहार रूपी परहेज व दर्शन देंगे।"

जो बात जितनी ही महत्वपूर्ण होती है उसे उतनी ही

गहराई से व बार-बार समझाया जाता है, दुहराया जाता है। इसीलिए पूज्य गुरुदेव जहाँ अध्यात्म में अन्नमय से आनन्दमय कोश की बातें व उनकी बारीकियाँ बार-बार बताते हैं व उससे आगे का भी संकेत करते हैं वहीं बहुत बार कई तरह से कई तरफ से व्यवहार का वर्णन करते भी नहीं थकते। वे पूर्ण थे इसी हेतु वे हर मानव को हर साधक को पूर्णता की डगर पर ला अध्यात्म में पूर्ण, व्यवहार में पूर्ण-हर तरह से उसे पूर्ण देखना चाहते थे। जिससे विश्व के मानव के लिए ही नहीं जीव-मात्र के लिए भी यह धरती स्वर्ग बन जाय। वे लिखते हैः-

''दूसरों के प्रति हमारा व्यवहार अच्छा और पवित्र हो, धर्मशास्त्र के अनुकूल हमारा आचरण हो, सच्चाई, ईमानदारी, दया और सेवा स्वभाव से हमारे कर्मो में होना चाहिए। व्यवहार में चालाकी-मक्कारी नहीं होनी चाहिए। इससे परमार्थ में उन्नति होती है।''

''स्त्री, बच्चे, कुटुम्बी, पड़ौसी बल्कि मानव मात्र के लिए हमें यह देखना चाहिए कि उनका क्या हक है और वह हमसे ठीक तरह से पहुँचता है वा नहीं। व्यापार, नौकरी, अतिथि-सत्कार, दुखियों की मदद, अनाथ और विधवाओं की सहायता में हम धर्म के अनुसार चल रहे हैं या नहीं? झूठ, मक्कारी, दगाबाजी, चालाकी, चोरी, परनिन्दा इत्यादि त्याज्य कर्म तो हमसे सरजद नहीं हो जाते। यह सब बाहिरी बाते हैं जिनपर चलने से भगवान प्रसन्न होते हैं और अभ्यास में उन्नति होती है।''

''ईश्वर में पूर्ण श्रद्धा होना, उससे हर समय डरते रहना ताकि कोई बुरा कर्म न हो, उसकी याद किसी समय भी न भूले-इसकी कोशिश करना, दुनिया का लगाव दिल से कम होना, भगवान ने जितना दिया है और जैसे-वह रखना चाहता है उसी में राजी रहना, अधिक तृष्णा न करना और जो कुछ उद्योग करने पर मिला है उसी में सन्तोष रखना, क्रोध को रोकना, अपने को बड़ा न समझना, दूसरों को हकीर (अत्यन्त क्षुद्र) न जानना, दिल में किसी से द्वेष न रखना, संध्या और भजन के समय दिल को हाजिर रखना, उसको भटकने न देना, धर्म के कामों में रुचि होना इत्यादि-यह सब अन्तर की बाते हैं जिनकी बहुत जरूरत है इनके बिना साधना पूरी नहीं होती।''

''जिस तरह बाहरी कर्मो के सुधारने की आज्ञा है, वैसे ही भीतरी विचारों के शुद्ध रखने का हुकम है, क्योंकि विचार गन्दे होने पर शरीरिक कर्म भी ठीक नहीं होते।''

''भोजन सादा और सात्विकी खाओ। माँस, मदिरा, नशे की चीजें तथा प्याज लहसुन इत्यादि गर्म मसाले खाना छोड़ दो क्योंकि यह सब इस मार्ग के लिए हानिकार हैं। किसी स्त्री वा पुरुष को कुदृष्टि से न देखो। स्त्रियों से अधिक मेल मत रक्खो और न अकेले में उनके पास बैठो। स्त्रियों को उचित है कि पुरुषों की आज्ञाकारी रहें। उनकी सम्मति लेकर अपना गृहस्थी का कार्य चलावें। बिना पूछे दूसरी जगह न जायें। पति की इज्जत करें, उनसे प्रेम का व्यवहार करें और कटु बचन न बोलें। इसी प्रकार पुरुषों को भी उचित है कि उनकी हर बात का ध्यान रक्खें और प्रेम का वर्ताव उनसे करें।''

प्रेमी-विज्ञ पाठक! इन सब बातों को पढ़ व आत्म निरीक्षण करने पर यह बात आपके मन में अवश्य उठ रही होगी कि इस घोर युग में इन सब बातों को जीवन में उतारना व धारण कर उनका निर्वाह करना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। सच है, आप ठीक ही सोच रहे हैं। पर एक बात है कि जैसे किसी काम-को जो खूब कठिन हो-को सरल ढंग से भी किया जा सकता है ऐसे ही पूज्य गुरुदेव के रामाश्रम सत्संग की ''आन्तरिक-सत्संग'' की साधना ऐसी है व उसका प्रभाव ऐसा है कि ये सारी बातें साधक के जीवन में धीरे-धीरे स्वतः ही उतरने लगती हैं। हाँ साधक को थोड़ा जागरुक रहना होता है व अपने प्रति कठोरता व दूसरों के प्रति उदारता का भाव रखना होता है। और यही तो हर युग का ''जाग्रत तप'' है जो शान्ति व आनन्द देता है यही जगदीश्वरी माँ कभी-कभी हमारी, हमारे व्यवहार की, हमारी रहनी की परीक्षा भी लेती है। जो साधक माँ की ही गोदी में जा बैठते हैं या गुरु भगवान परमपिता की सदा उँगली थामे रहते हैं वे पार हो जाते हैं अन्यों को बड़ी मुश्किल पड़ती है। पूज्य गुरुदेव कहते हैं -

''कथनी-करनी एक कर लेना हँसी खेल नहीं है। परीक्षा के समय यह पता लगता है कि जो कुछ तुम कहते थे, जो हम विचारते थे उसी तरह हमारा जीवन बन गया है या नहीं।'' एक-दो बार फेल भी हो जाँय, फिसल कर गिर जाँय तो भी निराश न हों। उठें और पुनः अपने मार्ग पर आगे बढ़ें।"

●

समर्थ गुरु रूप धारिणी जगदीश्वरी माँ

(मातृ-स्नेह या गुरु कृपा की कहानी आज तक कोई कह न सका। पूज्य श्री विरल जीने "उनके" दर्शन के बाद तरुणाई में ही पूज्य गुरुदेव के मातृ-स्वरूप को पहचान लिया था। उन्होंने अपने भाव उनके सामने प्रकट भी कर दिए थे ''वैसे तेरी मर्जी है,

चाहे जो कुछ तू मान मुझे।
पर मुझ को तो अच्छा लगता,
माँ-बेटे का रिश्ता॥

"दोनों ने इसे सत्य भी कर दिखाया। श्री बिरल जी की डायरी में से उनके स्फुट अनुभवी विचारों को प्रस्तुत लेख में संजोया गया है - (एक साधक)

इस संसार में एक शक्ति है जो किसी को सुन्दर वस्त्र पहना देती है किसी को साधारण। किसी को सुरूप बना देती है किसी को कुरूप। उसे जान लेना ईश्वर दर्शन कहलाता है। इस शक्ति को जान लेनेवाला न किसी से राग करता है न किसी से द्वेष। सब को समान दृष्टि से देखता है। संग उसी शक्ति से करता है। उसका दिल वहीं रहता है। उसकी नयन पुतरिया ही पलट जाती है।

यह शक्ति स्वरूपा माँ यदि एक बार भी सामने आ गयी तो तुम्हें यह दिखाई देने लगेगा कि समस्त सृष्टि में वहीं जगदीश्वरी ही विराजमान है। अपने कहे जाने वाले सगे सम्बन्धियों में ही नहीं वरन सारे जीवों में वही बोल रही है, वही चल रही है। वही वस्तु ग्रहण कर रही है और सबको दे भी रही है। यदि इनमें से किसी ने भी तुम्हारी शिकायत कर दी कि उसके साथ गैरों जैसा व्यवहार किया गया है जिससे उसे पीड़ा पहुँची है, तो उसकी कृपा-दृष्टि कोप दृष्टि में बदल जाएगी जो तुम्हारी अंतर की शांति को नष्ट कर देगी। और तुम एक विचित्र सी ज्वाला में जलने लगोगे। उस समय तुम्हें अंतर से क्षमा माँगनी होगी। तब शायद वह प्रसन्न हो तुम्हें देखने लगे।

जिसे वह परमेश्वरी माँ ज्ञान देती है उससे यह अपेक्षा भी करती है कि उसका व्यवहार आत्मिक हो। छोटे बच्चे तो माँ की चोटी खींच डालते हैं पर बड़े होने पर उनका यह व्यवहार उसे रास नहीं आता।

माँ का परिवार बहुत बड़ा है। उसकी सीमाएँ नहीं है। और उस असीम का दर्शन कर तुम्हें भी असीम बनना होगा। साथ ही अपने असीम में सबको समेटना होगा। इस भावभूमि को देखते जाना है। उस अवस्था की तुम्हारी साधना और होगी और वह आनन्द की होगी।

माँ के चरणों में अनुराग से बढ़कर कुछ भी जीवन में प्राप्तव्य नहीं है। माता अहिल्या ने यही तो मांगा था जब उसे प्रभु के चरणों का पराग स्पर्श करने को मिला था:-

''मुनि श्राप जो दीन्हा अति भल कीन्हा परम अनुग्रह मैं माना।
देखेऊँ भरि लोचन हरि भव मोचन इहइ लाभ संकर जाना॥
बिनती प्रभु मोरी मैं मति भोरी नाथ न माँगउँ बर आना।
पद कमल परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करै पाना॥''

माँ प्रसन्न होती है तो यह दिखाती है कि मैं ही इस संसार को गति दे रही हूँ। यहाँ का जड़ या चेतन कोई भी कण मेरे बिना हिल नहीं सकता। वही शक्ति है जो यहाँ भी सबको चला रही है और वहाँ भी वही है। वही ऊपर भी है वही नीचे भी है। ऐसा दर्शन साधक के कर्तत्व भाव को नष्ट कर किसी के हाथ की कठपुतली बनकर नाचने का काम कराता है। फिर जब माँ ही ऊपर है जहाँ जाना है और नीचे भी वही है जहाँ रह रहे हैं तो साधक द्रष्टा के रूप में आ जाता है।

इस सृष्टि के सभी नियमों का पता तो सबको चल नहीं पाता पर इतना तो सब जान सकते हैं कि जो यहाँ आया है वह जायेगा भी जरूर। यह मनुष्य का जो स्वरूप माँ ने प्रदान किया है वह बीच की स्थिति है। न यहाँ आने से पहले वह व्यक्त था न यहाँ से जाने के बाद व्यक्त रहेगा, पर रहेगा जरूर। इस संसार में उसका लाना सबसे बड़ी उसकी कृपा है और उस माँ का यहाँ प्रकट होना सबसे बड़ा करिश्मा। कभी-कभी वह आती है। प्रभु राम के रूप में प्रकट हुई, श्री कृष्ण के रूप में प्रकट हुई तो ब्रह्मा ने स्तुति की, शंकर ने भी नमन किया और परम भागवत नारद की वीणा भी आनन्द में डूब उसके गीत गाने लगी अर्थात् कर्म, ज्ञान और भक्ति सभी उसके आगे नत मस्तक हो, उठे। ऐसे ही हमारे प्रभु भी प्रकट हुए। उन देवताओं ने तो प्रसन्नता प्रकट की होगी पर यहाँ के लोग समझने में सफल नहीं हो पाए क्योंकि उन्हें माँ ने यह नहीं बतलाया कि मैं ही आ रही हूँ। हमें तो यहाँ आकर उसने समझाया कि जिसे तुम खोज रहे हो, जिसे तुम जानना चाहते हो वह मैं ही हूँ। दिव्य नेत्र प्रदान करने के लिए ही उनका पदार्पण हुआ। वही ईश्वर थी, वही परमेश्वर।

जो यहाँ आता है उसे दो प्रकार के धन मिलते हैं-एक संसार का धन दूसरा अध्यात्म का। क्योंकि दोनों के बिना जीवन अधूरा रहता है। पहला धन शायद भाग्य से मिलता हो पर दूसरा तो उस माँ की कृपा से ही प्राप्त होता है। उस माँ को उसकी कृपा से ही पाया जा सकता है, उसकी कृपा से ही उसका दर्शन हो सकता है।

माँ जीवन का एक संगीत है, एक स्तर है अतः एक साधना भी है।

यदि यह राग बज उठे तो पवित्रता की झनकार उठने लगती है जो रोम-रोम को प्रफुल्लित कर निकलती हे।

इस साधना को सीखने के लिए उसी के चरणों में बैठना होता है, उसी के बोल सुनने होते हैं।

वह अपने मधुर शब्दों से साधक को अपनी ओर आकर्षित कर लेती है।

उसी की दया-दृष्टि से साधक पनपता है, जैसे वर्षा से धान का पौधा लहलहाने लगता है।

उसके चरण कमलों में एक बार हृदय से नमन करना होता है। वह भी नित्य क्योंकि वही एक नित्य है और सब अनित्य।

सत्य उसी के चरणों में प्रकट होता है जो जीवन की सच्ची राह बताता चलता है।

परम ज्योति स्वरूपा उस माँ, के गुरु रूप में अवतरित होने के पर्व की हमारी स्मारिका के रूप में ही 'ज्योति पर्व विशेषांक' प्रस्तुत है-इसमें उनकी जीवनी भी है, व जीवन-दर्शन भी, एक सुपथ का पता भी है व पथ प्रकाशक प्रकाश सूत्र भी, इसमें संसार में आनन्द से रहने की कला भी है व भव-सागर पार करने का विज्ञान भी। वे गुरुदेव दया करें जिससे ''उनके'' मातृ स्वरूप के आँचल की ममतालु छाया में मानव मात्र शान्ति पा सके, आनन्द पा सके।



स्मृतियों के झरोखे से

-श्रीयुत कृष्णकान्त जी

बम्बई मे महात्मा श्री कृष्णा नन्द जी सरस्वती का पत्र आया पंडितजी आपके दर्शन की बड़ी इच्छा हुई है आप कृपा कर मदावली गाँव में मैं अमुक दिन हूँगा, दर्शन दें। अति कृपा होगी। पूज्य पिताजी ने मुझ से कहा कि स्वामी जी का पत्र आया है उनकी बड़ी इच्छा है अतः चलो उनसे मिल आवें। वे मेरे साथ मोटर साइकिल पर बैठ गये जब हम मदावली ग्राम पहुँचे तो मालूम हुआ स्वामी जी तो फिरोजाबाद चले गये। पिताजी ने कहा कि यहाँ तक आऐ ही है आओ फिरोजाबाद भी चलते है। फिरोजाबाद में जब गोपाल आश्रम पहुँचे तो स्वामी जी वहाँ थे। और ऐसा मालूम पड़ा जैसे वे प्रतीक्षा में ही बैठे हों। बड़े प्रेम से वे मिले एवम् बड़ें आदर सहित बैठाया। स्वमी जी बोले पंडित जी संसार में बहुत से महापुरूष आऐ, संत आए लेकिन सब पर ऊँगली उठीं आप के गुरु महाराज तो ऐसे आए कि कोई उंगली न उठा सका। पूर्ण पवित्र एवम् पूर्ण समर्थ। पंडित जी आप की चीज (साधना) तो सिंहनी का दूध है- अनमोल। मैने भी अपनी जन्मभूमि जौनपुर में एक आश्रम बनाया है वहां भी कुछ भक्त आ जाते है आप कृपा कर, उन लोगों को भी अपनी अमूल्य साधना की शैली को प्रदान करें। मै सुन रहा था उन महापुरुष की निरपेक्ष वाणी तथा देख रहा था दो भक्तों का मिलन

मेरा न्यूयार्क (अमेरिका) के गीता टैम्पिल आश्रम में एक प्रोग्राम था। न्यूयार्क के डा० देवेन्द्र श्री वास्तव चि० संजीव कुमार मेजर राम प्रकाश तथ अन्य भाई साथ थे। जब हम वहाँ पहुचे तब वहाँ भगवान शिव का दुग्ध स्नान हो रहा था। दक्षिण भारत के कई विद्वान बड़े ही समवेत स्वर में भगवान शिव का स्तवन कर रहे थे। हम लोगों के लिए अलग स्थान निर्धारित था। हम बहुत समय तक शिव स्तवन को देखते रहे। सोच भी रहे थे इतने बड़े विद्वानों में हमारी बात कौन सुनेगा। मेरे एक साथी तो बोले कि अच्दा हो कि हम यहाँ से चल दें। मैने कहा मेजर साहब! हम तो किसी के भेजे हुए आऐ हैं अतः उनकी (गुरु महाराज की) बात अवश्य कहेंगे। शिव स्तवन समाप्त हुआ।

हमें अवसर मिला। बातावरण बड़ा बोझिल हो गया था। लोग उस वातावरण में ऊब रहे थे। अतः अपनी बात भक्ति से प्रारम्भ की मीरा वाई तथा कुछ प्रसंग गोपियों के कहने के साथ-साथ लोगों का रूख बदलने लगा। करीब-करीब सभी की निगाहें बदलती गयी सभी धीरे-2 हमारी ओर उन्मुख हो गये, तब गुरु महाराज का सन्देश, उनकी साधना बतलाई और अन्त में साधना भी की। सभी लोग प्रसन्न थे। सभी इस साधना के बारे में अधिक से अधिक जानने के इच्छुक हो गये। तभी आश्रम के आचार्य स्वामी जगदीश्वरानन्द जी का सन्देश आया कि भाई साहब से हम एकान्त में बात करना चाहते हैं। मै उन स्वामी के पास गया वे बोले आप कहाँ से आऐ हैं, मैने कहा मै रामाश्रम सत्संग मथुरा से आया हूँ। उन्होंने कहा स्वामी चतुर्भुज सहाय जी कहाँ है? मैने कहा हम उन्हीं का सन्देश लेकर आऐ हैं। वे स्थूल शरीर से तो अब इस संसार में नहीं हैं फिर बोले पंडित मिहीलाल मैने कहा मैं उन्हीं का सुपुत्र हूँ तो उन्होंने मुझे अंक में समेट लिया बड़े प्रसन्न हुये फिर मैने कहा ये (चि० संजीव कुमार) गुरु महाराज के सुपौत्र हैं। बोले आज मेरा दिन धन्य हुआ। हमारी तो विचित्र ही हालत थी। अति प्रसन्नता एवम् विस्मय की अवस्था थी। हमारे गुरु महाराज हमारे यहाँ आने से पहले ही यहाँ उपस्थित हैं। हम समझ रहे थे कि हम उनका (गुरु महाराज) का संदेश अमेरिका लाऐ हैं वे तो वहाँ पहले से ही विराज मान हैं। मैने उनसे पूछा कि स्वामीजी आप गुरु महाराज को कैसे जानते हो तो बोले

मै मथुरा गया हुआ था वहाँ मेरी जिज्ञासा हुई मथुरा सन्तो का स्थान है यहाँ किसी प्रमुख संत से मिला जाऐ। मेरे मित्र थे डा0 श्याम जी उनसे पूछा कि मथुरा में इस समय कौन से संत है जिनके में दर्शन करने जाऊँ। उन्होंने गुरुमहाराज का पता दिया। तब मै वहाँ गया। गुरु महाराज के दर्शन किए। मैने अनेक महात्मा के दर्शन किए थे। उस समय बहुत से महात्मा बड़ी प्रसिद्धि पा चुके थे लेकिन मैने देखा कि स्वामी चतुर्भुज सहाय जी की साधना बहुत ऊँची थी। उनकी आध्यात्मिक अवस्था उस समय सबसे ऊँची थी। हमारी खुशी का कोई ठिकाना नहीं था। आज हमारी विदेश यात्रा सफल हो गई। स्वामी जी ने गुरु महाराज व पंडित महाराज का जो साहित्य हमारे पास था खरीदा एवम् बोले अब एक सप्ताह का यहां साधना शिविर लगावें। मै पूरा सहयोग करूंगा। मैने कहा महाराज हम मजबूर हैं हमारी फ्लाइट फ्लोरिडा के लिए बुक हो चुकी है। कल हमें जाना है।



गुरु महाराज के अमृत वचन

- "भिक्षुक और छोटे बनके मालिक के दरबार में जाओ। बड़ों की वहाँ गुजर नहीं उसके द्वार की खिड़की बहुत तंग है जिसमें बड़ा निकल नहीं पाता।"
- "राजा निर्दयी हो सकता है, सखा धोखा दे सकते हैं, प्रीतम मुख मोड़ सकते हैं, पिता त्याग कर सकता है परन्तु माता अपनी प्यारी सन्तान के प्रति कभी निष्ठुर नहीं हो सकती है।"
- "संसार में रहो, और सारे संसारी काम भी करो, पर उनमें अपना फँसाव मत रखो।"
- "जिस रूप को न कभी देखा हो न सुना हो और न पढ़ा हो वह यदि सम्मुख आये तो उसको सच्चा दर्शन कहा जायेगा।"
- "साधक अपने गुरु से डरे नहीं और न कभी उसे भूले क्योंकि ऐसा हो जाने से वह गुरु में पूरी तरह से मिल नहीं सकेगा, जब तक पूर्ण रूप से मिलेगा नही, इस ज्ञान को प्राप्त नहीं कर सकेगा।"
- "हजार बचन के बोलने से एक वचन श्रेष्ठ है, जिससे मन को शांति प्राप्त हो।"

थीं। अनेव
खिंचाव अ
सबको चर
अधिष्ठाता
कहा-यह
का नाम अ
शक्ति का
का खेल र

"यह
गया। जिन
प्राप्ति के
ही मिल ग
वह केवल

आज्ञ
आपकी श्र
चरणों में
ने भी जल्द
1919 में
आपको दि
भी तुम्हारे
शक्ति भी
सब काम
कर रहा हूँ
मेरी आत्मा
बात नहीं
लिए मैं हर

सेवव
अपने गुरु
कुछ करता
करता है न
आपकी ऐस
कहते रहे वि
उनकी तरफ

आपव
के शरीर

पूज्य श्री गुरुदेव का शक्ति स्वरूप

-रुद्र प्रसाद मिश्र

आप जानते हैं कि ज्योति जहाँ होगी, शक्ति वहाँ अवश्य होगी। भौतिक ज्योति जैसे सूर्य का प्रकाश, दीपक का प्रकाश, बिजली का प्रकाश आदि को तो संसार जानता है। एक ज्ञान की भी ज्योति होती है। एक निष्काम प्रेम की भी ज्योति होती है। सत्य में भी एक ज्योति होती है। अध्यात्म की ज्योति तो जग जाहिर है। आत्मा में भी एक सुन्दर ज्योति होती है। यही कारण है कि इन सबमें एक अलग-अलग शक्ति भी होती है। आगे और बढ़ें तो पायेंगे कि सभी ज्योतियों का मूल स्त्रोत एक ही है। वहीं तनिक और गहराई से अनुभव करें तो पता चलेगा कि वही स्त्रोत ही सभी शक्तियों का मूल केन्द्र भी है। पूज्य श्री गुरुदेव इसी केन्द्र के देवता थे और हैं। इसीलिए ज्योति-स्वरूप थे और हैं। इसीलिए शक्ति-स्वरूप थे और हैं। बहुतों ने इस सत्य को अनुभव किया, और कर भी रहे हैं। इसीकारण से पूज्य गुरुदेव के अवतरण पर्व तीन नवम्बर को हमने "ज्योति पर्व" के नाम से जाना है, मनाया है और उसके लाभ को सभी ने अनुभव किया है। "उन्हीं" की पावन याद में समर्पित है यहाँ "ज्योति पर्व" का विशेषांक।

वे शक्ति-स्वरूप पूज्य गुरुदेव हम सबके कल्याणार्थ इस धरती पर आए। वे मानव मात्र के लिए ही नहीं जीवमात्र के हित हेतु आए व अपनी त्रेतायुग व द्वापरयुग में प्रथम की गयी घोषणाओं के अनुसार आए। कार्य तो वही रहे पर कार्यान्वयन का स्वरूप समयानुकूल उन्होंने बदल दिया। साध्य तो वही रहा पर उन्होंने युगानुकूल साधन बदल दिया। मूलतः उन्होंने धर्म के उत्थान का कार्य किया। हर मनुष्य के मन में मानव-धर्म प्रतिष्ठित हो इसके लिए उन्होंने कार्य किया। "विनाशाय च दुष्कृताम्" का कार्य सम्पादित करने का श्रीगणेश भी पूज्य गुरुदेव ने किया परन्तु एक विचित्र ढंग से। उनका विनाश (नष्ट करने, मारने) करने का कार्य उनका संहार करके नहीं किया, अपितु अपने हृदय (सत्संग) में बिठाकर उनको प्यार व स्नेह देकर किया। उनकी दुष्टता (दुष्कर्म) दूर कर दिया उनके पाशविक व राक्षसी आचरण को मानवोचित सदाचार में बदल कर किया। यह कार्य नित्य हो रहा है उनके द्वारा बताए गए अध्यात्म जगत के नवीनतम आविष्कार "आन्तरिक-सत्संग" से- एक छोटी सी सरल साधना से। यह आन्तरिक-सत्संग कोई संस्था नहीं, यह तो शक्ति-स्वरूप है पूज्य गुरुदेव का। उस शक्ति का एक सगुण साकार स्वरूप है। यह उन शक्तिदेव का निर्गुण निराकार स्वरूप भी है। यही एक मुख्य बात है जिसके कारण भूतल में मनुष्य रूप में विचरने वाले दानव-जिनका आचरण राक्षसों को भी मात करता है-सत्संग के प्रभाव से देवता बनते देखे जा सकते हैं, सदाचारी मानव के रूप में निखरते देखे जा सकते हैं। इस कार्य में गुरुदेव की शक्ति सहायता भी करती है जिसका प्रभाव परिणाम मनुष्य स्वतः अनुभव करता है।

इस ब्रह्माण्ड में शायद यह संभव है कि किसी लोक या स्थान में पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि या आकाशदि तत्व न हों परन्तु शक्ति-स्वरूप पूज्य गुरुदेव सर्वत्र हैं। उनकी शक्ति सर्वत्र व्यापक है। तभी तो उन्होंने कहा था कि जहाँ भी और जब भी तुम मुझे याद करोगे वहीं पाओगे। इसकी जाँच कोई भी कर सकता है। आस्था के आह्वान का प्रभाव प्रत्यक्ष हमें अपने अन्तःकरण में अनुभव होगा-हमारा मन शान्त व पवित्र हो जायेगा व हमारी आत्मा उस शक्ति से जुड़ शक्तिमान। हाँ, किसी भी शक्ति से जुड़ कर उससे लाभ लेने के कुछ नियम होते हैं। जैसे विद्युत शक्ति से विभिन्न उपयोगी कार्य करने या कार्य सम्पन्न कराने के अपने निमय हैं वैसे ही "उनकी" शक्ति से जुड़ने के भी कुछ सरल नियम हैं। वह नियम, वह साधन और कुछ नहीं "आन्तरिक-सत्संग" की साधना ही है।

एक युक्ति और

युग-पुरुष पूज्य गुरुदेव को वर्तमान युग की जन-जन की परेशानियों व समस्याओं का पता था। उन्हें यह भी ज्ञात था कि आगे आनेवाले समय का स्वरूप क्या होगा। हमारी कठिनाइयों को जान उन दयालु देव ने एक सरल सी बात कही ''मिलते-जुलते रहा करो''। उस समय उनकी इस बात के रहस्य को जितने भी जनों ने जाना, वे उन शक्तिस्वरूप से मिल, शक्ति स्वरूप ही हो गए, उन पूर्ण से यथासंभव मिलते रह पूर्णता पा गए। इस युक्ति से भव-जाल से मुक्ति तो पा ही गए, यह भवसागर भी उनके लिए आनन्द का सागर बन गया।

यह हुआ कैसे? और आज भी यह युक्ति कैसे काम कर रही है? यह बात समझने की है। क्योंकि आज के छल, कपट, प्रपंच और पाखण्ड भरे युग में बिना जाने-समझे व बिना परीक्षा किए किसी पर भी गहरा विश्वास ले आना ठीक नहीं। इस जीवन की घड़ियाँ अनमोल हैं। अस्तु! बात पूर्ण समर्थ पुरुष से मिलने की है।

इस युक्ति की गहराई में हम मनोवैज्ञानिक ढंग से यदि जाँय तो पाते हैं कि जिससे भी हम मिलते-जुलते रहते हैं उससे प्रेम हो जाता है। यह प्रेम जब गहराता है तब दोनों का मन एक हो जाता है, बुद्धि की दिशा एक हो जाती है। यह बात संसार में हम नित्य देखते हैं। फिर बिना किसी प्रयास के एक-दूसरे की याद बनी रहती है। ज्यों-ज्यों यह प्रेम बढ़ता है एक-दूसरे का पारस्परिक विश्वास भी दृढ़ से दृढ़तर होता जाता है।यही बात अध्यात्म-जगत में भी सत्य है। संत जगत में शक्ति स्वरूप महापुरुषों के साथ तो और भी। गीता में भगवान श्रीकृष्ण यही तो अपने प्रिय अर्जुन को बार-बार कहते हैं- ''मन्मना भव'' (मेरे मनवाला बन), ''मच्चितः सततं भव'' (निरन्तर मुझ में चित्तवाला हो जा)। महर्षि वाल्मीकि जी भी यही बात श्री राम जी से कहते हैं- ''तुम्ह सन सहज सनेहु'' बस ''सो राउर निज गेहु।'' गीता में तो वे स्पष्ट कह भी देते है ''मामेकं शरणं ब्रज'' (अनन्यभाव से केवल मेरी शरण में आ जा।) गीता व रामायण की इस अवस्था की प्राप्ति का ही सूत्र बताया है पूज्य श्री गुरुदेव ने। इस सूत्र पथ पर चलने से मनुष्य गीता के अध्याय 6 श्लोक 47 में बतायी इस स्थिति कि ''मैं भगवान का हूँ भगवान मेरे है'' अपने विचारों व व्यवहार में अनुभव करता है। यह बात ''सम्बन्ध'' में और भी घनिष्टता लाती है। प्रभु मनुष्य को दैवी सम्पत्ति व रामायण में वर्णित सन्तों के सद्गुणों से स्वयमेव विभूषित कर-उसकी सारी पशुता, सारा दानवत्व, सारा कालुष्य दूर कर-यह करते हैं कि ''अहं स्मरामि मद्भक्तं नयामि परमां गतिम्''। पूज्य गुरुदेव ऐसे ही शक्ति पुरुष थे।

उनका साथ व यह संसार

उन शक्ति स्वरूप पूज्य गुरुदेव को मनुष्य सूक्ष्म रूप से यदि साथ रखे तो यह संसार जिसे दुनिया असार कहती है, में भी सार अनुभव में आता है व सार-सार को ग्रहण करने की विवेक शक्ति मिलती है। वह दृष्टि भी मिलती है जिसके बारे में कही गयी है ''निज प्रभुमय देखहिं जगत'' की सत्य बात। उनकी शरण में रहने से इसी संसार में एक और सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि ''व्यापहिं मानस रोग न भारी, जिन्हके बस सब जीव दुखारी।'' भगवान श्री कृष्ण भी ऐसे ही शक्ति-स्वरूप की शरण में जाने की बात इसलिए इन शब्दों में कहते है ''तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।'' इससे हमें वह ज्ञान शक्ति व प्रेम शक्ति मिलती है जिससे इस विश्व में ही विश्व रूप के दर्शन होते हैं। शक्ति स्वरूप पूज्य गुरुदेव सब पर दया करें, सब का कल्याण करें- यह प्रार्थना फिर हम मात्र जिह्वा से नहीं बल्कि अन्तः करण से करने लगते है। हम चाहने लगते हैं कि हम ठीक बनें, हमारा देश ठीक बने व विश्व ठीक बने।

अपना, अपने देश का व अपने विश्व का निर्माण

आप जानते हैं कोई भी निर्माण कार्य बिना शक्ति के नहीं होता। आप यह भी जानते हैं कि शक्ति विनाश और विध्वंस भी कर सकती है। इससे यह सत्य सामने

आया कि शक्ति किसके हाथ में है निर्माता के या नाशक के। फिर हाथ तो मजबूर मजदूर हैं। उनके नियामक हैं अन्तःकरण (मन, बुद्धि, चित्त व अहं)। अगर ये चारो अन्धकार में हैं व स्वतंत्र हैं तो शक्ति पा यह गड़बड़ ही करेंगे। यह अंधकार होता है काम का, मोह का लोभ का, क्रोध का, मद का, अविवेक का, अहंकार का। इस अंधकार में इन्हें कुछ भी नहीं सूझता। यह अंधकार दूर होता है आत्मा के प्रकाश से। ये चारों मन, बुद्धि आदि शक्ति तो आत्मा से ही लेते हैं परन्तु जब तक ये निरंकुश रहते हैं तब तक आत्मा को अपने आधीन किए रहते हैं व उसके प्रकाश की तरफ ताकते भी नहीं। संसार में, व हमारी अपनी व्यक्तिगत दुनिया में जितने भी अन्याय-अत्याचार हुए हैं पूज्य गुरुदेव ने जान लिया था कि मूलतः आंतरिक अन्धकार के ही कारण हुए हैं। उन्होंने यह भी समझ लिया था इस विश्व को देख कि यह मन, बुद्धि, चित्त व अहं तो इतने सुन्दर व अद्‌भुत यंत्र हैं कि इनसे मनुष्य अपना, अपने परिवार, अपने समाज, अपने देश का अपने विश्व का ऐसा सुन्दर निर्माण कर सब का कल्याण कर सकता है कि देवता भी गौरव गान कर उठें-''गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु।''x x x आवश्यकता बस इतनी है कि ये कार्य आत्मा के प्रकाश में व आत्मानुशासन में करें।

यह कैसे हो

आत्मा के अनुशासन में अन्तः करण के यह चारों यंत्र रहें इसके लिए आवश्यक है कि आत्मा निर्बल न हो वह अपने आदिकेन्द्र से संयुक्त हो-पूर्ण शक्ति सम्पन्न हो। साथ ही यह भी जरूरी है कि जिस आत्मा के प्रकाश में इन्हें काम करना है वह प्रकाश धीमा या मद्धिम न हो। आत्मा हमारी पूर्ण प्रकाशवती हो इसके लिए भी यह अनिवार्य है कि उसका सम्पर्क परमात्मा रूपी पावर हाउस या शक्ति केन्द्र या प्रकाश के आदि स्त्रोत से हो। बस मात्र इतने से ही आत्मा शक्ति व प्रकाश दोनों पाती रहेगी व ये चारों यंत्र फिर निर्माण व कल्याण के ही कार्य करेंगे।

यह काम सरलता से हो व विश्व का हर नागरिक इसे सरलता से कर सके इसके लिए पूज्य गुरुदेव ने ''आन्तरिक सत्संग'' की सरल साधना सब के सामने रक्खी। इस साधना से विश्व के हर मनुष्य में चार बातें आती हैं जो कि निर्माण ही करती हैं-शान्ति ही देती हैं विश्व में भाईचारा ही बढ़ाती हैं, सुन्दर चरित्र बनाती हैं। अद्‌भुत आनन्द देती हैं। हमारा-परिवार की ईकाई का-समाज की इकाई का-विश्व की हर इकाई की जीवन शैली व चरित्र को ऐसे पूर्णता के साँचे में ये चारो बातें ढालती है कि हमारा जीवन सुख, शान्ति, आनन्द से भर जाता हे। ये बातें हैं

(1) समानता, (2) सरलता

(3) प्रेम, (4) निर्लेपता

पूज्य गुरुदेव की बतायी साधना से संक्षेप में एक आदर्श नागरिक का निर्माण होता है। ऐसे नागरिकों के परिवार में त्याग व प्रेम पवित्रता के साथ, साथ-साथ पलते हैं, देश की आन्तरिक व बाह्य सुरक्षा सुरक्षित रहने से सुख-शान्ति-समृद्धि अपने आप बढ़ती है, विश्व रंगमंच में समानता-सरलता व प्रेम पनपने-पुष्पित होने से पारस्परिक अविश्वास-कपट भरी कूटनीति व युद्ध इतिहास के पन्नों में सिमिटकर रह जाते हैं। ऋषियों के युग में हर भारतवासी व भारत की संस्कृति की अलौकिक पूर्णता के ये चार मूल मंत्र थे। पर तब ये तप से प्राप्त होते थे आज पूज्य गुरुदेव की ''आन्तरिक-सत्संग'' की साधना से सुलभ हैं।

विश्व के हर कोने में व अपने देश के प्रांगण में ऋषि, महर्षि, ब्रह्मर्षि, राजर्षि, हंस, परमहंस, सन्त, परमसन्त, पीर पैगम्बर, ईशा आऐ और सभी ने मनुष्य व समाज के कल्याण के खूब काम किए व सुन्दर रास्ते भी दिखाए। समर्थ गुरु कम ही आए। साक्षात् शक्ति स्वरूप बनकर भी कुछ आए-जैसे द्वापर में श्रीकृष्ण आए थे। वैसे ही पूज्य गुरुदेव सरल गृहस्थ बन शक्ति पुञ्ज बनकर आए थे तीन नवम्बर सन् 1883 को। उन्होंने उपदेश नहीं दिया प्रेम दिया, एक शक्तिशालिनी प्रकाशवती 'साधना' दी व घोषणा कर दी कि इच्छा हो तो इसकी परीक्षा कर लो। जीवन पवित्रता, शान्ति व आनन्द से न भर जाय तब कहना ऊपर लिखे चारों गुण जीवन में आचरण में न आ जाँय तब कहना।

त्रेता युग में एक मुनि ने एक महामुनि से कहा था अपने आश्रम में-प्रयाग में-''करगत वेद तत्व सब तोरे''। वेद उपनिषद, कुरान, बाइबिल तो बहुतों ने रटकर दिमाग में भर लिया है पर वही जब अन्तःकरण को रंगते हुए दिल के रास्ते हाथ (करगत) में उतर कर्म में आचरण में आ जाँय तब उसकी सार्थकता है। उन महामुनि के आचरण में व्यवहार में था वेदों का तत्व। ऐसे ही पूज्य गुरुदेव की साधना से संसार के सारे धर्मों का सार साधक के व्यवहार में आ जाता है भले ही उसने वे ग्रंथ न पढ़े हों। इसीलिए पूज्य गुरुदेव को हमने शक्ति स्वरूप कहा है, उनकी चर्चा ही नहीं अर्चना की है।



वाणी-कल्याणी

-पूज्य गुरुदेव

''जो अपने मन को जीत लेता है, वास्वत में वही सच्चा विजयी है। जिसने अपने मन को जीत लिया, समझो कि उसने विश्व को जीत लिया क्योंकि सम्पूर्ण विश्व मन के ही अन्दर है।''

''ऐसे अनेक वचन से भी वह गाथा श्रेष्ठ है जिससे मन आचरण की ओर झुक जाये।''

आलोक किरणें

-पूज्य गुरुदेव

"गुरु अपनी सेवा से इतना राजी नहीं होता है जितना कि गुरु भाईयों की सेवा से प्रसन्न होता है, वह तो ईश्वर रूप है, ईश्वरीय उसका स्वभाव है, भगवान भक्तों की सेवा से जितना जल्दी रीझते हैं उतने भजन से नहीं प्रसन्न होते।''

''जो लोग गुरु से ज्ञान लेके उसका आदर नहीं करते, मन, वाणी और क्रिया से उसकी सेवा नही करते, उन्हे गर्भ के बालक की हत्या का पाप मिलता है। संसार में उनसे बढ़के कृतघ्न (अहसान फरामोश) और पापी दूसरा नहीं है।''

''मनुष्य गुरु की कृपा से ही पूर्ण मनोरथ व शांति लाभ करने योग्य होता है, इसलिए गुरु सेवा ही मुख्य धर्म है।''

साधक सुनो

नवीन योग साधना का स्वरूप

-पूज्य गुरुदेव

योग के साधारण अर्थ- मिलाप व जोड़ देने के हैं। एक वस्तु को दूसरी से मिला के एक कर देना योग है। अध्यात्म में आत्मा को परमात्मा से मिलाना जीव को ईश्वर तक पहुँचा देना 'योग' कहलाता है। ''योग'' और ''योग साधन'' यह दोनों अलग-अलग शब्द हैं। साधन भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। पर योग सब साधन करने वालों के लिए एक जैसा ही है। योग साधन वह क्रिया है, जिसके द्वारा योग की मंजिल तक पहुँचा जाता है। योग साधना वह रास्ता है जिस पर चलके मुमुक्षु अपने अभीष्ट स्थान तक पहुँचता है, जीव ब्रह्म को मिला के एक करता है।

इस योग की अनेक शैलियाँ इस जगत में पाई जाती हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि उनमें से कोई एक भी गलत है इसलिए कि उन आचार्यो ने जिन्होंने उन शैलियों को रिवाज दिया था, अपनी निजी खोज से निजी अनुभव से सब ठीक समझा तब ही दूसरे आदमियों को उन पर चलने का उपदेश दिया था। इस काम के लिए उन पूर्वजों ने देश काल और वस्तु पर भी दृष्टि रखी थी। समय के साथ-साथ उनकी क्रियायें भी बदलती गईं। जब कठिन क्रियाओं की आवश्यकता देखी गई तो उसमें कठिनता को प्रवेश करा दिया गया और जब समय ने सरलता को चाहा तो उसको सरल कर दिया गया। उद्देश्य एक ही रहा कि मनुष्य किसी प्रकार अपने उस आनन्द के भण्डार तक जा पहुँचे कि जिसको वह अपनी पीठ के पीछे छोड़ आया है। इस एक ही उद्देश्य की पूर्ति के मार्ग और इसके साधन जुदा-जुदा हो गये। इन्हीं सरल साधनों में से एक हमारी भी शैली है, जो अब तक के सारे साधनों से अत्यन्त सरल है। नित्य प्रति पंद्रह या बीस मिनट एकान्त में सुबह-शाम इसका अभ्यास करने से साधक अति शीघ्र उन सारी अवस्थाओं को प्राप्त कर लेता है, जो दूसरी क्रियाओं से वर्षों में और जीवन पर्यन्त नहीं प्राप्त कर सकता।

इस शैली को जन्म परम पूज्य हमारे श्री गुरुदेव श्री महात्मा रामचन्द्र जी ने दिया था। वह एक महान् सन्त और समर्थ गुरु थे। योग की सारी विभूतियाँ उनकी मुट्ठी में थीं। ब्रह्माण्ड की सारी शक्तियों पर उनका पूर्ण अधिकर था। साधकों के लिए वह एक ऐसे ईश्वर थे जो पल मात्र में कहीं का कहीं पहुँचा देते थे। जिन सौभाग्यशाली जिज्ञासुओं ने थोड़ी देर भी उनका सत्संग लाभ कर पाया था, वही सभी निहाल हो गये। बूँद को समुद्र बना दिया पतित जीवों को महानता के अमृत स्रोत तक पहुँचा दिया।

इन दिनों काल-चक्र ने बड़ा ही भयंकर रूप धारण कर रखा है, वह बड़े वेग से प्राणियों के शिर पर मंडरा रहा है। मुसीबत और चिन्ताओं ने ऐसा घेरा डाल रखा है कि दिन-रात उद्योग करते रहने और चक्की के दाने की तरह पिसते रहने पर भी छूटने की कोई सूरत दिखाई नहीं देती। पढ़ी-लिखी बाबू पार्टी का तो कहीं ठिकाना ही नहीं रहा। उदर पूर्ति के लिए चौबीसों घण्टे परिश्रम करते हैं गुलामी की जंजीरों में अपने को बाँधते हैं, अफसरों की झिड़कियाँ सहते हैं, अपने अन्तःकरण (Consience) को दूसरों के हाथ बेचते हैं, तो भी दूध घी की कौन कहे भर पेट रोटी उनको और उनके बच्चों को नहीं मिल पाती। शरीर ढकने को वस्त्र नहीं मिल पाते। इन कारणों से सदैव चिन्ता और कष्ट शरीर के ऐसे घुन हैं जो गेहूँ के दाने की तरह भीतर ही भीतर उसे खोखला कर देते हैं। आजकल के मनुष्य के पास न समय है, न शरीर में बल है, न त्याग है। त्याग के नामधारी साधुओं की जो दशा है, वह किसी से छिपी

नहीं है। वह गृहस्थों से भी बढ़के माया के बन्धन में देखे जाते हैं। इन सब बातों को देख के उस दैवी पुरुष के अन्दर दया का स्रोत उमड़ा, इस युग के ऊपर उनकी दृष्टि गई, उनकी कठिनाइयों का नक्शा आँखों के सामने आया, उनकी फुरसत और ताकत का अन्दाजा उनको हुआ।

इन सब बातों प्रर विचार करके उन महापुरुष ने इस युग के लिए योग की उन पुरानी रीतियों में तरमीम करके, उन्हें अत्यन्त सरल बना के, उनके लाभ देख के और सैकड़ों आदमियों पर अपने इस नवीन अन्वेषण का अनुभव करके इसको प्रचंलित किया। यह कहने में हमको तनिक भी संकोच नहीं है कि इस नवीन मार्ग का अनुकरण करने वाले साधक इस नवीन शैली का उपदेश लेने वाले और नियमपूर्वक चलने वाले जिज्ञासु थोड़ी ही काल में इतनी उन्नति कर जाते हैं और इतने शक्तिशाली बन जाते हैं कि जिनका मुकाबला एक ऐसा तपस्वी नहीं कर सकता जो बीस या पच्चीस वर्ष से यौगिक क्रियायें कर रहा हो और घर बार छोड़ के बनवासी बन गया हो। इसकी परीक्षा कोई भी ले सकता है। प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। आगे हम अपनी इसी शैली का संकेत में वर्णन करेंगे, ओर उसे भौतिक विज्ञान (साइन्स) से साबित भी करते चलेंगे, ताकि उसके समझने में लोगों का भ्रम न रहे। यह नवीन शैली, कर्म, भक्ति और ज्ञान की एक मिलौनी है। स्त्री-पुरुष, बृद्ध-युवा, विद्वान और कुपढ़, गृहस्थ और विरक्त, ऊँच जाति और नीच जाति इत्यादि सभी इसको बड़ी आसानी से कर सकते हैं। धर्म और मजहब भी इसमें बाधा नहीं डालता, क्योंकि जहाँ मजहब की सीमा समाप्त होती है, वहाँ से आगे इसका आरम्भ होता है। इसमें किसी के विश्वास को भी धक्का नहीं पहुँचाया जाता। जो जिस मार्ग पर जा रहा हो, उसे उसी में आगे बढ़ाया जाता है, उससे उसका पुराना साधन, पुराना भजन छुड़ाया नहीं जाता। साकार उपासक, निराकार उपासना, द्वैतवादी और अद्वैतवादी, आत्मवादी (जैन-बौद्ध) और ईश्वरवादी, वैष्णव और आर्य-समाजी, शिव उपासक और शक्ति उपासक, कृष्ण उपासक, मुसलमान और ईसाई इत्यादि, सबके लिए एक जैसा स्थान है। सभी अपने-अपने धर्मों के अनुसार अपना-अपना कर्म करते रहें और उसी के साथ-साथ थोड़ी देर इस अभ्यास को भी करते जायें और देखें कि उसी उनके भजन में अभ्यास करने के दो चार दिन बाद ही कितना रस उनको मिलता है। कितने आनन्द का अनुभव होता है। यह सब मन की एकाग्रता का तमाशा है जो प्रथम दिवस से ही साधक को आने लगती है। जिस मन को वश में लाने के लिये, जिस मन को एक ही लक्ष्य पर साधने के लिए, वर्षों परिश्रम करने पर भी सफलता नहीं मिलती, उसकी झलक पहले ही दिन से यहाँ मिलने लगती है, और आगे अभ्यास से वह दिन प्रति-दिन बढ़ती जाती है और आगे समाधि में परिवर्तित हो जाती है। दर्शन करा देती है। इस सत्संग की आजाद ख्याली (विचार-स्वातंत्र्य) और प्रेम का ही यह करिश्मा है कि थोड़े ही समय में ही इसका प्रचार भारत के प्रत्येक प्रान्त में बढ़ता ही चला जा रहा है और सहस्त्रों जैंटिलमैन, आफीसर जो आँख उठा के भी ईश्वर की ओर नहीं देखते थे आज अभ्यास में लग पड़े है। और छोटे बड़े, हिन्दू-मुसलमान आपस में ऐसे प्रेम से गुथे हुए हैं कि किसी के अन्दर भेद-भाव दिखाई ही नहीं देता। यह सब हम पापियों के लिये श्रीगुरुदेव का प्रसाद है, उनको धन्यवाद कहाँ तक किया जाय।

हमने अपने जीवन में देखा कि अब से चालीस या पचास वर्ष पहले जो सुभीते थे, वह आज देखने को भी नहीं हें वह खाना पीना, वह बेफिक्री, वह सीधापन, वह बल, वह आचार और स्वभाव, आज दुनिया में ढूँढने पर भी दिखाई नहीं देता, तो सहस्त्रों वर्ष की बात कौन कहे, न जाने वह समय कितना अच्छा होगा, कितने निर्मल हृदय उन पूर्वजों के होंगे, कितना बल और पौरुष उस युग के मनुष्यों में रहा होगा। जिन कठिनाइयों को वह सह सके थे, आज हम उनका नाम सुनते ही काँप जाते हैं, आँख उठा के भी ऊपर को नहीं देखना चाहते। कारण यह है कि हमारे अन्दर न बल है और न हमारा तपस्वी जीवन है। निर्बलता और विलासिता ने हमको घेर रखा है और दिन पर दिन हमारी शक्तियों का हमारे बल व पौरुष का ह्रास होता चला जा रहा है। चिन्ताओं ने ग्रस

रखा है, आचरणहीन होते चले जा रहे हैं। न ब्रह्मचर्य है, न भोजन के लिए शक्तिवर्धक पदार्थ हैं। ऐसी दशा में वह पुरानी क्रियायें हमारे लिए कैसे उपयोगी हो सकती है? उन्हें नहीं कर सकते, उनके योग्य हम नहीं रहे।

हमारी इस दीन दशा पर उस विश्वपति के दया भण्डार में क्षोभ आया, उसने हमारे उद्धार के लिये अपने दिव्य देश से एक महान आत्मा को भेजा, जिसने हम कलियुगी जीवों के लिये ऐसा अत्यन्त सरल और अत्यन्त सुगम मार्ग दिखाया कि जिसमें न तो घर-बार छोड़ने की आवश्यकता है, न अपने कारोबार त्यागने की जरूरत है। निर्बल और सबल, वृद्ध और युवा, स्त्री और पुरुष सभी इसको बड़ी आसानी से कर सकते हैं। गृहस्थी भोगता हुआ भी मनुष्य इन पर चलके अति शीघ्र दर्शन का अधिकारी अपने को बना लेता है, आत्म-देश तक पहुँच साक्षात्कार कर लेता है।

इसमें न आसन हैं, न प्राणायाम है, न जप है और न तप है, न शब्दयोग है, न राजयोग है, न हठयोग है। भक्ति मार्गी भी इस पर चल सकता है, योगी व ज्ञानी भी इसको अपना सकता है,। इसमें किसी के विश्वास को धक्का नहीं पहुँचाया जाता, उसका वह कर्म जिसे वह करता चला आ रहा है, उससे छुड़ाया नहीं जाता, उसमें ही उसे आगे बढ़ा दिया जाता है।

यह सभी कहते चले आ रहे हैं कि ईश्वर का निवास मनुष्य के हृदय में है। वह बाहर भी है परन्तु यह समष्टि ईश्वर इतना बड़ा है कि मनुष्य की पकड़ में नहीं आ सकता। इसलिए शास्त्रों ने यह शिक्षा दी है कि उसे अपने अन्दर ही खोजो। जो तुम्हारे अत्यन्त समीप और छोटी शकल में है, उसे ही पकड़ने की कोशिश करो। बात ठीक है, पर जब हम ऐसा करने को तैयार होते हैं तो पहिली मुठभेड़ हमारी मन से होती है। इस मन रूपी भौंरे की आदत कुछ ऐसी बन गई है कि वह अपने घर में बैठना पसन्द ही नहीं करता। सदैव बाहर को भागता है और विषय रूपी कलियों का रस लेने को हर समय लालायित रहता है। इसके स्वभाव में चंचलता भी इतनी आ गई है कि क्षण मात्र को भी एक स्थान पर नहीं टिकता। अभी एक फूल पर बैठा दिखाई दे रहा था, उसे छोड़ झट दूसरे पर जा पहुँचा, फिर तीसरे को पकड़ा, इत्यादि। इसके इस चंचल और बहिर्मुखी स्वभाव को छुड़ाना और अन्तर्मुखी बनाना यह इस योग साधना का पहला काम होता है।

इस इतने ही काम के लिये मनुष्य न जाने क्या-क्या करता है। परिवार को त्याग पर्वतों की गुफाओं में जाकर रहता है। कठिन-कठिन तप करता है। उपवास कर-करके शरीर को सुखाता है। आसन और प्राणायाम में परिश्रम करता है इत्यादि। पर यह हाथ नहीं आता, इस पर अधिकार नहीं हो पाता।

इस काम में जल्दी करने के दो उपाय हैं। यदि शक्तिशाली पुरुष हमको सहायक मिल जाए तो उसकी सहायता से मन पर जल्दी काबू हो जाता है। जो स्वयं अपने मन को एकाग्र कर सकता है, वह दूसरे के मन को भी एकाग्र कर सकता है, ऐसा निमय है क्योंकि सारी आत्माओं का सम्बन्ध है। यदि एक मनुष्य अच्छी या बुरी अवस्था अपने अन्दर लाए तो पास के बैठने वालों में भी उसका कुछ न कुछ असर होता ही है। शक्तिशाली विचार चाहे वह अच्छा हो या बुरा अपने आस-पास का वातावरण अपने अनुकूल बना लेता है, और जितने लोग उसके अन्दर आते जाते हैं वह उसी तरह के बनते जाते है। शान्ति और आनन्द के रंग में रंगा हुआ महापुरुष शान्त व आनन्दमयी वातावरण बनाता है, लोग उसके समीप पहुँचने पर शान्ति व आनन्द पाते हैं। उसके सम्मुख मन का वश नहीं चलता। वह (मन) बिना आघात किये ही जकड़ के रह जाता है इसका ही नाम सत्संग है। जिसे भाग्य से ऐसा सत्संग मिल जाये तो फिर उसका कार्य अतिशीघ्र पूर्ण हो जाता है, वर्षों का काम दिनों में हो जाता है।

यदि ऐसा अवसर न मिले तो उसके लिए एक दूसरा उपाय है, इस क्रिया से भी दिन-प्रतिदिन मन में निर्बलता आती जाती है और कुछ महीनों में वह थक-थकाकर अपने स्थान पर आके ठहर जाता है और उस पर अधिकार हो जाता है। यह क्रिया भी बहुत ही साधारण है। यह बतलाया जा चुका है कि मन आत्मा से

शक्ति लेकर ही अपना काम करता हैं इस शक्ति द्वारा वह शक्तिवान तो बनता है पर इस रस्सी से वह बंधा भी रहता है। यदि मन को हम चंचल घोड़ा मान लें, जो किसी रस्सी द्वारा बँधा हुआ हो, तो यह तो विश्वास करने का कोई कारण नहीं दिखाई देता कि वह कहीं भाग के चला जाएगा। फिर ऐसे घोड़े को छूट देने और जब थक कर ठहरने लगे तो दो हण्टर देने में क्या हर्ज है? समय आवेगा कि वह थक-थकाकर गरदन झुका के मालिक के सामने आके खड़ा हो जाएगा, उस समय मालिक उससे मनचाहा काम ले सकता है। ठीक यही क्रिया मन के लिए भी करनी पड़ती है। तुम आत्मा हो और मन तुम्हारी सवारी का चुलबुला घोड़ा है। वह शक्ति रूपी रस्से से बँधा हुआ है उसे छूटने दो और दौड़ने दो। बाहिर जाना चाहे तो बाहिर जाने दो और भीतर रहना चाहे तो भीतर रहने दो, उसे रोकने की कोशिश मत करो और तुम दूर खड़े हुए द्रष्टा बन उसका तमाशा देखते रहो, उसे छेड़ो मत जो करे वह करने दो, पर अपने को उससे अलग समझो। तुम देखोगे कि चन्द दिनों में ही उसकी उछल-कूद कम होती जा रही है और उसमें थोड़ी-थोड़ी शान्ति आती जाती है। परन्तु इस क्रिया को छोड़ो मत जब तक पूर्ण शान्ति न आ जाए।

यह काम हमारे यहाँ इतनी सुगमता से हो जाता है कि जिसको सुनकर लोगों को आश्चर्य हो सकता है। प्रथम बैठक से ही साधक अनुभव करने लगता है कि उसका मन किसी शक्ति द्वारा जकड़ दिया गया है, उसका वेग और उसकी चंचलता नष्ट हो गई है और वह हमारे कार्य में कोई विघ्न नहीं डाल रहा है। नित्यप्रति के अभ्यास से यह अवस्था और बढ़ती चली जाती है। और थोड़े ही काल में वह समाधि का आनन्द लूटने लगता है।

इस साधना के लिये जिज्ञासु को दो-एक बेर गुरु या शिक्षक के सम्मुख बैठ के अपनी क्रिया करनी होती है। गुरु अपनी आत्मशक्ति शिष्य में प्रवेश करता है और अपने उसी आत्मबल से शिष्य को सहायता पहुँचाकर उसके चंचल मन को स्थिर कर देता है। आगे उसी बताई हुई क्रिया द्वारा शिष्य स्वयं अभ्यास करता रहता है। और बढ़ता रहता है। जब कभी फिर उसकी चंचलता बढ़ जाती है और साधक के काबू से बाहर हो जाती है तो गुरु फिर सहायता पहुँचा देता है। इस दूसरी बेर यह भी जरूरी नहीं है कि साधक को गुरु के सन्मुख ही पहुँचना पड़े। वह कितनी दूर क्यों न हो, वहीं से गुरुशक्ति पहुँचकर उसी क्षण उसे सहायता देती है और शान्ति का अनुभव कराती है। यह एक विशेषता हमारे यहाँ की शैली में है। इसका प्रसाद हम लोगों को अपने श्री गुरु देव से मिला है, दूसरी जगह यह सुगमता और ऐसी सहायता की झलक भी देखने को नहीं मिलती।

इस सुगमता का परिणाम यह निकला है कि वह शिथिल समुदाय जो नवीन फिलासफी और साइन्स को पढ़के नास्तिक बन गया था, जिनके लिये यौगिक क्रियायें और ईश्वर एक ढकोसला था वह सहस्त्रों की तादाद में इधर को झुक पड़े हैं और साधना में लग गये हैं। उनके विचार बदल गये हैं और उनके कर्म बदल गये हैं। वह ईश्वर पर श्रद्धा ले आये हैं और जीवन के लिये इस ब्रह्म विद्या को भी जरूरी समझ इसकी प्राप्ति में जुट पड़े हैं।

शिक्षित समाज को गुरु और शिष्य शब्द से भी घृणा हो रही थी, इसका कारण गुरुओं की धन- लोलुपता और शिष्यों से सेवा लेना था। गुरु लोग शिष्यों को अपना गुलाम समझने लगे थे, और हर तरह की खिदमत लेने में संकोच नहीं करते थे। दीक्षा देते समय ही कुछ न कुछ सम्पत्ति उनकी समेट ही लेते थे। हमारे गुरुदेव ने इस रस्म को ही तोड़ दिया। उनकी शिक्षा यह थी कि 'न कोई गुरु है न कोई चेला है, सब बराबर हैं, सभी मित्र और भ्राता हैं।' इसी भाव से शिक्षा देने का प्रबंध अभी तक हामरे सत्संग में चला आ रहा है, आगे भगवान जानें। सेवा लेना भी बहुत बुरा समझते थे, वह कहते थे कि "दूसरों की निष्काम भाव से सेवा करो, नहीं जानता हो उसे रास्ता दिखाओ, जो विद्या लेना चाहता हो उसे विद्या दान करो पर बदले में कुछ लेने की इच्छा मत करो।" उनके उपदेश में यह शब्द आते थे कि गुरु और शिष्य के भाव में द्वैत (गैरियत) रहता है, सबको अपना समझो, वह सब तुम्हारे हो जायें और तुम उनके हो

जाओ। भेदभाव को मिटा देना ही 'प्रेम' है और ऐसा प्रेम ही ईश्वर का रूप है। इस नवीनता को भी उन्होंने ही जन्म दिया, वरना गुरु शिष्य की परिपाटी का रिवाज ऋषि काल से चला आ रहा था। उन दिनों अच्छा रहा होगा, पर आजकल तो साधु-सन्तों ने इसका पेशा कर लिया है।

दूसरा काम जो साधना में करना पड़ता है वह मल और आवरणों से हृदय को शुद्ध करना है। ऊपर जो बात मन पर अधिकार करने की कही गई है उससे 'विक्षेप' दूर होता है। विक्षेप के हट जाने पर भी मल और आवरण अन्तःकरण पर छाये रहते हैं जिसके कारण आत्मा का प्रकाश छिप जाता है और अन्धकार छा जाता है। इस अन्धकार के कारण ही जीव अशान्त और दुःखी रहता है, इसीलिए भगवद् दर्शन के लिए इन मल और आवरणों के हटाने की आवश्यकता है। जितने यह दूर होते जाते हैं उतना ही जीव ईश्वर के समीप पहुँचता जाता है। उसे आनन्द व प्रकाश की झलक मिलती जाती है।

जप-तप, प्राणायाम, ध्यान आदि जितनी भी यौगिक पद्धतियाँ प्रचलित हैं वह सब इसी एक काम को करती हैं। जिन अच्छे और बुरे कर्मों को हम अपने इस जीवन में या पिछले जीवन में करते आये हैं वही बीज रूप से सूक्ष्म बनके हमारे अन्दर भर गये हैं, इन्हीं का नाम संस्कार है। इन संस्कारों का ढेर जब तक नहीं हटेगा, यह दग्ध नहीं कर दिये जायेंगे, तब तक दर्शन नहीं हो सकता, यह सिद्धान्त है।

हमारे यहाँ इस काम को भी बड़ी आसानी से कर दिया जाता है। शिक्षा देने वाला पुरुष, साधक के अन्तःकरण पर अपनी आत्मा का प्रकाश फेंकता है उसके द्वारा उसके अन्धकार को दूर हटाता है। प्रकाश में ज्ञान और आनन्द है। ऐसा करते ही शिष्य अपनी सारी तपन परे हटा आनन्द में विभोर हो जाता है, शान्ति के समुद्र में तैरने लगता है। इस अवस्था का प्रारम्भ भी प्रथम दिवस से ही होने लगता है। जो योगियों को पचासों वर्षों में नहीं मिल पाती वह यहाँ पहिले दिन से ही भाग्य में आ जाती है, यह हमारे यहाँ की दूसरी देन है।

धीरे-धीरे गुरु अपनी शक्ति से उसके मल व आवरण को भी हटा कर फेंक देता है परन्तु इसमें कुछ समय लगाया जाता है। जल्दी करने में शिष्य को हानि हो सकती है। हाँ, जिनका क्षेत्र तैयार मिलता है उनके लिए देर नहीं की जाती, अति शीघ्र प्रभु के दरबार तक उन्हें पहुँचा दिया जाता है।

यह सब विशेषताएँ हमारे यहाँ की है जिनमें न समय लगता है और न परिश्रम करना पड़ता है। गुरु के आश्रित हो बैठ जाना शिष्य का कर्तव्य होता है। आगे सब गुरु अपनी जिम्मेदारी पर करता है। इसमें शिष्य द्रष्टा रहता है और गुरु कर्ता रहता है। हमारी समझ में नहीं आता कि इस योग का क्या नाम रखा जाए। चूँकि इसमें गुरु के आश्रित होना पड़ता है इसलिए इसको 'समर्पण योग' कह सकते हैं और इसमें व्यवहार में परमार्थ और परमार्थ में व्यवहार की कमाई करते हुए दोनों को एक समरेखा पर ले जाना होता है, इसलिए इसको 'साम्य योग' भी बोला जा सकता है। यह गीता का प्रैक्टीकल साधन है। पढ़ लेना, पाठ कर लेना और उसे समझ लेना और बात है और उसको प्रैक्टिस में लाना, उसकी शिक्षाओं के अनुसार अपने जीवन को ढालना दूसरी बात है। हमारे यहाँ की शिक्षा स्वभाव को बदलती और प्रेममय जीवन बनाती है।



प्रभु मनुज रूप धर कर आए

-श्री उमेश चन्द्र गुप्ता

जब राम-कृष्ण की भूमि पर, गौतम नानक की अवनी पर।
मुहम्मद ईसा की धरती पर, दुर्दिन के बादल मंडराए॥
प्रभु मनुज रूप धर कर आए, प्रभु मनुज रूप बनकर आए।
भटकों को राह बताने को, कलियुग के पाप नशाने को॥
त्रय तापों से मुक्त कराने को, शंकर स्वामी तुम अकुलाए।
गुरु चतुर्भुज बनकर आए, संत चतुर्भुज बनकर आए॥1॥

धर्म संस्कृति की बगिया थी, उजड़ गयी यवनों के अत्याचारों से।
आस्था विश्वास डगमगा गया, रक्षक भक्षक बन जाने से॥
अधर्म धर्म बन गया जहाँ, नास्तिक आस्तिक का ढोंग किए।
पंडित ज्ञानी कर्तव्य मूल, बिक गए जहाँ पैसों के लिए॥
कर्तव्य का ज्ञान कराने को, उद्धारक बन गुरु तुम आए।
संत चतुर्भुज बनकर आए, गुरु चतुर्भुज बनकर आए॥2॥

प्राचीन ग्रंथ थे बहुत यहाँ, पर वे सम्बल बन सके नहीं।
जन मानस की प्यास बुझे जिससे, शीतलता वे दे सके नहीं॥
भाषा संस्कृत भी बोझ बनी, उपनिषद वेद बेकार हुए।
तब युगानुकूल तुम हिन्दी में, ग्रन्थ रचने को तैयार हुए॥
गूढ़ रहस्यों को सरल बनाने को, सत् गंगा घर-घर पहुँचाने को।
भव सागर पार कराने को, 'साधना के अनुभव' तुम लाए॥
संत चतुर्भुज बनकर आए, गुरु चतुर्भुज बनकर आए॥3॥

राम तो रमते घट-घट में, पर मानव पहचाने कैसे।
हैं स्त्रोत वही सब सृष्टि के, पर संचालित हम हों कैसे॥
तुम अंश और वे अंशी हैं, तुम यंत्र और वे यंत्री हैं।
मन डोर गुरुवर से बंधी रहे, तुम नचो नचाएँ वे जैसे॥
मानव को पूर्ण बनाने को, प्रभु के दर्शन करवाने को।
जीवन का मर्म बताने को, अन्तर सत्संग की धारा ले आए॥
प्रभु मनुज रूप धर कर आए, संत चतुर्भुज बनकर आए॥4॥
दुःख दूर हटें सुख छा जाएँ, बंधन प्राणी के कट जाएँ।
मानव मानव के लिए जिएँ, ये मानव हृदय में भर जाएँ॥

इस लक्ष्य में जीवन लगा दिया, गुरु स्वप्नों को साकार किया।
माँ जिया और पंडित जी पर, सब काम छोड़ निज लोक सिधाए॥
सत्संग वाटिका फलती रहे, सत् ज्ञान ज्योति सदा जलती रहे।
सब कार्य गुरु का हो पूरण, ये श्रद्धा सुमन उर में सजाए॥
प्रभु मनुज रूप धर कर आए, संत चतुर्भुज बनकर आए॥5॥



प्रार्थना

" प्रभो मेरा मार्ग सुगम कर दो, मेरी परीक्षा मत लो मैं इस योग्य नहीं हूँ। शीघ्र ही अपने समीप बुलाओ और अपना मनोहर दर्शन देकर कृतार्थ करो।"

(योग फिलासफी और नवीन साधना)

मणिमाला के मनके

-श्री बीरेन्द्र कुमार भार्गव जयपुर

(समर्थ गुरु का हर शब्द एक 'मणि दीप' होता है। हमारे पूज्य गुरुदेव ऐसे ही समर्थ गुरु थे जिनके शब्द जनम-जनम के मनुष्य के सोये मन को जगाते है, चैतन्य करते हैं, कंटकाकीर्ण तम पथ के राही को प्रकाश पथ का पथिक बनाते हैं। पथ में वह कहीं अटके नहीं, कभी भटके नहीं इसी लक्ष्य हेतु प्रस्तुत हैं आलोक विखेरते उन्ही के कुछ शब्द-सं०)

आजकल के मनुष्यों पर मन सवार हो गया है। वह उन्हें अन्तर को नहीं मुड़ने देता। बाहरी दुनिया की ओर घसीटता है और उसी बाहरी आनन्द को उन्हें एक बहुत बड़ी चीज करके दिखाता है। मन मनुष्य की बुद्धि को हर लेता है। उसको अपने प्रभाव में ले आता है। इसीलिए बुद्धि भी ठीक निर्णय नहीं कर पाती और वह बह जाता है।

गृहस्थी त्यागने की जरूरत नहीं है। जरूरत है केवल दिल के लगाने की। मन को सब ओर से हटाके भगवान को अर्पण करने की-हृदय से, मन से, प्राण से भगवान के हो रहने की अच्छा खाना, अच्छा पहनना और बाल-बच्चों की सेवा करना, धन-दौलत जमा करना इत्यादि संसारी नहीं है। यह सब रहते हुए मनुष्य का कुछ नहीं बिगाड़ सकते। बिगाड़ने वाली चीज उसके अन्तर में है-वह है उसकी संस्कार राशि।

जब तक ज्ञानाग्नि में इस ढेर को भस्म नहीं कर दिया जायेगा, तब तक चाहे कहीं भी रहो, कठिन-से कठिन तप करके शरीर को सुखा डालो पर कोई नतीजा नहीं निकलेगा।

मनुष्य जन्म मुक्ति का द्वार है परन्तु जब द्वार ही बन्द है तो फिर मुक्ति कैसी? वह द्वार गुरु (ईश्वर) ही खोलता है। आत्मा का ज्ञान आत्मा ही दे सकती है, मन, बुद्धि नहीं, जिह्वा और श्रवण नहीं।

जहाँ सूर्य का प्रकाश हमें संसार के दर्शन कराता है वहाँ सन्त के शब्दों का प्रकाश हमें ईश्वर दर्शन कराता है-अर्थात् सन्त आत्म प्रकाश देते हैं। इसीलिए सन्तों का संग या सत्संग ही उपासना कहलाती है। जो शक्ति अज्ञान और भ्रम हटाकर प्रकाश की ओर ले जावे और ज्ञान प्रदान करे वही गुरु तत्व है।

विचार बन्द करना तथा मन को आराम से चुपचाप बैठाना यह बड़े कीमती अभ्यास हैं। विचारों के बन्द करने से ही मन और दिमाग ताकतवर बनते है।

विवेक शक्ति प्रत्येक प्राणी के अन्दर है। विवेक का विकास उस मनुष्य के भीतर हो पाता है कि जिसने सत्संग उठाया हो, जिसने अपने जीवन का बहुत बड़ा भाग महापुरुषों की सेवा में व्यतीत किया हो और जिसने तन-मन से किसी आत्म पुरुष की शरण पकड़ी हो। सत्संग से विवेक, विवेक से ज्ञान और ज्ञान से मुक्ति मिलती है।

हमारे यहाँ का एक सिद्धान्त है कि महान पुरुषों के अन्दर ईश्वर का बास मानकर उस को वहीं खोजते हैं। यहाँ आप को अपने व्यक्तित्व को अव्यक्त में मिलाना होगा। भाव और भक्ति के साथ उसका स्मरण करते हुए उसको अपना बना लो।

साक्षात्कार करने व भगवत् दर्शन करने के लिए सबसे प्रथम हम को अभ्यास करना पड़ेगा मन के एकाग्र करने का, मन को बहुत से ख्यालों से रोक के एक

ख्याल या वृत्ति पर ठहराने का, और जब एक वृत्ति पर ठहर जाय तब उसको भी छोड़ देने का।

जिस समय हम तमाम ख्यालों से मन को साफ कर देते हैं और जिस समय हम अपने चित्त से सारी वृत्तियों को निकालकर उसे शुद्ध और निर्मल बना देते हैं, ठीक उसी समय हमको उस आनन्दमयी विश्वमूर्ति का दर्शन लाभ होने लगता है। चाहे तुम भक्ति और प्रेम के मार्ग पर चलकर अपने इष्टदेव के दरबार में पहुँचों, चाहे तुम योगी और कर्मकाण्डी बनकर अपने अन्दर ही उसका साक्षात्कार करो, और चाहे ज्ञानी बनकर तत्वों को शोधा करो-मन को अवश्य ही एकाग्र करना पड़ेगा। अभ्यास करते-करते और ध्यान लगाते-लगाते जब मन ठहरने लगता है तो अभ्यासी और साधक में एक प्रकार की बेखबरी और बेहोशी पैदा होने लगती है जिसको शास्त्रकार 'संयम' कहते हैं। इस अवस्था में ध्यानी को न अपनी खबर रहती है न ध्यान और इष्ट का पता रहता है। वहाँ पर प्रेमी तो प्रेम का आनन्द लूटता है और योगी नए-नए चमत्कार देखकर उनपर मोहित हो जाता है, तत्वदर्शी तत्वों का अनुभव कर उछलने लगता है। यही दशा अधिक बढ़ जाने पर साधक में ईश्वरीय शक्तियों और ईश्वरीय गुणों का उतार होने लगता है। उसका ज्ञान बढ़ने लगता है। उसकी अल्पज्ञता कम होकर सर्वज्ञता आती जाती है। इस तरह साधना करते-करते मिलते-मिलाते दोनों भक्त और भगवान की तद्रूपता हो जाती है। यही असली साक्षात्कार है।

प्रेमियो! यदि तुमको उसकी जिज्ञासा है, तुम उसको प्यार करते हो और यदि तुमने अपना अभीष्ट उसको ही मान रक्खा है तो किसी दूसरी ओर आँख उठाके भी मत देखो, किसी प्रलोमन में मत फँसो और किसी विघ्न वाधा की परवाह मत करो। प्रार्थना करो। कहो "प्रभो मेरा मार्ग सुगम कर दो, मेरी परीक्षा मत लो, मैं इस योग्य नहीं हूँ, शीघ्र ही अपने समीप बुलाओ और अपना मनोहर दर्शन देकर कृतार्थ करो।" तुम देखोगे कि तुम्हारे सारे कार्य बनते हुए चले जा रहे है और तुम्हारे विघ्न स्वयं ही शान्त हो रहे हैं। आश्रय लो रुदन करो।

समर्पण कर देने पर मैं और मेरा कुछ रहता ही नहीं है, तू और तेरा रह जाता है। फिर न सुख न दुःख है, न राग है न द्वेष है न अपना है न पराया है, सब उसका है, हम उसके हैं और सारा जगत उसका है।

पूर्ण शान्ति का सबसे ऊँचा साधन तो "राजी-ब-रिजा" है। इसमें अपने को मालिक की मर्जी पर छोड़ दिया जाता हैं, सुख-दुःख आनन्द व विपत्ति जो कुछ हमारे ऊपर आती है उसके लिए ऐसा ख्याल बाँध लेना कि यह सब हमारी भलाई के लिए हो रहा है। इसलिए विपत्तियों को खुशी से स्वीकार करना साधक का धर्म है।

गुरु की रक्षा का हाथ जिसके सिर पर हो, उसको तीन लोक में भय नहीं है। मायावी सारी शक्तियाँ सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में से इकट्ठी होकर उस पर हमला करें तो भी उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकतीं। परन्तु सच्चे दिल से उसका आसरा होना चाहिए और पूर्ण भरोसा उस पर रखना चाहिए।

नासिका बन्द कर देने पर जैंसे वायु के लिए प्राण छटपटाते हैं, अधिक प्यास लगने पर जैसे जल के लिए जी दुखी और अन्न न मिलने पर जैसा भूखा आदमी अन्न के लिए छटपटाता है इतनी ही तड़प अथवा इससे भी आधी यदि हृदय में भगवान के लिए पैदा हो जाय तो कोई कारण नहीं कि मनुष्य को भगवान का दर्शन न हो।

तप का अर्थ सहनशक्ति पैदा करना है। मन और बुद्धि का निश्चल कर लेना ही तप है। किसी गहरे विचार में आत्म चिन्तन करते-करते संयमी अवस्था में चले जाना ही तप है। तप के दो भेद होते है-एक शारीरिक तप दूसरा मानसिक तप। शारीरिक तप- मानसिक तप को सहायता देता है, उसको अधिकारी बनाता है।

काम-क्रोध, हर्ष-शोक, राग-द्वेष, लोभ-मोह इत्यादि के प्रहारों के समय उद्विग्न न होना, अपने को सम्हाले रहना और अपनी विवेक शक्ति को न खो बैठना-मानसिक तप है। जो जिज्ञासु अपने मन को कसे रहता है, इन कामादि के धक्कों से विचलित नहीं होता, मन व बुद्धि

को भगवद् चिन्तन की ओर खींचे रहता है वही यथार्थ तपस्वी है और उसी के भाग्य की यह वस्तु (आत्म तत्व) है

ऐसा मानसिक तप अन्तःकरण पर से रज व तम के आवरण को हटा के उसे शुद्ध व निर्मल बना देता है। उसके अन्दर से सतोगुणी प्रकाश फूटने लगता है और इसी उजाले में उसे अपना स्वरूप (आत्मा) दिखाई देने लगता है-आत्मा का संकेत सुनाई पड़ने लगता है। आत्मा के संकेत अथवा प्रेरणा के अनुसार चलना ही ''धर्म'' या कर्त्तव्य कहलाता है।

ज्ञान की पराकाष्ठा का नाम त्याग है। वैराग्य और त्याग दोनों आपस में बहुत ही भेद रखते है। साधना निरन्तर और ठीक चलने पर प्रथमावस्था में वैराग्य आता है और उसमें ऊँचे चढ़ने एवं उन्नति होने पर 'योग' का प्रारम्भ हो जाता है जो अन्त तक बढ़ता जाता है यहाँ तक कि त्याग हो जाता है और यही उसकी अन्तिम सीमा होती है जो आवागमन से मुक्तकर निर्वाण में पहुँचाती है।

निष्काम भक्ति जिज्ञासु को प्रेमक्षेत्र में ले जाके खड़ा कर देती है। ईश्वर चरणों में इसी अनन्य प्रेम को अनुराग कहते हैं। भक्ति की पराकाष्ठा अनुराग है।

अनुराग जब अपनी परिपक्व अवस्था में पहुँचता है, तब वहाँ ईश्वर दर्शन की इच्छा के अतिरिक्त कोई कामना उसके हृदय में नहीं रहती। वह उस प्यारे के लिए छटपटाता है, तड़पता है; जान पर खेल के उससे मिलना चाहता है। प्रभु के लिए सब कुछ निछावर करने को तैयार हो जाता है, अपने को भूल जाता है, अपनी खुदी को, अपने अहं को उसके चरणों पर बलि देने को खड़ा हो जाता है। अपने सुख-दुःख की परवाह उसे नहीं रहती, लोक-परलोक की इच्छा उसे नहीं रहती, मुक्ति की भी चाहना उसके दिल से मिट जाती है। वह ईश्वर को चाहता है-केवल ईश्वर को, अपने चितचोर को अपने मनमोहन को और कुछ नहीं। यह ''प्रेमयोग'' कहलाता हैं

पूर्ण बनने के लिए, पूर्णता में लय होने के लिए इसका भी त्याग करना होगा, इस आवरण को भी आत्मा से हटाना होगा। ऐसा होते ही यह शुद्ध सतोगुणी आवरण क्षीण हो जायेगा, मिलन वासना भी समाप्त हो जाएगी। एक और अवस्था आती है जो अनिर्वचनीय बोली जाती है। इस स्थान पर अद्वैत में द्वैत और द्वैत में अद्वैत रहता है। यहाँ का वर्णन नहीं हो सकता, समझा नहीं जा सकता।

जिसके शरीर में आत्मा का प्रकाश फैलता है उसके अन्तर से अज्ञान ऐसे ही चला जाता है जैसे दीपक के जलते ही अन्धकर।

यह निश्चय समझो कि अग्नि, अग्नि से ही मिलेगी, वायु या प्रकाश से नहीं पृथ्वी या जल से नहीं, परन्तु हम यह जानते ही नहीं, पुस्तकों से आत्म-ज्ञान लेते है।

● ● ●

''जिस व्यवहार से शिष्य अपने गुरु को प्रसन्न कर लेता है उसके द्वारा परब्रह्म परमात्मा की पूजा सम्पन्न होती है इसलिए गुरु मातापिता से बढ़कर पूज्य है। गुरुओं की पूजा से ही पितर ऋषि और देवता प्रसन्न होते हैं, इसीलिए गुरु परम-पूज्यनीय है।''

-पूज्य गुरुदेव

समाधान मंजूषा

'सुनहु तात मति मन चित लाई'

-संकलित

प्रश्नः- सन्त मत में गुरु का बड़ा माहात्म्य है। कृपाकर यह बतावें कि गुरु कौन होता है और उसकी पहिचान क्या है?

उत्तरः- अज्ञान रूपी अन्धकार को मिटाकर ज्ञान रूपी प्रकाश का देनेवाला 'गुरु' कहलता है।

गुरु वास्तव में उस परम ईश्वरीय शक्ति का नाम है जो अपनी अपार दया से पतित और माया से सने हुए जीवों को ऊपर उठाने, उनके ज्ञान नेत्र खोलने उनको शुद्ध और पवित्र बना अपनी ओर आकर्षित करने का काम हर समय करती रहती है।

सद्‌गुरु नाम परमात्मा का है, उसी ने सृष्टि के आदि काल में मनुष्य को ज्ञान का उज्जवल प्रकाश दिया था। समय-समय पर अब भी मनुष्य विशेष द्वारा प्राणियों को चिताया जाता है ओर सद्धाम का रास्ता बताया जाता है। मनुष्य गुरु नहीं है उसके भीतर प्रवेश होकर जिसने तुमको उपदेश दिया है वह आदि शक्ति गुरु कहलाती है। इन भेदों को समझो तब काम बनेगा। गुरु व ईश्वर एक ही वस्तु है।

जिस ब्रह्मनेष्ठी और तत्ववेत्ता पुरुष के द्वारा अन्दर की चढ़ाई और अगम पन्थ का भेद मालूम पड़ें और जिसकी कृपा-दृष्टि के प्रताप से ही आत्मा तथा मन के विकार नष्ट होते हुए दिखाई दें, उसको 'सतगुरु' कहते हैं।

जिस मनुष्य में सादगी और सच्चाई नजर आवे, जिसकी हर एक बात प्रभावशाली और दिल पर असर करने वाली हो, जिसमें शास्त्रों के बड़े-बड़े गहन विषयों को इस तरह समझाने की शक्ति हो कि अनपढ़ और मूर्ख भी उनको समझ जायँ, जिसके पास बैठने भर से ही मन से बुरे विचार हटते जायँ और बुरी आदतें छुटती जायँ, जो अपने ख्याल से दूसरों के मल-विक्षेप आवरण हटा सकते हों, जिनके स्थान पर पहुँचते ही शान्ति और आनन्द प्राप्त होने लगे तथा जिनके चारों ओर का वायु मण्डल सात्विकी हो गया हो, जो शोक और मोह से परे हो, क्रोध और मोह पर जिन्होंने विजय प्राप्त कर ली हो, काम हर समय जिनके वश में रहता हो और मद या अभिमान जिनको छू भी न गया हो, हर एक प्राणी से जिनका प्रेम हो, राग व द्वेष तथा मान और अपमान की सीमा से जो पार हो चुके हों, दूसरों के धान्य खाने से बचते हों तथा दूसरों से सेवा लेने की इच्छा न रखते हों, शीलता और गंभीरता जिनके स्वभाव से टपक रही हो, जिनके आचरण धर्म विरुद्ध न हों, जो दूसरों की

इज्जत करते हों और अपनी इज्जत कराने की चाहना न रखते हों, सबके साथ समानता और बराबर का व्यवहार करते हों इत्यादि। ऐसे मनुष्य को संस्कृत भाषा में 'गुरु' कहते है।

सद्‌गुरु वह कहलाता है कि जिससे सम्पूर्ण ईश्वरीय गुण हों और जो तद्‌रूपता प्राप्त कर चुका हो। ऐसी महान आत्मायें संसार में कभी-कभी आती हैं। और वह अपना काम करके चली जाती हैं। इसके पश्चात् दूसरे गुरु व आचार्य उनकी शिक्षा का प्रचार करके मनुष्यों का सुधार करते रहते हैं। ऐसे सतगुरु और ईश्वर में भेद नहीं होता गुरु की दया ही ईश्वर की दया और ईश्वर की दया गुरु की दया समझी जाती है।

प्रश्नः- क्या गुरु को ईश्वर मानना उचित है? यह साधना में प्रगति के लिए क्या आवश्यक भी है?

उत्तरः- साधक में पूर्ण रूप से यह भाव होने चाहिए कि गुरु ईश्वर ही है। ईश्वर के समान नहीं। साक्षात सर्वज्ञ परमात्मा ही है। वह सर्वशक्तिमान हमारे कल्याण के लिए नर रूप में अवतरे हैं। जब तक ऐसी भावना निश्चय रूप शिष्य के हृदय में जाग्रत नहीं हो जाती तब तक शिष्य-शिष्य नहीं बन सकता।

गुरु के सम्मुख बैठ के समझने लगे कि मैं साक्षात् भगवान के सामने उपस्थित हूँ, इनका शरीर भगवान का ही शरीर है और इनसे भिन्न और कोई भगवान या इष्ट नहीं है।

हमारे कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि संसार के प्रत्येक मनुष्य के लिए यह ईश्वर है। चाहे सारी दुनिया तुम्हारे गुरु को किसी रूप से देखे परन्तु तुम्हारे लिए, शिष्य के लिए वह साक्षात भगवान ही दीखे। उसके अतिरिक्त कोई और भगवान उसे दृष्टिगोचर ही न हो। उसकी सारी वृत्तियाँ अच्छी और बुरी उसी गुरु मूर्ति पर ही केन्द्रित हो जाय।

साधक जिस समय उपासना के मार्ग में कदम रखने का इरादा करता है उसी समय से उसे गुरु का दामन पकड़ना लाजमी होता है। उपासना न तो अपने आप आती है और न तो पुस्तकों से मिलती है उसके लिए गुरु की सहायता लेना अनिवार्य है। परंतु उपासना पूर्ण उस दिन हो पाती है जिस दिन त्रिपुटी मिट जाती है, साधक का "अहं" मिट के गुरु के रूप में समा जाता है। न हम हैं न ईश्वर है, केवल गुरु है। मन और बुद्धि में इसके लिए तर्क और अविश्वास की जगह नहीं रहती।

प्रश्नः- क्या अध्यात्म मार्ग में गुरु बिना काम नहीं चल सकता? सच्चे गुरु को कैसे व कहाँ खोजें?

उत्तरः-संसार में जितनी भी विद्यायें है वह किसी न किसी जानकार से सीखनी होती है, उसके लिए किसी मास्टर या उस्ताद से सम्बन्ध जोड़ना होता है, अपने आप किसी को उसका ज्ञान नहीं होता। विद्यार्थी को पुस्तक पढ़ने के लिए अध्यापक के समीप जाना होता है, उसके सम्मुख बैठ के विषय को समझना होता है। यही नियम इस महान व अति सूक्ष्म अध्यात्म विद्या के लिए भी है। बिना गुरु के इसका ज्ञान न किसी को हुआ है, न हो सकता है।

मनुष्य अपने प्रयत्न से मनोमय कोश तक चढ़ाई कर सता है, सिद्ध बन सकता है परन्तु ज्ञानी नहीं बन सकता। बिना जानी हुई चीज को आदमी देख सकता है पर उसको पहचान नहीं सकता, इसलिए आगे के स्थानों में गुरु की आवश्यकता होती है। वह संकेत से उन महान सूक्ष्म तत्वों को बताता जाता है। मुख से नहीं हृदय से हृदय को ज्ञान देता है, परंतु गुरु भी अनुभवी होना चाहिए, जो स्वयं ही नहीं जानते वह दूसरों को क्या बता सकते हैं?

यह चिन्ता न करो कि गुरु हैं ही नहीं और यदि कहीं होंगे तो वहाँ तक हम कैसे पहुँचेंगे, वह क्यों हमसे मिलेंगे। इसका प्रबन्ध गुरु खुद करता है। वह सच्चे शिष्यों को, सच्चे सेवकों को सदा खोजता रहता है और पता मिल जाने पर स्वयं ही हंस को तलाश करता हुआ वहाँ जा पहुँचता है। वह तुमको तुम्हारे घर पर ही मिलेंगे। तुम गुरु को शरीर से न ढूँढ़ों। अपने मन से उसकी खोज करो। हृदय की शक्तियों से उसको आवाहन करो। अन्तर में विराजे हुए भगवान से उनके लिए प्रार्थना करो जिस दिन सच्ची लगन तुमको लग जाएगी, जिस दिन सच्ची तड़प तुमको पैदा हो जायगी, उसी दिन गुरु तुम्हें सम्मुख खड़े हुए दिखाई देंगे। यह सब ईश्वरीय प्रबन्ध है।

प्रश्नः- गुरु चिन्तन (स्मरण) से क्या लाभ हैं?

उत्तरः- गुरु ध्यान सबके लिए अनिवार्य नहीं है। पर गुरु स्मरण साधक के लिए लाजिमी है। ध्यान और स्मरण में अनतर है। ध्यान नियत समय पर एकांत में बैठ के किया जाता है और स्मरण चलते-फिरते, सोते-जागते, खाते-पीते हर समय करना होता है। इससे परस्पर संबंध जुड़ता है और आपस में प्रीति बढ़ती है। सेवा और स्मरण से ही दूसरे का आकर्षण होता है जब तक शिष्य गुरु को अपना नहीं बना लेता, तब तक गुप्त भेद की बातें उनसे नहीं पाता।

जिस मनुष्य का सम्बन्ध ईश्वर से जुड़ा हुआ है, जिस समय तुम अपना सम्बन्ध उससे जोड़ लोगे तो तुम्हारी भी धार सीधी ईश्वर तक पहुँच जाएगी और वह तुम्हारे और ईश्वर के बीच का एक सेन्टर बन जाएगा। ईश्वर आनंद का भण्डार है, सत् है, चित् है। बस उसी पल तुमको अनुभव होगा की आनन्द का बादल उमड़ता चला आ रहा है और अमृत वर्षा से सरावोर कर रहे हैं। उस समय तुम हर्ष और शान्ति से भर जाओगे और अशांति तुमसे भाग जाएगी। यह लाभ गुरु स्मरण से मिलता है।

स्मरण के अर्थ याद रखने के हैं। तुम जिसकी याद रक्खोगे तो वह भी तुम्हारी याद रखेगा। ऐसा नियम है।

गुरु चिन्तन को ही सच्चा सत्संग माना जाता है और ऐसे सत्संग की बड़ी महिमा बखानी है। गुरु स्मरण से अधिक शिष्य के लिए सुगम और शीघ्र फलदायक दूसरा मार्ग नहीं हैं।

चिन्तन ही सब कुछ है। चिन्तन किसी प्रकार किया जाय उसी से भावों का उदय होता है। ईश्वरीय गुण मनुष्य में उतरते हैं। मनुष्य जैसा चिन्तन करता है वैसा ही बनता है। भगवान का चिन्तन कठिन पड़ता है इसलिए महापुरुषों ने यह सुगम रीति निकाली है कि भक्त के रूप में भगवान को देखो। भक्त से सम्बन्ध होते ही साधक का भगवान से सम्बन्ध हो जाता है क्योंकि भक्त साधक और भगवान के बीच का एक सेन्टर है।

स्मरण करते-करते अपने आपे या अस्तित्व को गुरु में मिला के एक कर देना कि अपना ख्याल बिलकुल मिट जाए "तद्रूपता" कहलाती है।

प्रश्नः- गुरु दरबार के कुछ नियम हों तो उन्हें भी बताने का कष्ट करें?

उत्तरः- सन्त महात्माओं के पास अदब से जाकर बैठे। जाते ही हाथ जोड़कर प्रणाम करो। उनकी आज्ञा प्राप्त होने पर उचित स्थान पर बैठो, नहीं तो जैसे अफसरों के यहाँ खड़े रहते हो, वैसे ही खड़े रहो। वह अवश्य ही तुमको बिठा लेंगे' उनमे सम भाव होता है। जैसा वह अपने को समझते हैं वैसा ही दूसरों को समझते हैं।

बैठ जाने पर अपने प्रश्न के लिए उचित समय की प्रतीक्षा करो। जाते ही ढोल सा मत मारो। वह तुम्हारे भावों को पहचान कर स्वयं ही तुम से पूछेंगे। इशारा पाते ही उसी ढंग से बातें करो जैसे किसी बड़े अफसर से की जाती है।

जब तक वहाँ बैठो, अपना पूरा ध्यान उन्हीं की ओर रक्खो। इधर-उधर मत देखो। मुँह फेर के अथवा पीठ देकर दूसरे से वार्तालाप मत करो। यदि ऐसा करना हो तो अलग उठ जाओ। सन्तों के दर्बार के ऐसे ही नियम हैं।

जिस समय वह बात कर रहे हों, उनके चेहरे और आँखों की ओर देखते रहो, ऐसा करने से तुमको एक लाभ होगा कि उनकी विद्युत शक्ति जिसमें शुद्ध सात्वकी भाव भरे होंगे, तुम्हारे अन्दर प्रवेश करेगी और तुमको उन्नति के मार्ग की ओर ले जावेगी।

गुरु जब बात करने की आज्ञा दे तो बात करो और जब वह चुप रहें तो तुम भी खामोशी से बैठे रहो परंतु चित्त इधर ही रक्खो। खामोशी बात करने से अच्छी होती है, इसमे अधिक लाभ मिलता है। बात करने के वक्त परमात्मा से सम्बन्ध टूट सकता है और खामोशी के वक्त और भी ज्यादा मजबूत होता है।

अगर वह किसी दूसरे काम में लगे हों, जैसे लिख पढ़ रहे हों, चल फिर रहे हों या किसी दूसरे से बात कर रहे हों तो इसकी परवाह मत करो कि उनका ध्यान मेरी तरफ नहीं है। तुम चुपचाप अपना काम करने लगो, देखोगे कि जो फायदा तुम्हें वैसे सम्मुख बैठने में मिलता था, उस वक्त भी मिल रहा होगा, क्योंकि शक्तिशाली पुरुष एक ही समय में कई काम कर सकते हैं। वह अपनी आकर्षणीय शक्ति तुम्हें भी दे रहे होंगे और दूसरी ओर भी अपने काम में लगे होंगे।

जो महापुरुष उपासना की अवस्था में बैठे हो उन्हें छेड़ना या उनसे बात करना अच्छा नहीं होता। इससे उन्हें ठेस लगती है, उनका दिल परेशान हो जाता है। तुमने उनका आनंद छीन लिया, प्रेमी को प्रेम पात्र से जुदा कर दिया, यह बहुत बड़ा पाप तुम्हारे लिए हो जाएगा। चाहे मुहब्बत से वह तुमसे कुछ न कहे परंतु दिल में असहनीय दुःख उन्हें जरूर होता है इसलिए ऐसे समय पर या तो वहाँ से हट जाना चाहिए ताकि उनकी हालत उनसे छूटने न पावे और तुम्हें दोष न आवे।

प्रश्नः- कुछ गुरु दक्षिणा पर भी प्रकाश डाल दें?

उत्तरः-गुरु कुछ दक्षिणा और भेंट नहीं चाहता। केवल ''आश्रय'' चाहता है। अपने को उसके सुपुर्द कर दो, उसके आसरे हो जाओ। बस इतने ही से वह प्रसन्न और संतुष्ट हो जाता है।

"मैं" और "मेरे" को गुरु दक्षिणा में दान करके हलके बन जाओ। इच्छाओं का बोझ जो सिर पर लादा है उसे उतार फैंको तब मुक्ति की चढ़ाई पर चढ़ सकोगे।

प्रश्नः- गुरु का ध्यान किया जाय या ईश्वर का?

उत्तरः-जो कोई अपने गुरु को ही ईश्वर रूप मान के उसकी उपासना करेगा और उसके ही सहारे अपने को छोड़ देगा, उसी का ध्यान, उसी की चर्चा और उसी का हरदम स्मरण रक्खेगा, उसको बमुकाबिले दूसरे मनुष्यों को शीघ्र ही सफलता मिलेगी क्योंकि गुरु की सुरति की धार का तागा उससे जुड़ा हुआ है, जिस समय तुम अपनी सुरति पूर्णरूप से गुरु के शरीर पर लगा दोगे तो तुम्हारा भी सम्बन्ध उसी वक्त उस मालिक के चरणों में हो जाएगा और इस प्रकार तुम बड़ी सरलता से वहाँ पहुँच जाओगे।

गुरु वास्वत में विद्युत का सेन्टर होता है, जिसमें दूसरे सैण्टरों से होती हुई करेण्ट हर समय पावर हाउस में आती रहती है। जब हम उससे सम्बन्ध जोड़ लेते है तो हमारा हृदय रूपी बल्व प्रकाशित हो उठता है और हमारे अङ्ग को रोशन कर देता है। उसी दिव्य तेज में हम को और अपने से बाहर जगत को, प्रत्येक पदार्थ को, प्रत्येक लोक को, प्रत्येक तत्व को प्रत्यक्ष देखते हैं। वह दिव्य ज्ञान हमको ऋतम्भरा बुद्धि देता है, जिसके मिलने पर हम मोक्ष के अधिकारी बन जाते है।

सम्पूर्ण देवता ही नहीं, स्वयं ईश्वर भी गुरु के रूप में आ जाते हैं, सबका निवास गुरु के शरीर में रहता है, उसका ध्यान ईश्वर का ध्यानं है।

महापुरुषों का या गुरु का यह पंचतत्व से बना पार्थिक शरीर नाशवान है। गुरु रूप आत्मा तो इसके अन्दर ही है, उसी का ध्यान करना चाहिए। उसी से प्रकाश (ज्ञान) को लेकर अपने को ज्ञानवान बनाना चाहिए। परंतु यह सब भेद सत्संग में बैठने तथा गुरु के द्वारा ही प्राप्त होता है।

गुरु ध्यान के प्रताप से साधक को दिव्य दृष्टि मिलती है। इस दिव्य दृष्टि से वह सूक्ष्म तत्वों को देख सकता है दूर और समीप के सभी पदार्थ उसकी आँखों से ओझल नहीं रह सकते। उसे सारे भुवनों का ज्ञान हो सकता है। वह अपने और दूसरे के शरीर के अन्दर का हाल जान सकता है। दूसरों के विचार उसके सम्मुख आ नाचने लगते हैं। भूत भविष्य के दृश्य कभी-कभी सामने आ खड़े होते हैं। सभी उससे प्रेम करने लगते हैं। वह भी सबको अपना ही समझने लगता है इत्यादि।

गुरु ध्यान या गुरु चिन्तन के लिए गुरु पूर्ण, वीतराग और आप्त पुरुष होना चाहिए। बनावटी और अधूरा हानिकारक होता है। पूर्ण गुरु हर समय रहते हैं मगर कम होते हैं। जल्दी नहीं करना चहिए, खूब परीक्षा करके उससे सम्बन्ध जोड़ना चाहिए।

सन्त मत में भी गुरु की तसवीर या प्रतिमा की पूजा करना अथवा उसका ध्यान करना वर्जित है। गुरु की चैतन्य शकल को दिल में बिठाल कर उसकी उपासना करो।

गुरु में संयम करने पर प्रथम उसका बाहिरी आकार ही दिखाई देता है। फिर स्थूल नष्ट होकर उसका चैतन्यात्मा का जो वास्तविक गुरु है दर्शन होने लगता है। इसका शीघ्र ही यह फल होता है कि अपनी व दूसरों की आत्मा को देखने की शक्ति आ जाती है और इस दिव्य दृष्टि से वह परमात्मा का भी साक्षात्कार कर लेता है।

प्रश्नः- सन्त मत में गुरु प्रेम की बड़ी महिमा है। इसका क्या रहस्य है।?

उत्तरः-गुरु परमात्मा और हमारे बीच की चीज है जिसको हम विचधरिया, वसीला वा जरिया कह सकते है। बिना उसकी सहायता के हम दर्शन किसी तरह भी नहीं कर सकते इसलिए गुरु प्रेम का सम्बन्ध दृढ़ करके दया का पात्र बनना कर्त्तव्य हैं

गुरु प्रेम मिलने जुलने, दया रखने और सेवा से बढ़ता है इसलिए इन सब बातों का ध्यान रक्खो, नहीं तो उन्हें क्या पड़ी है कि तुम्हारे लिये परिश्रम करें या कष्ट उठायें।

शिष्य जब गुरु के प्रेम आकर्षण में बँध जाता है और गुरु की सुधि हर समय रखने लगता है तब वह देखता है कि धीरे-धीरे उसकी सभी बातें बदलने लगी हैं। कर्म, स्वभाव, रहन-सहन सभी बदल के गुरु की तरह हो रहा है। प्रथम भाव और विचार बदलते हैं, फिर कर्म और स्वभाव में वही लक्षण प्रकट होने लगते हैं। बात करने के समय कभी-कभी उसको ऐसा प्रतीत होता है कि मैं नहीं

बोल रहा हूँ गुरु ही बोल रहे हैं, उस समय बोलने की शैली भी वैसी ही हो जाती है, चलते समय यही गुमान होता है कि गुरु ही चल रहे हैं इत्यादि। ऐसी अवस्था आने पर रज और तम का प्रभाव अन्तः करण से हट जाता है और सत्-प्रधान बन श्रेष्ठ और उत्तम विचार सम्मुख रखता है और सत्कर्मों की ओर उसे झुका देता है।

अपने गुरु से इतना प्रेम करो कि हर समय उसकी सूरत तुम्हारी आखों में घूमती हरे। शिष्य को चाहिए कि गुरु मे अश्रद्धा भूल के भी न आने दे, इसके आते ही किया कराया सब मिट्टी हो जाता है। कभी भी ऐसा ख्याल न करें कि गुरु को मेरी हालत की खबर नहीं हैं, वह हमेशा शिष्य के ऊपर दृष्टि रखता है।

वैराग्य गुरु प्रेम से मिलता है और इसी प्रेम को हृदय में उत्पन्न करने के लिए गुरु सेवा या गुरु भक्ति की जाती है।

प्रेम करने वाले अपात्र शिष्य भी पार हो सकते हैं अगर उनमें योग्यता नहीं होती तो गुरु मुहब्बत के सबब उनमें प्रवेश होके उन्हें अपने ऊँचे स्थान में उठा ले जाता है।

एक बात हम आपको बतलाते है इसको याद रक्खो। शिष्य का कल्याण तब ही हो पाता है कि जब वह गुरु का प्रेम पात्र बन जाता है। हमको अपनी फिक्र न हो और गुरु को हमारी फिक्र हो जाय। बस यही मोक्ष का मार्ग है। उनको हमारी चिन्ता रहने लगे वह हमारे कष्टो को न देख सकें फिर हमको नर्क में अथवा आवागमन मे कैसे जाने देंगे? हमारे पास यदि कुछ न होगा तो अपनी कमाई में से दे देंगे परन्तु पार लगाएँगे।

परन्तु यह सब बातें हमने पूर्ण और समर्थ गुरु के सम्बन्ध में बतलाई है। अधूरे, पेशेवर तथा शक्ति हीन के लिए लागू नहीं है। सन्त-सतगुरु के अनुसार अपना जीवन बनाना तथा उनके चरणों अपने को डाल देना ही शिष्य के कल्याण का मार्ग है।

प्रश्नः- गुरु शक्ति का स्वरूप क्या और कैसा होता है?

उत्तरः- स्वयं चिन्मयी जगज्जननी माँ अपने भक्तों के उद्धार के हेतु किसी नर शरीर में थोड़ी देर को उपदेश देने आती है, फिर चली जाती है। इसलिए शिष्यों के उपदेश के समय गुरु का शरीर अपना नहीं रहता, उसमे एक अलौकिक दिव्य शक्ति व्यापक हो जाती है, रोम-रोम से उसका तेज फुटने लगता है, मुख पर दिव्य कान्ति छा जाती है। इस शक्ति का नाम 'गुरु शक्ति' है।

यह आद्याशक्ति 'महासरस्वती' की एक धार है जो अध्यात्म ज्ञान देने के लिए अपने निज स्थान अमरधाम से उतर के पृथ्वी पर आती है और किसी महापुरुष के शरीर में प्रकट होके अपना कार्य करती है। इसको 'गुरु शक्ति' बोला जाता है। वास्तव में गुरु उसी को कहा जाता है जिसका सम्बन्ध दृढ़ हो और जिसके अन्दर कल्याणी महामाया उतर कर अपना कार्य क्षेत्र बनावे। यह दिव्य शक्ति अपने दिव्य रूप से नहीं बल्कि किसी पुरुष के रूप में सम्मुख आती है और जिज्ञासु को मार्ग दिखाती है और उस पर आरूढ़ रहने की शक्ति प्रदान करती है। वही महान भक्त जिसकी वाणी पर बैठकर, जिसके हृदय में प्रवेश कर वह महामाया उपदेश देती है-गुरु कहलाता है। वह पथ-प्रदर्शक दूसरे समय में चाहे साधारण मनुष्य रहे पर उपदेश के समय वह ईश्वर रूप ही होता है। इसलिए कि उसके अन्दर से कोई दूसरा बोल रहा है। उसका शरीर उस समय अपना नहीं होता किसी दूसरे का होता है।

प्रश्नः- चरण-रज क्या है कृपा कर यह भी समझा दें।

उत्तरः-गुरु शरीर नहीं होता बल्कि शरीर के अन्दर रहने वाला चैतन्य पुरुष (आत्मा) होता है। इसी गुरु की आत्मा से प्रकाशवती व आनन्दमयी धार हर समय फूटती रहती है, इसी दिव्य तेजोमयी धार को चरण-रज कहते हैं। वह हृदय पात्र पर संकल्प से इस रज को रोजाना रगड़ो, वह दमकने लगेगा, उसकी तारीकी मिट जाएगी, वह साफ सुथरा बन जाएगा। गुरु की चरण रज से हृदय को माँज डालो, गुरु की सुरति की धार से कनेक्शन जोड़ के अपने हृदय को प्रकाशवान बना डालो, भगवान बिना बुलाए ही वहाँ आ बिराजेंगे, वह तो ऐसे स्थान की तलाश में ही रहने है।, किसी दूसरी क्रिया की आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी।

प्रश्नः- जीवन ज्योति क्या है व उसका क्या कुछ पुरुषार्थ से भी सम्बन्ध है?

उत्तरः-जीवन उस परम ज्योति का नाम है, उस महान विशाल शक्ति का नाम है, जो जगत के प्रत्येक पदार्थो को हरकत देती है और उसे आगे बढ़ाती है। संसार की समस्त वस्तुएँ हमें घटती-बढ़ती और चलती फिरती नजर आ रही है, कारण कि उन सबके अन्दर जीवन है। यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ही जीवन से ओत-प्रोत है। एक इञ्च भी जगह यहाँ ऐसी नहीं है जो जीवन से खाली हो। विश्व के जिस भाग से जीवन नष्ट हो जाएगा वहाँ महाप्रलय काण्ड उपस्थित हो जाएगा, वह ऐसा मिट जाएगा कि वहाँ के परमाणुओं का ढूँढ़ने पर भी पता नहीं चलेगा।

जो मनुष्य प्रकृति के थोड़े से प्रहार को भी नहीं सहन कर सकता जो जरा सी विपत्ति आने पर हिम्मत तोड़ बैठता है और उसके दूर करने का प्रयत्न नहीं करता, वह 'मुर्दा' है। उसमें जीवन नहीं है, वह शरीर रखता हुआ भी जिन्दा नहीं है। लड़ाई के वक्त पीठ दिखाने वाले कायर और निकम्मे होते हैं, शूरबीर सम्मुख लोहा लेते हैं और अपने उद्देश्य को सफल करके पीछा छोड़ते है।

विघ्न-बाधाएँ प्रत्येक काम में आया करती हैं। शुभ कार्यो के करने के समय तो इनका दौर चल पड़ता है। छोटे-छोटे रोड़े ही नहीं बल्कि कभी-कभी तो बड़ी बड़ी पत्थर की चट्टाने ऊपर से ढुलक कर नीचे आ जाती है और रास्ता रोक कर खड़ी हो जाती है। चलने वाला उनकी परवाह नहीं करता, वह किसी न किसी तरह उनसे अपनी रक्षा करता हुआ उद्देश्य की ओर बढ़ता जाता है और एक न एक दिन सफलता प्राप्त करके दम लेता है। जो ऐसा करने वाले है उन्हीं में 'जीवन' है।

यह हमारी बड़ी गलती है कि हम कर्म आरम्भ करने से प्रथम ही अनेक प्रकार की आशाऐं बाँध लेते हैं। जब तक वह आशायें हमारी पूरी होती जाती हैं, हम खुश होते हैं, भगवान को भी अनेकों धन्यवाद देते हैं और अपनी प्रशंसा करते हैं, पर जहाँ जरा सी भी रुकावट आई, मानो वज्र टूट पड़ा। उस समय हमारी हिम्मत टूट जाती है, चेष्टा रुक जाती है और हम निर्बलों की तरह निरुत्साह होकर एक ओर जा खड़े होते हैं। यह जीवन नहीं है।

जिनको रुकावटें नहीं आयी, वह जीवन का आनन्द ही नहीं जान सकते। उन्हें जिन्दगी का स्वाद ही नहीं मिल सकेगा। जिन आत्माओं ने इनसे लोहा लिया है, जिन्होंने खुली हुई छाती पर इनके प्रहार सहे हैं, वह ही संसार की महान आत्माओं की गिनती में आये हैं और उन्हीं के जीवन-जीवन कहलाये हैं।



दो शब्द- रामाश्रम सत्संग के विषय में

-श्री बजरंग दत्त मिश्र

प्राणि मात्र में मनुष्य उसके रचयिता परब्रह्म परमेश्वर की सर्वोत्तम कृति है। इसलिए नहीं कि उसमें इच्छा शक्ति तथा, ज्ञान है संसार को सुंदर से सुंदरतर बनाकर जीने का, अपितु इसलिए कि इसी योनि से वह अपने वास्वविक स्वरूप का चिंतन कर उससे एकाकार होने का अवसर पाता है।

यह संसार चाहे कितना ही रुचिकर सम्मोहक तथा सुखदायी क्यों न लगे पर वास्तविक शांति की प्राप्ति के बिना लगभग सभी लोग अधूरे ही रह जाते हैं। उन्हें कुछ न कुछ अभाव अपने जीवन में खटकता ही रहता है। यदि इसके कारणों पर विचार करें तो पता चलेगा कि जिस प्रकार जल की प्रत्येक बूँद चाहे जिस प्रक्रिया से क्यों न गुजरे, अंत में शांति और स्थिरता उसे तभी प्राप्त होती है जब वह अपने मूल स्त्रोत सागर में मिल जाती है। उसी प्रकार जीव को तब तक वास्तविक सुख एवं चैन नहीं मिलता जब तक वह अपने आदि उद्गम स्थान ब्रह्म में लीन होने का सुअवसर नहीं पाता।

आज के युग को लोग अर्थप्रधान युग मानते हैं। सारे प्रयासों की इतिश्री अर्थोपार्जन में ही है। पर यदि तनिक ध्यान से देखें तो पता चलेगा कि अर्थ मात्र साधन है मोक्ष का, वह साध्य नहीं बन सकता। यदि हमने भ्रम अथवा उन्मादवश उसे ही साध्य मान लिया तो अंत में हमारे हाथ कुछ न लगेगा। एक बार स्वामी विवेकानंद जी ने अमेरिका वासियों को झिड़कते हुए कहा था कि यदि धर्म भी धन से खरीदा जा सकता होता तो तुम लोग संसार के सबसे बड़े धर्मात्मा होते। कहना न होगा कि धन संचय में बढ़े-चढ़े हुए अमेरिकनों को उससे संतोष नहीं मिल पा रहा है। उसी का परिणाम है कि वे भारतीय साधन पद्धतियों की ओर उन्मुख हो रहे हैं, तथा उन्होंने भारत की नकल के रूप में अपने यहाँ भी वृंदावन बना लिया है। हमारे शास्त्रों ने तो बहुत पहले ही इस परम सत्य की घोषणा कर रखी है कि मनुष्य का परम पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष ही है। इसमें भी मोक्ष ही परम लक्ष्य है। शेष तो उस तक पहुँचने के मार्ग में पड़ाव मात्र हैं।

चौरासी लाख योनियों में भटकने वाले इस जीवन को, परम प्रभु की करुणा से ही यह मनुष्य शरीर मिलता है।

कबहुँक करि करुना नरदेही। देत ईस बिनु हेतु सनेही॥

-गोस्वामी श्री तुलसीदास

यह मनुष्य शरीर बड़े भाग्य से ही जीव को प्राप्त होता है। शास्त्र ऐसा बताते हैं कि देवताओं को भी दुर्लभ है। क्योंकि मनुष्य शरीर से ही मुक्ति की संभावना है। यदि जीव से सुकर्म बन पड़ा है तो उसे देव शरीर की प्राप्ति होगी पर उसका भोग चुक जाने पर पुनः पृथ्वी पर आना पड़ेगा। एक मात्र मानव शरीर ही ऐसा है जिसमें जीव पूर्वकृत कर्मजन्य संस्कारों को भोगता हुआ भी आगे के लिए कार्य करता रहता है, यदि उसका कार्य वासनाहीन है तो वह फिर बंधन का कारण नहीं बनेगा, अन्यथा जंजीर चाहे सोने की हो अथवा लोहे की बंधन दोनों में बराबर हो गया। यही कारण है कि इस शरीर को देव-दुर्लभ कहा गया है:-

बड़े भाग मानुस तन पावा। सुरदुर्लभ सदग्रंथन्हि गावा॥

-गोस्वामी श्री तुलसीदास

इस प्रकार यह मनुष्य शरीर जीव को इसलिए नहीं मिलता कि वह अपनी इस बहुत बड़ी उपलब्धि को भी सांसारिक चकाचौंध में कांचन संग्रह और कामिनी के उपभोग में लगाकर पुनः चौरासी लाख योनियों के चक्कर काटने में लग जाय। यह मानव शरीर आत्मानुभूति को अनुभव कर सके:-

एहि तन कर फल विषयम् न भाई। स्वर्गउ स्वल्प अन्त दुखदाई॥

-गोस्वामी श्री तुलसीदास।

यह मनुष्य शरीर ईश्वरानुभूति के साधन का धाम तथा मोक्ष का द्वार है। इसे पाकर जिसने परलोक को नहीं बना लिया अंततः उसे पश्चाताप ही करना पड़ेगा:-

साधन धाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जो परलोक सँवारा॥
सो परम दुख पावई सिर धुनि-धुनि पछिताइ। कालहिं कर्महिं इस्वरहिं मिथ्या दोस लगाइ॥

ब्रह्मलीन परमसंत श्री डाक्टर चतुर्भुज सहाय जी ने जीव के सुख के खोज संबंधी भ्रम का वर्णन करते हुए कहा है कि "मूर्ख जीव स्त्री से लिपटता है, उसमें आनंद टटोलता है, पुत्र को कलेजे से लगा प्रसन्न होना चाहता है। भला इन हाड़-मास के पुतलों में वह वस्तु कहाँ थी जो उसे मिलती। कभी धन और वैभव में उसे ढूँढ़ने लगता है, पर वहाँ भी उसके पते नहीं मिलते अंत में चारों ओर से निराश होके बैठना पड़ता है। उस समय उसकी दशा एक ऐसे पपीहे की भाँति हो जाती है, जो सूखे बादलों से स्वाती की बूँद माँग रहा हो और उन्हीं की ओर टक-टकी लगाए देख रहा हो।"

जीव संसार की अनेकानेक उपलब्धियों के बाद भी जब आंतरिक सुख एवं शांति की अनुभूति से वंचित ही रहता है, और जब होश होता है तब उसके मन में ईश्वर की ओर चलने की लालसा उठने लगती है। सौभाग्य अथवा दुर्भाग्य से ईश्वरानुभूति करा देने का दावा करने वाले इतने संप्रदाय, संगठन एवं उनके स्वनाम धन्य गुरु हैं कि साधारण व्यक्ति यह निर्णय ही नहीं कर पाता कि उनमें कौन सा मार्ग उस जैसे व्यक्ति के लिए उपादेय एवं श्रेयस्कर होगा। इसी उधेड़-बुन में वह विभिन्न मतावलंबियों के दरवाजे खटखटाता रहता है और अंत मे निराश होकर बैठ जाता है।

कुछ संप्रदायों की तो मान्यता है कि बिना घर छोड़े ईश्वर की ओर चला ही नहीं जा सकता। उनकी विचार-धारानुसार गृहत्याग ही चरम वैराग्य है। वे इस बात पर विचार नहीं करते कि यदि अंतःकरण से वैराग्य वृत्ति स्फूर्त नहीं हुई तो जंगल की खोह में बैठने पर भी मन में सांसारिक राग बना ही नहीं रहेगा, अपितु वह और भी तीव्र हो जाएगा। स्थूल वियोग के कारण। गृहस्थी में रहते हुए भी विचार एवं संकल्प-बल के आधार पर अपनाया गया वैराग्य अधिक टिकाऊ और साधनोपयोगी होगा।

"रामाश्रम सत्संग" विभिन्न मतों एवं मतावलंबियों के खण्डन-मण्डन में विश्वास नहीं करता। उसका तो मानना है कि सभी मत ठीक हैं और उनके माध्यम से ईश्वर की प्राप्ति की जा सकती है। प्रश्न एकमात्र इस बात का शेष रह जाता है कि आज की परिस्थितियों में गृहस्थ के दायित्व का निर्वाह करते हुए भी सरल ढंग से किस प्रकार ईश्वरानुभूति की जाय। यह बात ध्यान देने योग्य है कि आप को जो जिम्मेदारी परिवार अथवा समाज संबंधी मिली है उससे भाग कर आप बच नहीं सकते।

यदि ध्यान से देखा जाय तो पता चलेगा कि अनेकानेक शीर्षस्थ संत गृहस्थ ही थे। संभवतः इसीलिए श्री गोस्वामी तुलसीदास जी ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि न तो संसार में ही कैद रह जाना चाहिए और न उसे त्याग कर वन में ही चले जाना चाहिए अपितु संसार में रहते हुए भी उस परम प्रभु का ध्यान निरंतर अहर्निशि बनाए रखना चाहिए।

घर कीन्हे घर जात है, घर छोड़े घर जाय।
तुलसी घर वन बीच रहुँ, रामप्रेम उर छाय॥

इससे स्पष्ट हुआ की मनुष्य घर में रहकर अपनी गृहस्थ जीवन की जिम्मेदारियों को पूरा करता हुआ अपने आदि स्रोत से मिलने का उपाय कर सकता है।

आवश्यक यह है कि किस साधन पद्धति को अपनाये और किसको न अपनाये? इसी उधेड़-बुन में सारा जीवन समाप्त न कर दिया जाय बल्कि अच्छी तरह सोच समझकर एक पद्धति का चुनाव कर लिया जाय और फिर उस पर दृढ़ता पूर्वक

तब तक चला जाय जब तक कि उद्‌देश्य की पूर्ति न हो जाय। नित्य नये संप्रदाय में प्रवेश करना तथा उससे असंतुष्ट होकर उसे छोड़ देने की क्रिया अधिक समय तक नहीं चलनी चाहिए अन्यथा जीवन का अति मूल्यवान समय इस प्रयोग में ही चला जाएगा।

"जिन्हें दुनिया के ऐसे तर्जुबे हो चुकते हैं, जिन्हें इनकी असारता समझ मे आ जाती है, वही मनुष्य वास्तव में जिज्ञासु बनते हैं इससे पहिले जो देखा-देखी या सुने-सुनाये साधन में लग बैठते हैं, वह कच्चे होते हैं। उनकी गाड़ी मुश्किल से चल पाती है, वह कभी इधर आते हैं कभी उधर जाते हैं, कभी ऊपर उठते हैं, कभी नीचे गिरते हैं। इसी खींचातानी में उनका समय नष्ट होता है, नतीजा कुछ नहीं। जब तक मन की यह दशा न हो जाए, जब तक यह निश्चित न हो जाय कि सुख-संसारी वस्तुओं में नहीं है, अर्थात् आनंद का भण्डार कहीं दूसरी ही जगह है, तब तक साधना हो ही नहीं सकती और न करनी चाहिए।"

-पूज्य डॉ० चतुर्भुज सहाय

सत्संग और ईश्वरानुभूति की कोई अवस्था नहीं होती। भारतीय इतिहास तो ध्रुव प्रहलाद, शुकदेव तथा नचिकेता जैसे अल्पवयस्क मनीषियों की गाथाओं से भरा हुआ है। फिर भी हमारे बहुत से भाई आत्मप्रवंचना के चक्कर में पकड़कर यदा कदा इस प्रकार की बातें कहते रहते हैं कि अभी इनकी उम्र ही क्या है? अभी तो खेलने-खाने तथा मौजमस्ती का समय है। साधना तो वृद्धावस्था की चीज है। उसके लिए अभी से परेशान होने की आवश्यकता नहीं। यह बहुत बड़ा भ्रम है। साधना का सर्वोत्तम समय युवावस्था ही होती है क्योकि उस समय मनुष्य के शरीर में इतनी शक्ति होती है कि वह साधन से नियमों का कठोरता से पालन कर सकता है। वृद्धावस्था मे शरीर के शिथिल हो जाने पर कठिनाई होती है क्योंकि इंद्रियाँ साधन की अपेक्षानुसार उठने-बैठने तथा ध्यान को केन्द्रित करने में अपनी शिथिलता के कारण साधक का पूरा-पूरा साथ नहीं दे पातीं इसलिए तो एक अनुभवी साधक ने कहा है:-

जवानी में तू कर ले हुसूल । बंदगी होती है इस दिन की कुबुल॥
गर तुझे पीरी में आया ख्याल। तो भी गनीमत है कर खुंदेफाल॥
गर पीरी में भी रहा इस हाल पर। तो वापरंगी फिर तो तेर हाल पर॥

यदि किसी ने युवा अवस्था में भगवान की ओर चलने का प्रयास नहीं किया, उसे वृद्धावस्था में चेत हुआ तो भी गनीमत है। पर यदि कोई व्यक्ति ऐसा है जिसे इस अवस्था में भी उस ओर का ध्यान नहीं आया तो फिर उसका भला तो भगवान ही कर सकता है अन्यथा उसकी दशा दयनीय है।

यह सब कहने का एकमात्र अर्थ है कि मनुष्य जीवन केवल पैदा होने, खाने-पीने और मरजाने के लिए नहीं मिला है। इसका उच्चतर उद्‌देश्य है और वह यह कि इस शरीर से वह अपने रचयिता को प्राप्त करके ही दम ले।

आजकल के तथाकथित प्रगतिवादी गुरु शब्द के उच्चारण से ही भड़क उठते हैं और उनके सामने "गुरुडम" की बहुत ही खराब तस्वीर उभर आती है। वे गुरु की मान्यता और उसके सारे कार्यकलाप को ही दकियानूसी मानते हैं। वस्तुतः यदि उनकी इस स्थिति पर विचार विमर्श किया जाय तो इसमें उनका भी बहुत अधिक दोष नहीं है। समाज में आज विभिन्न मत-मंतान्तरों के अंतर्गत उपलब्ध अधिकांश व्यक्ति बाह्य रुप से तो गुरु का सुंदर स्वरूप बनाए मिलते हैं, पर उनमें से बहुतों में शिष्य के अज्ञानान्धकार को नष्ट करने वाले ज्ञान-प्रकाश का सर्वथा अभाव ही होता है। पर इसका अर्थ यह समझ लेना कि 'गुरु' की उपयोगिता ही जाती रही उचित न होगा। हाँ यह अवश्य है कि सच्चे गुरु को खोज निकालना अवश्य ही कष्ट साध्य हो गया है।

किताब पढ़कर अथवा सैद्धांतिक ज्ञान प्राप्त कर साधना नहीं की जा सकती। वह भी आंतरिक साधना तो किसी भी प्रकार संभव नही है। साधना का व्यवहारिक ज्ञान बिना गुरु की करुणा एवं कृपापूर्ण सहायता से संभव नहीं है। गुरु ही भवसागर के पार लगाने वाली नौका के खेवनहार हैं। उनकी कृपा से ही आत्म-साक्षात्कार के दुर्लभ साधन सुलभ हो सकते हैं।:-

करणधार सद्गुरु दृढ़ लावा। दुर्लभ साज सुलभ करि पावा॥

-गोस्वामी तुलसीदास॥

साधारण मनुष्यों की बात कौन कहे, ब्रह्मा एवं शंकर के समान समर्थ व्यक्ति भी गुरु की कृपाके बिना इस संसार सागर को पार नही कर सकते।:-

गुरु बिन भवनिधि तरइ न कोई। जौं विरंचि संकर सम होई॥

गुरु की महिमा और साधक के लिए उसकी अनिवार्यता में इससे अधिक और कुछ भी नहीं कहा जा सकता बस इतना ध्यान रखने की बात है कि गुरु बाह्य स्वरूप वाला ही नहीं अपितु आंतरिक ज्ञान वाला होना चाहिए, जो कि साधक के अज्ञानांधकार को क्षण भर में ही दूर कर सके।

वस्तुतः गुरु खोज का विषय नहीं है। जब साधक में वास्तविक जिज्ञासा के साथ ही साथ ईश्वर के मार्ग पर चलने का दृढ़ संकल्प होता है तभी "ईश्वर" किसी न किसी व्यक्ति को उसके पास गुरु रूप में भेज देता है या अन्य विधि उसकी जिज्ञासा को शांत करने का अवसर सुलभ करता है। ब्रह्मलीन परमसंत डाक्टर श्री चतुर्भुज सहाय जी ने सच्चे गुरु की पहचान बताते हुए कबीर साहब का यह दोहा उद्धृत किया है जो सर्वांगीण पूर्ण है:-

गुरु मिला तब जानिए जब मिटे मोह संताप। हर्ष शोक व्यापे नहीं, तब गुरु आप ही आप॥

अब दो शब्द सत्संग के सबंध में भी। सामान्यतया ईश-चर्चा उसके भजन कीर्तन, पूजापाठ तथा ऐसी सारी बातों को सत्संग ही कहते हैं, जिससे भगवान का किसी भी प्रकार गुणानुवाद हो। यह सब सत्संग नहीं एक मात्र उसका बाह्य स्वरूप ही है। वास्तविक सत्संग तो वह है जिसमे आत्मा को परमात्मा का संग प्राप्त हो क्योंकि इस मायामय संसार में एक ब्रह्म ही सत्य है शेष मिथ्या है:-

"ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या।"

आंतरिक साधना जानने वाले जानकार के सामने बैठकर आंतरिक साधना की क्रिया को सीखना चाहिए। फिर निरंतर इसका अभ्यास करते रहना चाहिए। अभ्यास काल में स्वंय इस बात को जाँचते रहना चाहिए कि इस क्रिया (साधना) से वैराग्यभाव की उत्पत्ति और उसका दृढ़ीकरण हो रहा है या नहीं? यदि नहीं तो अपने निश्चय श्रद्धा अथवा विश्वास में कहीं कमी है। उसे खोज कर दूर करना चाहिए। यहाँ वैराग्य का अर्थ गृहत्याग नहीं है उसका अर्थ है कि मन दुनियाँ की जिन चीजों में अब तक अधिक रमता रहा है उनकी ओर से उसमें उपरामता आवे तथा भगवान की ओर अधिक आकृष्ट हो। श्री कृष्ण ने अर्जुन के प्रश्न पर कहा है कि हे अर्जुन यह मन निरंतर अभ्यास तथा वैराग्य से ही वश में आता है।

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्। अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥

आखिर 'रामश्रम सत्संग ही क्यों?

इसलिए कि-

1. इसमे किसी का विरोध नहीं है। इस सत्संग की मान्यता है कि सभी रास्तों से देर-सबेर लक्ष्य तक पहुँचा जा सकता है। प्रश्न एकमात्र सरलता तथा अनुरूपता का है। यह आज के मनुष्य की व्यावहारिक परिस्थितियों के सर्वथा अनुकूल एवं नितांत सुविधाजनक है।

2. यह विद्या शास्त्र सम्मत एवं, अत्यंत शीघ्र फलदायी है। भगवान श्री कृष्ण ने इसे अर्जुन को बताते हुए कहा था कि मैंने इस अविनाशी योग को (ध्यान की क्रिया को) कल्पके आदि में सूर्य को बताया था। सूर्य से यह मनु तथा मनु से इक्ष्वाकु को प्राप्त हुई थी। इस प्रकार यह परंपरा से प्राप्त है परन्तु बीच में यह लुप्त हो गया था। वही इस पुरातन योग को मैंने तुम्हें बताया है क्योंकि तू मेरा सखा तथा भक्त है।

3. इस सत्संग में कोई भी कृतिमता नहीं है। ध्यान में बैठने के लिए अपनी शारीरिक स्थिति के अनुसार ही स्वच्छता की अपेक्षा है। अस्वस्थता में बिना स्नान के बिस्तर पर लेटे-लेटे भी अभ्यास करने की अनुमति है। सत्संग के लिए किसी भी बाह्य उपकरण की अनिवार्यता अथवा उसकी उपलब्धता का आग्रह नहीं है।

4. सत्संग में आने की कोई प्रारंभिक शर्त नहीं है कोई भी जिज्ञासु यथेच्छ रूप में भाग ले सकता है धर्म, जाति, स्थान अथवा संप्रदाय का कोई बंधन नहीं है।

5. किसी प्रकार का सदस्यता शुल्क, पुजापा अथवा चढ़ावा नहीं चढ़वाया जाता है।

6. सत्संगियों को शिष्य न मानकर भाई मानते हैं और अन्य सत्संगों की भाँति उनसे सेवा की अपेक्षा न कर स्वयं ही सामर्थ्य भर सेवा का प्रयास करते हैं।

7. इस सत्संग के आचार्यगण बिना किसी बाह्याडंबर एवं दिखावा के मिशन कार्य को बड़ी लगन तथा निष्ठा पूर्वक संपादित करते हैं। नए साधक प्रथम बार में उनके व्यवहार से प्रेमाभिभूत हो जाते हैं।

8. सत्संगियों में परस्पर बंधुत्व का अति मृदुभाव रहता है दैनिक जीवन में भी एक दूसरे से स्नेह कहीं नहीं रखते अपितु अवसर आने पर अयाचित सहयोग भी देते हैं।

9. इसका कोई प्रचार आज के प्रचार माध्यमों से कर संख्या बढ़ाने का प्रयास नहीं किया जाता अपितु एक दीपक से दूसरे दीपक को प्रज्वलित करने की परंपरा से ही इसका प्रचार-प्रसार होता रहता है।

10. सबसे बड़ी बात यह है कि थोड़े समय में ही साधक आध्यात्मिक योग में बहुत आगे बढ़ जाता है। उसके दुर्गुण एवं कुप्रवत्तियाँ उसका साथ छोड़ने लगती हैं और वह निरंतर अपने लक्ष्य की ओर बढ़ता रहता है।

इसलिए शीघ्र आध्यात्मिक लाभ उठाने की इच्छा रखने वालों को रामश्रम सत्संग में सम्मिलित होकर उससे आत्मिक लाभ उठाना चाहिए।

ब्रह्मलीन परमसंत डाक्टर चतुर्भुज सहाय जी ने अपने गुरु लाला रामचन्द्र महाराज के नाम पर इस सत्संग का नाम करण "रामाश्रम सत्संग" किया है। इस प्रकार इससे समर्थ गुरु श्री रामचन्द्र जी तथा भगवान राम दोनों का नाम जुड़ा हैं।

पूज्य डाक्टर साहब ने अपने जीवन काल में इस सत्संग को व्यावहारिक रूप मे बहुत बढ़ाया तथा अध्यात्म से उन सिद्धान्तों को खोज-खोज कर व्याख्या की जिनको इससे पूर्व गुप्त रखने की ही परंपरा थी।

पूजनीया माँ की देखरेख में ब्रह्मलीन परमसंत श्री पंडित मिहीलाल जी ने अपने गुरु के कार्य को अत्यधिक द्रुतगति से बढ़ाया तथा देश के कोने-कोने में उसे पहुँचाया।

श्री डाक्टर बृजेन्द्र कुमार जी ने अल्प काल में सत्संग के प्रचार प्रसार ही पर ध्यान नहीं दिया अपितु उसकी गुणवत्ता को बनाए रखने पर विशेष बल दिया।

समर्थ गुरु द्वारा प्रवाहित सत्संग-गंगा की यह धारा आज भी प्रवाहित है आप भी आवें, इसका आनन्द लें। पाप न मिटें, शाप न कटें, जीवन में शान्ति व आनन्द न मिलें, तब कहना। यह आव्हान है सब के लिए-मानव मात्र के लिए-चाहे वह किसी भी सम्प्रदाय का क्यों न हो!



हमारे गुरु महाराज का सन्देश

ब्रह्मलीन परमसन्त श्री डॉ० बृजेन्द्र कुमार जी

मन की विशुद्धि में परम विशुद्धि निहित है। स्व- कल्याण में परम कल्याण निहित है। जो अपना हित नहीं कर सकता वह दूसरे का भी हित नहीं कर सकता। इसीलिए मनुष्य को पहले अपने अन्तःकरण को शुद्ध करना चाहिए तब दूसरे का भी कर सकते हैं।

जगत के सुधार की चिन्ता मत कर यार।
अपना मन जगत है पहले इसे सुधार॥

गुरु महाराज की शिक्षा का उद्देश्य था राग-द्वेष, ईर्ष्या, तृष्णा आदि से अपने को बचाते हुए संसार में रहें और गुरु में श्रद्धा विश्वास के साथ साधना में लगे रहें तो हम आनन्द तथा शान्ति के शाश्वत स्रोत परमात्मा की ओर बढ़ते चले जायेंगे।

आज के समाज में प्रेम महँगा हैं, नफरत सस्ती है. राग की कमी है द्वेष की ज्यादती है। परोपकार की भावना पर स्वार्थ की भावना हावी है। भगवान का पूजा-पाठ सिर्फ सांसारिक कामनाओं की पूर्ति के लिए। ऐसे माहौल से बचने के लिए और भगवत्प्राप्ति के उद्देश्य से हम सत्संग में आए। अगर प्रेम और सौहार्द को छोड़कर यहाँ भी वैसा ही माहौल बना लिया तो हमारे पैर गलत पगडंडी पकड़ लेंगे। मंजिल तक पहुँचना असंभव हो जायेगा।

उपासना योग व सन्त मत में गुरु का महत्व बहुत ज्यादा है क्योंकि इस आध्यात्मिक मार्ग की चढ़ाई में गुरु मार्ग-दर्शन करता है और समय-समय पर साधक को हिम्मत बँधाता है और सहायता भी करता है। आखिर में अहंकार रूपी खड़ी व चिकनी चट्टान तो गुरु के सहारे बिना चढ़ना व पार करना बड़ा कठिन काम है। गुरु साधक का हाथ पकड़कर धीरे-धीरे चोटी पर पहुँचा देता है जहाँ शाश्वत आनन्द है।

गुरु ऐसा तभी करता है जब उसके हृदय में शिष्य के लिए दया उभरे। ऐसा तभी होता है जब शिष्य श्रद्धा व विश्वास के साथ गुरु के बताए मार्ग पर चलता है और डरता रहता है कि मुझसे जाने-अनजाने कोई ऐसा कार्य न हो जाये जो गुरु की कृपा से वंचित कर दे। साधक सदैव गुरु से उसकी दया व कृपा के लिए प्रार्थना करता रहता है।

गुरु चरणों में सच्ची व निष्काम प्रीति तभी हो पाती है जब हम अच्छे व योग्य शिष्य बन चुके हों।

तात्पर्य यह कि अगर हमको पूर्ण गुरु नहीं मिला तो मनुष्य जीवन पाना व्यर्थ गया और अगर हम अच्छे शिष्य न बन सके तो भी मनुष्य जीवन व्यर्थ गया।

हमारे गुरु महाराज का सन्देश है कि अन्तःकरण को शुद्ध किए बगैर हम शाश्वत आनन्द व शान्ति के स्रोत तक नहीं पहुँच सकते और अन्तःकरण को शुद्ध करने का सबसे सरल उपाय है सत्संग व उपासना।

गुरु महाराज ने लिखा है-'हृदय जब तक निष्काम नहीं बन जाता, तब तक ईश्वर हाथ नहीं आता। दर्शन मे देर नहीं लगती, देर लगती है लोक-परलोक की वासनाये मिटाने में। जिस दिन तुम पूर्ण समर्पण कर सकोगे वह दिन जीवन में धन्य होगा।

हे गुरु! दया करो हम सब पर।



राजस्थान तथा बिहार सरकार द्वारा स्वीकृत

☼ साधन के नियम ☼



१. गूढ़ तथा अनुभवी गुप्त रहस्यों को सरल भाषा द्वारा जनता तक पहुँचाना तथा सदाचार की शिक्षा देना "साधन" का मुख्योद्देश्य है।

२. साधन प्रत्येक मास की २०-२१ तारीख को प्रकाशित होता है। जिन ग्राहकों को पत्रिका ३० तारीख तक न मिले, उन्हें डाकखाने तथा कार्यालय से तलाश करना उचित है। अंक न मिलने पर एक माह के अन्दर सूचित करने पर अंक दोबारा भेज दिया जायेगा।

३. साधन में अध्यात्मिक, सामाजिक तथा शारीरिक उन्नति के लेख ही छापे जायेंगे। राजनैतिक तथा अश्लील लेख भेजने का कोई भी सज्जन कष्ट न करें।

४. लेखों को घटाने बढ़ाने और छापने न छापने का अधिकार सम्पादक को रहेगा, परन्तु लेख प्रकाशित नहीं होने पर सम्पादक उत्तरदायी न होगा। लेख सरल भाषा में कागज के एक ओर ही स्वच्छ लिखे हों।

५. ग्राहकों को पता व ग्राहक नम्बर स्वच्छतापूर्वक लिखना चाहिए। उत्तर के लिए टिकट भेजना उचित है। बिना ग्राहक नम्बर के विलम्ब हो सकता है।

६. साधन का वार्षिक मूल्य रु० ६०/- है। एक प्रति का मूल्य रु० ५.०० है। केवल अगस्त १९९७ विशेषांक का मूल्य १२.०० है। एक वर्ष से कम के ग्राहक नहीं बनाये जायेंगे।



Reg. No. of R. No. 2959/57 Postal Regd No. MTR - HO - 12

Licence No. 001/ 97 to Post without prepayment



प्रबन्ध सम्पादक : आलोक कुमार, साधन हिन्दी मन्थली कार्यालय, मथुरा.
प्रकाशक : हेमेन्द्र कुमार, साधन हिन्दी मन्थली कार्यालय, डैम्पियर, नगर, मथुरा
मुद्रक : हेमेन्द्र कुमार, साधन प्रेस, डैम्पियर नगर, मथुरा.

तार का पता - साधन प्रेस टेलीफोन - 404545, 404066

सितम्बर 1997

साधन

संस्थापक -

समर्थ गुरु परम सन्त डा. चतुर्भुज सहाय जी



रामाश्रम सत्संग, मथुरा

इस अंक में





यद्दो वात ते गृहेऽमृतं निहितं गुहा ।
तस्य नो धेहि जीव से ॥

— सामवेद १८४२/३

—हे सर्वव्यापक परमेश्वर ! हे सर्वज्ञाता !! तेरे ज्ञानगेह में जो अमृत [ज्ञानामृत व प्रेमामृत] रखा है उसे हमें प्रदान करें ।

ॐ शान्तिः । शान्तिः ।। शान्तिः ।।।

वर्ष : ६५
अंक : २

सितम्बर १९९७

वार्षिक मूल्य : रु० ६०.००
इस अंक का : रु० ५.००

❊ जगत में भक्ति बड़ी सुखदानी ❊

जगत में भक्ति बड़ी सुखदानी ।
जो जन भक्ति करे केशवकी सर्वोत्ताम सोई प्रानी ॥
सबमें देखे इष्ट आपनो, निज अनन्यपन जानी ।
नैन नेह जल द्रवत रहत नित, सर्व अंग पुलकानी ॥
हरि मिलने-हित निज उमंग चित, सुध-बुध सब बिसरानी ।
विरह-व्यथामें व्याकुल निशि-दिन, ज्यों मछली बिन पानी ॥
ऐसे भक्तन के वश भगवत, वेदन प्रगट बखानी ।
'सरस माधुरी' हरि हँस भेंटे, मेंटें आवन जानी ॥

— सन्त सरस माधुरी जी

अमृत-बिन्दु

उपासना और सत्संग

—पूज्य गुरुदेव



उपासना में सत्संग का भी एक विशेष स्थान है। किसी-किसी का मत ऐसा है कि उपासना से पूर्व साधकों से परिश्रम कराना लाजिमी है। जप, तीर्थाटन, तप, सेवा इत्यादि मुमुक्षु को उपासना का अधिकारी बनाते हैं, इन से क्षेत्र बनता है, पीछे उसमें उपासना का बीज बोना चाहिये। और कई का यह मत है कि प्रथम गुरु का सत्संग करना चाहिए, यदि उसमें ही सारे दोष दूर हो जाएँ और जिज्ञासु तैयार हो जाय तो जपादि के करने की कोई जरूरत नहीं है ?

हमारे यहाँ इसी द्वितीय शैली का प्राधान्य है। अभ्यासी को सत्संग के द्वारा ही तैय्यार करते हुए आगे बढ़ाते हैं और धुर तक पहुँचाते हैं। जिस किसी के संस्कार ऐसे देखते हैं कि बिना परिश्रम के काम नहीं बनेगा उन ऐसों से जप उपासना इत्यादि करा लेते हैं, परन्तु मानसिक जाप ही कराते हैं, बाहरी जाप नहीं कराते।

सत्संग के अर्थ और भेद

सत्संग के अर्थ हैं 'सत् पुरुष' अर्थात् परमात्मा का संग होना। जहाँ बैठ के मनुष्य अपने को भूल जाय, अपने से बाहर के जगत को भूल जाय, केवल परमात्मा में तन्मय हो जाय और उधर को एकदम खिंच जाय, उसे सत्संग कहते हैं। इसके दो भेद हैं—(१) बाह्य सत्संग और (२) अन्तरंग सत्संग। जिस समय कोई महापुरुष बातचीत कर रहे हों, कुछ जुबानी उपदेश दे रहे हों तो ऐसी गोष्ठी का नाम 'बाहरी सत्संग है। जिस समय गुरु अपनी अन्तरात्मा को शिष्य के शरीर में प्रवेश कर अथवा शिष्य की आत्मा को अपने में खींच अपनी आत्मा से उसकी आत्मा का संयम कराता है, उसे 'आन्तरिक सत्संग' कहते हैं। जिन उद्देश्यों के लिये योग-जप-तप, प्राणायाम इत्यादि क्रियायें की जाती हैं वह सब बिना इनके किये केवल अन्तरीय सत्संग के द्वारा भी हो सकती हैं। इसमें गुरु की सामर्थ्य ही सारा काम करती है। अन्तर के स्थानों का खुलना, सुरति का ऊपर खिचाव होना, अन्तरीय शब्दों का प्रकट होना, मन और बुद्धि के विकार नष्ट होना, हृदय से मल और आवरणों का दूर होना इत्यादि यह सभी इससे हो जाते हैं। उसे किसी कर्म के करने की आवश्यकता नहीं होती। यहाँ इतना ही बताना था कि चन्द आदमियों का बैठ कर भगवद चर्चा करना ही सत्संग नहीं होता, बल्कि ऐसे महापुरुष के सङ्ग

बैठना, जो ईश्वर के साथ मिलकर एक हो रहा है, जिसने अपने को उसमें फना कर रक्खा हो सत्संग कहलाता है । ऐसे समर्थ गुरु की सुरति में अपनी सुरति मिलाने की क्रिया जिस शिष्य ने जान ली है और जो गुरु से शक्ति लेने और भरने की विधि जानता है, उस ऐसे जिज्ञासु के लिए उपासना दर्शन और मोक्ष सब इस सत्संग के द्वारा ही मिल सकते हैं। उसे किसी प्रकार के अभ्यास की जरूरत नहीं होती। हमारे यहाँ की शैली सत्संग की ही है । अभ्यास भी कराते हैं परन्तु प्रधानता इसी की रहती है । गुरु अपनी शक्ति से शिष्य को ऊपर चढ़ाता है और भिन्न-भिन्न अवस्थाओं से गुजारता हुआ माया की हद से पार ले जाता है। इसके द्वारा शिष्य को वही सारे लाभ हो जाते हैं जो अभ्यास से होते हैं। हाँ ! समय बच जाता है और परिश्रम नहीं करना पड़ता। जल्दी और बिना मिहनत के यदि कोई पहुँचना चाहे तो उसे इस प्रकार के सत्संगों की तलाश करनी चाहिये। केवल सत्संग के द्वारा चलने में साधक को बहुत सुभीता रहता है।

—:❋❋:—

तुम्हारे हृदय में ईश्वर है और वहीं तुम भी हो। उस शान्त ईश्वर में अपनी मनमानी कर रहे हो। उसी से दुखी हो।

× × ×

निश्चय रखो, अध्यात्म ज्ञान एक दीपक है। तुम्हारे घर में प्रकाश देने वाला एक चिराग है। वह नहीं तो अन्धेरा है। काम सही-सही कैसे कर सकोगे ? बिना आत्म ज्ञान के तो व्यवहार ठीक नहीं हो सकता।

× × ×

जीवन में दो चीजें हैं—न मरा हुआ किसी को प्यार कर सकता है, और न तो जिन्दा आदमी किसी मुर्दा को ही प्यार कर सकता है। आत्मा ही आत्मा को देखता है, आत्मा ही आत्मा को प्यार करता है।

× × ×

यह निश्चय समझो कि जो मार्ग नहीं चलना चाहते, उन्हें वह रास्ता बताने वाले भी ऐसे ही मिल जाते हैं जो स्वयं नहीं जानते और जो सच्चे जिज्ञासु हैं उन्हें मार्ग बताने वाले तत्काल मिल जायेंगे।

—पूज्य पण्डित जी

सम्पादकीय

कर्त्तव्य-बोध

हर मनुष्य के हृदय-क्षेत्र के एक कोने में अन्धकार का निवास है। संस्कार जनित परिस्थितियों में वही अन्धकार अन्तर में फैल जाता है और हमारे मन, बुद्धि और अहम् को आवृत कर लेता है। इस अवस्था में मनुष्य किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो जाता है। उसे कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का बोध नहीं रहता। बड़े-बड़े विद्वान, धीर मनुष्य, परमवीर योद्धा भी इस अवस्था से परास्त हो जाते हैं। गीता का अर्जुन ऐसा ही परास्त योद्धा है। वह धीर है, वीर है, विद्वान है, नरावतार है लेकिन जब हृदय में यह अन्धकार फैला तो उसकी वाणी अवरुद्ध हो गयी, शरीर थर-थर कांपने लगा। गांडीव हाथ से गिरने लगा। इसी को मोह की अवस्था कहा गया है। यह अज्ञान की अवस्था नहीं है। वहाँ ज्ञान तो है, लेकिन इस अज्ञान ने उसे घेर लिया है। जैसे खूब धूप निकल रही है लेकिन अचानक बादल हो गए। सूर्य ढक गया, अन्धकार फैल गया। सूर्य तो है लेकिन उस पर बादल आ गए हैं, बुद्धि ढक गयी है।

इसी प्रकार इस अवस्था में भी ज्ञान तो है लेकिन उस पर मोह के बादल आ गये हैं, बुद्धि ढक गई है। नरावतार श्री अर्जुन ज्ञान की बातें करता है, कुछ तथ्यों से तो वह जन साधारण की बुद्धि को भी सन्तुष्ट करता है। लेकिन क्या नाटक के पात्र को अधिकार है कि वह अपनी बुद्धि का प्रयोग करे? उसे तो वही करना पड़ेगा जो सूत्रधार कराना चाहता है। वही सम्वाद बोलना पड़ेगा जो सूत्रधार बुलवाना चाहता है। इसी प्रकार अर्जुन अपनी बुद्धि से कहता है कि इस युद्ध से क्या लाभ? जब घर के सब सदस्य मारे गये तो राज्य सुख किसके लिए? लेकिन वह तो नाटक का एक पात्र है। वह तो युद्धभूमि में योद्धा का चरित्र कर रहा है। उसका धर्म तो जो नाटक में कार्य दिया गया है उसे करना है। इस युद्ध का परिणाम क्या होगा? इससे उसे क्या मतलब? नाटक के पात्र को अधिकार नहीं कि वह सूत्रधार की बातों में तर्क करे। इसीलिए भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं :—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन् ।
मा कर्मफलहेतुर्भू मा ते संगेऽस्त्वकर्मणि ।।

गीता २/४७

कर्म करना मनुष्य की मूल प्रवृत्ति है। क्रिया जीव को जन्म के साथ ही मिली है। जीव के जन्म के कारण दोनों घटक—पुरुष एवं प्रकृति शान्त हैं। पहला घटक परमात्मा या पुरुष पूर्ण ज्ञानवान है,

प्रकाशयुक्त है लेकिन निर्विकार है, शान्त है। प्रकृति—दूसरा घटक—वहाँ अन्धकार है, प्रमाद है, आलस्य है, लेकिन वहाँ भी क्रिया नहीं। जब दोनों मिलते हैं तो वहाँ जीव की उत्पत्ति होती है। सत् शान्त है जो। पुरुष का गुण है तथा तम,—जो प्रकृति का गुण है—वहाँ भी शान्ति है, लेकिन जब दोनों मिलते हैं तब 'रज' की उत्पत्ति होती है, जहाँ क्रिया है। अतः यह क्रिया जीव के साथ ही आई। लेकिन इस क्रिया में कोई कर्ता नहीं है। यह क्रिया तो जीव की सहज प्रवृत्ति है। यह कर्तापन तो जीव पर छाये विकार [अज्ञान] के कारण आ गया है।

इस कर्तापन के कारण जीव का क्रिया से अपनापन जुड़ जाता है और इसी कारण क्रिया से उत्पन्न सुख और दुःख का अनुभव करता है। किसी क्रिया से उसकी इन्द्रियों एवं मन को सुख की अनुभूति होती है तो उसे वह बार-बार करना चाहता हैं और इस सुख की अनुभूति उसकी बुद्धि में समाती रहती है। इससे हमारे अन्दर वासना का आगमन होने लगता है। उस सुखानुभूति की क्रिया को बार-वार करने की उसमें कामना उत्पन्न होती है। उसे इस क्रिया से उत्पन्न फल से प्रेम हो जाता है यही राग है :—"सुखानुशायी रागः"। इसके विपरीत जिस क्रिया का फल हमारी इन्द्रियों को अच्छा नहीं लगता उससे उसे दुःख की अनुभूति होती है। "दुखानुशायी द्वेषः"—अर्थात् इस दुःख से उसमें द्वेष पैदा हो जाता है। इसी प्रकार यह कर्तापन की वंशवेल बढ़ती जाती है।

'सु' का अर्थ है—अच्छा और 'ख' का अर्थ है इन्द्रियाँ अर्थात् जो इन्द्रियों को अच्छा लगता है सुख और जो इन्द्रियों को बुरा लगता है दुःख। हमारा यह अहं ही यहाँ भोक्ता बन गया है। यदि यह अहं नहीं होता तो जीव सहज क्रिया में फल नहीं ढूंढ़ता। जैसे एक नाटक में कार्य करते हुए पात्र को यदि राजा का चरित्र करने को कहा है तो उससे उसे सुख नहीं होता। यदि भिखारी का चरित्र करने को कहा है तो उससे उसे कोई दुःख नहीं होता। उसे तो जो भी पार्ट दिया है उसे अपनी पूरी क्षमता से करना है। क्रिया में न सुख है न दुःख। वह तो एक सहज प्रवृत्ति है।

इस सहज प्रवृत्ति में ही हमारा 'अहम्' सुख और दुःख तलाशता रहता है। यदि यह अहम् न हो यहाँ केवल वह सहज क्रिया ही रह जायेगी। यह क्रिया तो अमरबेल की तरह है जिस पर फल आता ही नहीं।

हमने गरुड़ जी की कथा पढ़ी है। श्रीराम जी को मेघनाद ने नागपाश में बाँध लिया। उसी समय वहाँ श्री नारद का आगमन हुआ। भगवान राम ने नारद जी से कहा कि आप जाकर गरुड़ जी से कह दें वे आकर इस नाग को खा जाएँ और हम मुक्त हो जाएँ। गरुड़ आते हैं। नाग को खाकर राम को मुक्त करते हैं लेकिन स्वयं बँध जाते हैं। मैंने सुना था कि पूर्ण परमात्मा ही राम रूप में अवतरित हो रहा है। लेकिन यह कैसा परमात्मा? एक साधारण पुरुष के समान नागपाश में बँधा है। यदि मैं न होता तो राम बँधे ही रहते। इस "मैं" की वंशवेल के आने से वह सहज अवस्था में रहने वाले गरुड़—जो हर समय परमात्मा के समीप ही रहता है, जो उनका वाहन ही है—की दूरी भगवान से बढ़ने लगी। वह इस बढ़ती हुई दूरी से दुखी होकर श्री नारद के पास गये, श्री ब्रह्मा के पास गये, श्री शिव जी के पास गये, अन्त में भगवान शिव ने कहा कि तुम्हारे इस रोग का इलाज यहाँ नहीं हो सकता। उत्तर दिशा में एक सन्त रहते हैं

आप उनकी शरण जाएँ। वहाँ बहुत समय तक सत्संग करियेगा—"जब बहु काल करिअ सत-संगा।×"

यह रामाश्रम सत्संग भी काकभुसुण्डि जी का आश्रम ही है। यहाँ भी अनेकों गरुड़ अपने मोह का निवारण सहज में ही कर जाते हैं। पूज्य पण्डित जी महाराज सुनाया करते थे कि एक बार प्रसंगवश "बैअत" करने की प्रथा की चर्चा हुई। सूफी मत में गुरु शिष्य को 'बैअत' कर लेता है—अर्थात् शिष्य गुरु के हाथ बिक जाता है। श्री पण्डित जी बोले—हम तो इस प्रथा के पक्ष में नहीं हैं। अरे! हमारे पास तो सोने का सिक्का है। एक बार जो आवेगा, जाने का नाम ही नहीं लेगा। और यदि कोई जायेगा भी तो हमें पूर्ण विश्वास है कि वह लौटकर अवश्य आयेगा क्योंकि यह विद्या अन्यत्र दुर्लभ सी ही है।



—: अभिलाषा :—

आया हूँ तेरे मैं चरणों में, न कर देना इन्कार मुझे।
भला हूँ बुरा हूँ जो भी हूँ, प्रभु कर लेना स्वीकार मुझे ।। आया हूँ० ।।

एक विनय हमारी है तुमसे, प्रभु अरज मेरी मंजूर करो।
बस ध्यान रहे गुरु चरणों को, प्रभु ये मुझ पे उपकार करो ।। आया हूँ ।।

गुरुदेव तुम्हीं हो देव मेरे, न कोई और है देव मेरा।
मैं तेरी शरण में आया हूँ, रख लो तुम आपन द्वार मुझे ।। आया हूँ० ।।

मेरी नैया मझधार में है, न केवट कोई है अपना।
अब डूब चली प्रभु, आओ तुम, जैसे भी हो लो सँभाल मुझे ।। आया हूँ० ।।

ये मन तो बड़ा ही चंचल है, कैसे मैं प्रभु तेरा ध्यान धरूँ।
थोड़ी सी कृपा जो हो जाये, तो हो जाये दीदार मुझे ।। आया हूँ० ।।

सत्संग में बैठे हैं हम सब, श्री गुरु चरणों का ध्यान करें।
सत लोक से आकर के गुरु वर, हम सब का वो कल्याण करें ।।आया हूँ०।।

प्रवचन-पराग

मन का निरीक्षण

—परम भागवत की वाणी



आप जानते हैं जो व्यापारी अपने व्यापार के हिसाब का नित्य निरीक्षण करते हैं वही अपने व्यापार में लाभ उठाते और सफल होते हैं। अतः साधक को भी नित्य अपने मन का निरीक्षण करते रहना चाहिए। यह तो ठीक है कि तुम चौबीस घण्टे भजन नहीं कर सकते। हां ? प्रातःकाल उठो पवित्र होओ, थोड़ी देर ईश्वर का ध्यान करो, जिससे हृदय पवित्र हो, विचार शुद्ध हों, तब फिर अपना काम—जो जीविका प्राप्त करने का है—पूरा करो। उसके बाद फिर जो भी अपने शरीर या परिवार के लिए चाहिए पूरा करो। फिर थोड़ा ईश्वर का ध्यान करो, आगे निद्रा लो। ऐसा करने से स्वास्थ्य भी ठीक रहेगा, काम भी पूरा होगा। परन्तु इन चारों बातों में एक काम निरीक्षण का भी रक्खो। प्रथम प्रातः समय पर उठे या नहीं, फिर पवित्र होकर श्रद्धा के साथ भगवान का ध्यान किया या नहीं, कभी-कभी बस थोड़ी देर नाम मात्र को ही बैठे, और बैठे भी तो मन बाहरी बातों में लगा रहा, यह सब देखो मन की जाँच करो, और उस पर नियन्त्रण रक्खो, क्योंकि मन तुम्हारा है तुम्हारे ही भले के लिए है, इसलिए तुम खूब देखभाल करो, जो काम इसे दिया है सत्यता से करता है या नहीं।

जैसे तुम किसी काम को पूरा करने को नौकर रखते हो, फिर उसकी बराबर देखभाल भी रखते हो, ऐसे ही मन की भी देखभाल रक्खो, नहीं देखोगे तो आलसी हो जायेगा, तुम्हें धोखा देगा। फिर दूसरी बात यह भी देखो कि जब मन संसार का काम करे तो खराब नीयत से तो नहीं करता—चोरी, बेईमानी, धोखा आदि देकर धन कमाने में ही तो नहीं लगा रहता। अपनी असावधानी से मन तुम्हें दुःख में डाल देगा, इसलिए बारबार मन को देखते रहो। वह कभी-कभी तुम्हें बड़ा लालच देगा, तुम्हें बेईमानी की ओर लाने को बाध्य भी करेगा, बहुत से ऐसे उदाहरण भी देगा कि इनमें क्या दोष है, बहुतों ने ऐसा ही किया, जब मालदार हो जाओ तो दान कर देना, वासनाओं की पूर्ति के लिए तुम्हें बार-बार उकसावेगा, बड़े-बड़े लोगों की ओर संकेत करके उनमें फँसावेगा, परन्तु याद रक्खो, जब मन तुम्हें फंसा देगा तो दुःख तुम्हें उठाना पड़ेगा, और तब वह कहेगा कि मैंने यदि ऐसा कहा भी तो तुमने मुझे रोका क्यों नहीं ? निश्चय रक्खो कि मन इस समय तुम्हारी बात छुपाता है परन्तु जब धर्मराज के पास जायेगा, तो तुम्हारे सारे अवगुण बता देगा और तुम्हें नरक के दुःख भोगने पड़ेंगे। इसलिए मन को कभी

स्वतन्त्रता मत दो। इसको हर क्षण प्रभु के ध्यान में लगाओ, सन्तों की संगति में लगाओ। यदि थोड़ा भी यह इधर-उधर हो तो इसे जरूर डांटो, कहो आज काम ठीक नहीं किया, इसलिए भोजन के भी हकदार नहीं, ऐसा कभी-कभी इसे उपवास भी कराओ। इसकी शक्ति कम हो जायेगी। तुम यह भी निश्चय रक्खो कि मन एक इन्द्रिय है, आपके काम करने को भगवान ने दी है, तुम मालिक हो कहीं भूलकर उसको मालिक मत बना लेना।

तुम यह भी जानते हो कि तुम्हारा सारथी, तुम्हारे रथ को यदि ठीक न चलावे अपने घोड़ों (इन्द्रियों) को ठीक न रक्खे, तो आपको कहीं भी दुःख में डाल सकता है। ऐसे ही मन इन्द्रियों को न रोके तो इस अन्तरात्मा की क्या दशा होगी। भगवान ने हर जगह तभी कहा है कि मन को संयमित रक्खो, अपने वश में रक्खो। वैसे ऋषियों ने इस मन को ठीक रखने के लिए तीन बार भगवान का ध्यान करने को लिखा है अर्थात् त्रिकाल संध्या करो। परन्तु सन्तों ने बढ़ाकर पाँच बार ध्यान करने को कहा है। अर्थात् बार-बार ध्यान करने से बार-बार इसको ईश्वर की ओर लगाने से, इसकी मलिनता छूट जायेगी। और यह भी ठीक कहा है कि यदि आपने मन को शुद्ध कर लिया तो स्वर्ग में चले जाओगे और यदि उसकी परवा नहीं की तो नरक में पहुँचा देगा।

यदि आप अपने मन पर अधिकार चाहते हो, तो उससे अपनी इच्छा का ही काम लो, वह खाने की इच्छा करे, कहो नहीं पहिले प्रभु का भजन, पीछे भोजन। यह कभी तुम्हें विषयों की ओर ले जाना चाहे तो कहो मैं हरगिज नहीं जाऊँगा। फिर यदि तुम्हें बार-बार उस ओर खींचे, तो फिर जोर-जोर से प्रभु का नाम लो, कहो मुझे बचाओ, यह मुझे कुमार्ग की ओर खींच रहा है वह रक्षा करेंगे। फिर जैसे तुम कभी-कभी नौकर को निकाल देते हो, काम से बैठा देते हो उससे भी काम मत लो, उसको कुछ देर के लिए अलग कर दो। बस जब तुम कुछ देर को मन को शान्त कर दोगे, तो बस महान शान्ति में आओगे, फुरसत होगी, अपना स्वरूप देखोगे। दुःख, सुख, मान, अपमान, जीवन, मृत्यु सब उसी के साथ थे। तुम उन सबसे अपने को अलग पाओगे। सन्त यही तो कहते हैं। जब चाहते हैं मन से काम लेते हैं जब चाहते हैं मन से अलग होकर आत्मा का आनन्द लेते हैं।

कहते हैं एक मालदार को एक नौकर की आवश्यकता थी। सोचा कोई ऐसा नौकर मिले जो हर समय काम करे। वेतन भी कम ले। कुछ दिन बाद एक आदमी उनके पास आया, बोला मुझे आप काम पर रख लो। पूछा क्या काम करोगे? बोला—तुम कहोगे वह और तुम न कहोगे तब अपनी ओर से काम करूँगा। मुझ से बगैर काम के बैठा नहीं जाता। फिर वेतन, अजी मेरा वेतन, बस काम। धनी बोला—वाह, बड़ा अच्छा रहा काम बता दिया, तत्काल करके आ गया, बताइये काम। जो काम दे, करके आ जाए, फिर बताइये काम। मालिक ने दिन भर काम बताया, संध्या हुई—बताओ काम, मालिक सोना चाहे, नौकर कहे बताइये काम। न काम हो तो फिर वह अपनी ओर से मनमाने काम करे। मालिक घबड़ा गया। इधर तो बिना वेतन का नौकर छोड़ा भी न जाए, उधर मालिक को एक क्षण चैन भी न लेने दे। बस यही तो हमारा हाल है, मन न शान्त होता है न मालिक को शान्ति पाने देता है। बस सुखी वही है जिनका मन पर अधिकार हो। ऐसे चंचल मन को ही सन्तों ने शैतान का नाम दिया है।

निश्चय जानो कि मन से छुटकारा उतनी ही देर तक पा सकोगे, जब तक तुम परमेश्वर के ध्यान में लीन हो जाओगे। बस ईश्वर के सामने इसकी कुछ नहीं चलती, इसलिए तो जब तुम ईश्वर की ओर जाना चाहते हो, तो नाना प्रकार के लोभ, नाना प्रकार के लालच, अनेक प्रकार के भय, अनेक प्रकार के विघ्न सामने लाकर खड़ा कर देता है। बस तुम इनकी ओर न देखकर ईश्वर की ओर बढ़ जाओ, तो आगे नहीं जायेगा, और शान्त बैठ जायेगा। यह मन मरता भी नहीं है। तुम्हारे साथ जागता, तुम्हारे साथ सोता, एक क्षण को अलग नहीं। एक बहुत अच्छे साधक थे कुछ अस्वस्थ हो गये, डाक्टर ने कहा तुम अण्डे खाओ, मांस खाओ ताकत आयेगी, खूब स्वस्थ हो जाओगे। वह बोले यह तो मैंने आज तक नहीं खाया, इससे तो हिंसा होगी, मेरे विचारों में तामसी गुण आवेगा, वह बोले—अरे, तुम भी पुराने ही विचारों के आदमी हो, रूढ़िवादी हो। आज का युग विज्ञान का युग है, थोड़ा सोचो गेहूँ में, दूध में, अण्डा में क्या अन्तर है। बड़े-बड़े ऋषियों ने भी खाया है। महात्माओं ने यज्ञ में आहुतियाँ दी हैं, स्वयं सेवन किया है। अपने स्वास्थ्य के लिए यह सब लेना चाहिये, वह लेने लगे और अपने गुरु को पत्र लिखा, 'मैं यह सब पसन्द नहीं करता था, परन्तु डाक्टर के आग्रह से लेने लगा हूँ। आप क्षमा करेंगे।' इसके बाद ही वह ऐसी बीमारियों में फँसे कि छूटना कठिन हो गया। कारण यही था अन्तर आत्मा नहीं चाहती थीं, मन के बहकावे में आकर उसके विरुद्ध किया।

निश्चय जानो कि यदि तुम अच्छे विचार वाले हो कुछ भगवान की ओर जाते हो किसी सन्त का साथ लिया है, तो मन अवश्य पवित्र होगा, सतोगुणी विचार आने लगेंगे परन्तु यदि फिर तुम उसी तरफ गये तो सोचो क्या दशा होगी। मैंने एक माँ को देखा जब वह कुछ अस्वस्थ होती तो वह ओषधि नहीं लेतीं, केवल गङ्गा जल तुलसी के पत्र लेतीं। परन्तु जब सब लोग कहते कि दवा अवश्य लो, तो वह लाचारी से ले लेतीं, तब उनकी बीमारी और बढ़ जाती, दुखी हो जातीं, तब पुनः गंगा जल लेतीं स्वस्थ हो जातीं। लोग जानते हैं कि इन वस्तुओं के खाने से शरीर में बल आवेगा परन्तु निश्चय समझो शक्ति इन वस्तुओं में नहीं वह तो परमात्मा में है, गन्दी त्याज्य वस्तुओं को त्यागो, थोड़ी देर ईश्वर का ध्यान करो, उस अनन्त शक्ति से परिपूर्ण हो जाओगे। खाने की वस्तुओं से हो सकता है कुछ शारीरिक शक्ति बढ़ भी जाये, परन्तु वह कोई अमूल्य शक्ति नहीं है, तुम्हें और भी संसार में फँसाने वाली होगी।

महात्मा गांधी ने राम नाम की महिमा में लिखा है कि एक बार मेरा बड़ा लड़का देवदास गांधी बीमार हो गया, और दशा इतनी खराब होती गई कि उसकी जीने की कोई आशा ही नहीं रही। हालत गिरती ही जा रही थी। बम्बई चौपाटी में ठहरे थे। कई डाक्टर देखने आये। सबकी राय हुई, इसमें शक्ति लाने के लिए माँस का जूस दिया जाए तो बच सकता है। गांधी जी से कहा—आप इसे यही दीजिये जान बच जाये, नहीं तो यह कुछ ही समय का मेहमान है। गांधी जी ने कहा, हम यह तो नहीं दे सकते। भगवान जो करेंगे, वह ठीक है। डाक्टर लोग चले गये। आपने उसे बस एक भीगा कम्बल उढ़ाया और चौपाटी की ओर निकल गये। वह लिखते हैं कि बस मेरे हृदय से मेरे तन-मन से राम नाम ही निकल रहा था। मैं आधे घण्टा घूमा और ऐसा लगा कि मैं राम में ही घूम रहा हूँ। फिर ख्याल आया घर चलूं। किवाड़ खोले। लड़का

बोला—'बापू' ? पूछा—क्या हाल है ? अब मैं बिल्कुल ठीक हूँ। डाक्टर फिर आये पूछा आपने इसे क्या दिया है ? बोले कुछ नहीं। प्रभु नाम की महिमा है। उसकी शक्ति अपार है। इसलिए तुम, सत्य की ओर चलो, इस संसार के भोगने के प्रलो-भन में सत्य और अहिंसा को मत छोड़ो। ऐसे कठिनाइयों के समय जो सत्य को पकड़े रहते हैं, सत्य (भगवान) उससे प्रसन्न रहता है, उनकी आत्मा में शक्ति आती है और उससे वह सदैव सुखी और सन्तुष्ट रहते हैं। ऐसे अवसरों पर मन पर विजय पाना कठिन तो अवश्य होता है, परन्तु जो एक बार भी विजय पा जाते हैं फिर उनका मन उनके वश में अवश्य हो जाता है। वह कठिनाइयों से घबराते भी नहीं।



❀ ज्योति पर्व ❀

(श्री सूरज प्रताप)

ज्योति पर्व पर हुआ अवतरण परमगुरु भगवान का,
दिग दिगंत हो उठा प्रकाशित ज्योति से संसार का।

अमर हो गयी तीन नवम्बर जिस दिन प्रभु अवतरित हुये,
धन्य धरा भारत माता को पा स्पर्श चरण रज का।

धर साकार स्वरूप ब्रह्म ही प्रकट हो गया अवनी पर,
दर्शन सहज हो गया जग को परम पिता भगवान का।

जब-जब होती हानि धर्म की प्रकटित होते हैं भगवान,
इसी नियमवश हुआ अवतरण दीन-बन्धु भगवान का।

रूप चतुर्भुज मोहिनी सूरत सुन्दरता की खान प्रभु,
लज्जित सुन्दरता भी होती देख रूप भगवान का।

मथुरावासी, हैं अविनाशी, जीवन के आधार प्रभू,
मिटा दिया अज्ञान जलाकर दीपक सच्चे ज्ञान का।

सहज सरल साधना बताई जीवों के कल्याण को,
सन्त सङ्ग, सत्संग आन्तरिक, पथ है सहज विकास का।

ऐसे दया सिन्धु सद्गुरु को कोटि-कोटि प्रणाम करो,
सहज रूप से बिना योग-तप जीवन का उद्धार करो।

बनो उपासक परमपिता के लक्ष्य प्राप्त हो जीवन का,
सच कहता 'हनुमान' इसी से दर्शन होगा राम का।

अवतरण पर्व पर :-

ब्रह्मलीन परम संत श्री डा. बृजेन्द्र कुमार जी

(सन्त व साधक)

आप प्रेम लोक से प्रेम भरा टूटा दिल लेकर प्रकट हुए। इसी कारण गम्भीर, चिन्तनशील, विवेकशील हृदय में एक अतिरिक्त प्यास, आँखों में अजीब आकर्षण लिये हम सबके सामने दिखाई दिये। उनके प्रेम स्वरूप को समाज ने समझा और सराहा। निकट से देखने पर लगा कि—जैसे प्रेम की मारी गोपीं दूध दोहते-दोहते रुक जाय, बच्चे को काजल लगाते-लगाते ठिठक जाय, बात करते-करते मौन हो जाय, ऐसे ही जीवन के व्यवहारों में संसार व परमार्थ की रेखा पार कर पल भर में आत्मा में रमण करने लगते।

विरह की पीड़ा लेकर मिलन का सन्देश देने के लिये हम लोगों के बीच ४ सितम्बर १९१९ में आए। समर्थ गुरु महात्मा श्री रामचन्द्र जी ने आपका नाम बृजेन्द्र कुमार रखा।

गौर वर्ण, उन्नत ललाट, कमल से नेत्र, लम्बी बाहें—जो एक महापुरुष की पहिचान हैं—उन्हें प्राप्त थीं—जिन्हें देखकर सहज ही आकर्षण पैदा हो जाता था। इनके जन्म के समय श्री दादा गुरु ने गुरुदेव से कहा—'यह तुम्हारी रुहानी औलाद है'। दादा गुरु के गुरु भाई जनाब फकीर अब्दुलगनी साहब ने कहा 'आप के यहाँ तो औलिया ने जन्म लिया है।'

आप एम० बी० बी० एस० डाक्टर थे। मथुरा सिविल अस्पताल के डिप्टी सी. एम. ओ. पद से ३१ मार्च १९७९ को अवकाश ग्रहण कर लिया।

१६ वर्ष की उम्र से ही साधना आरम्भ कर दी। मितभाषी व मृदुलभाषी होने के कारण इनकी साधना इतनी गोपनीय तौर पर चली कि कोई यह न जान पाया कि यह भी उच्चकोटि के एक साधक हैं। आप पूज्य गुरुदेव के पुत्र भी थे व शिष्य भी। उन्हें देखने पर लगता—एक निस्पृह, निःसंग, दयार्द्र योगी गृहस्थी का सुन्दरतम वेश धारण किये सामने खड़ा है जो बिना कुछ कहे, बिना कुछ बोले, बिना कुछ पूछे—ईश्वरीय सत्ता व गृहस्थी में योग का आभास देता है। गुरु महाराज गृहस्थों के जीवन में इसी चीज को उतारना

चाहते थे जिसका आदर्श और उदाहरण स्वयं बड़े भैया थे ।

गरीब रोगियों व सत्संगियों की सेवा से वह कभी चूकते न थे । सेवा को वह साधना का एक महत्वपूर्ण अङ्ग मानते थे । परमपूज्या भाभी माँ एक सच्ची सहधर्मिणी थीं, और थीं वैचारिक, भावनात्मक व आत्मिक एकत्व की अद्भुत ज्योति । स्वयं में एक आदर्श गृहस्थ जीवन का अनुपम उदाहरण, सत्संग, सेवा, सहयोग, समर्पण, शान्ति व वात्सल्य का एक जाग्रत स्वरूप ।

पवित्रता की कोई सीमा नहीं होती । पूज्य बड़े भैया हर तरह की पवित्रता के असीम स्वरूप थे । उन परम पवित्र के हृदय के समय-समय के उद्गार व व्यवहार ही उसका मापदण्ड बताते हैं ।

उनके मञ्च पर विराजते ही आकर्षण की एक लहर दौड़ जाती थी, बेसुधी की दशा में समाज चला जाता था और पवित्र आँसुओं से धुले चन्द धवल शब्दों को सुन सारा समाज सिसकियाँ ले उठता था । आनन्द और प्रेम की एक पावन पयस्विनी ही प्रवाहित हो उठती । इस प्रकार बड़े भैया शक्ति के भण्डार होते हुए भी विनम्रता के आगार ही बने रहे ।

भैया चाहते थे कि गुरु महाराज की बगिया का हर फूल सुगन्धि ही बिखेरे और पूर्ण विकास में आए ।

एक बार उन्होंने बताया था कि "जीवन में मेरी तीन अभिलाषायें थीं :—

पहली—गुरु महाराज की सेवा ।

दूसरी—जिया माँ की सेवा ।

तीसरी—सत्संग की पवित्रता व एकाग्रता बनाए रखना ।

दुखी होकर बोले—"पहली सेवा से तो मैं वंचित ही रहा, जिया माँ की सेवा थोड़ी बहुत बन जाती है—उसे कर लेता हूँ ।"

तीसरी सत्संग की एकता बनाए रखने के लिए मैं चिन्तातुर रहता हूँ ।

सन्त दायरे तोड़ते हैं । परन्तु उनके न रहने पर उनके अनुयायी उस प्रकाश के अभाव में दायरे बनाने लगते हैं, मिशन की पवित्रता व एकता खण्डित होने लगती है । यह दुर्दिन गुरु महाराज के सत्संग को न देखना पड़े । उन्होंने बताया था परिवार हो या समाज, पवित्रता व एकता बनाए रखने के लिये स्वयं जहर पीना पड़ता है । सत्संग की एकता व एकरूपता बनाए रखने के लिये उन्होंने सुझाया था कि 'ध्यान की क्रिया बताते समय सबको एक ही बात कहनी चाहिए । भिन्न-भिन्न शिक्षक अलग-अलग तरीके से क्रियायें बताते हैं इसलिए भिन्नता शुरू से आ घेरती है ।'

शिक्षकों को समझाते हुए उन्होंने कहा कि हमें पंडित जी की तरह निष्कामता सीखनी है । दूसरा—माया से पार हो जाना आसान नहीं है । शिक्षक मैं और मेरे से बचें । तीसरा—शिक्षकों को एकान्त सेवन अवश्य करना चाहिए । चौथा—उनकी बातचीत में एक गम्भीरता रहनी चाहिए । पाँचवा—साधक को इस बात से अवगत कराया जाय कि ईश्वर प्राप्ति के लिए अन्तर्मुखी साधना आवश्यक है व ईमानदारी की कमाई ।

प्रवचन पीयूष तत्व

१—जो साधक अपने गुरु को समर्पण कर देते हैं, गुरु उन पर रगड़ लगाते हैं। जो साधक उसे अच्छी तरह सह लेते हैं उन्हीं पर गुरु की कृपा होती है।

२—मनुष्य का अन्तःकरण एक मन्दिर है। उसमें मल आवरण अन्धकार ने इस भवन की बुरी दशा कर रखी है। परमात्मा का अंश जीव आत्मा रूप में अन्धकार में दबा पड़ा है। मनुष्य जन्म तभी सार्थक होता है जब हम इस अन्तःकरण रूपी मन्दिर को मल-आवरण से मुक्त कर निर्मल कर जीवात्मा को फिर से प्रतिष्ठापित कर दें। बस-हमारा अन्तःकरण शान्ति व आनन्द से भर जायेगा। गुरु महाराज की साधना प्रणाली से हृदय मन्दिर का जीर्णोद्धार हो जाता है।

३—जो, गुरु से मनुष्य समझकर मिलते हैं उन्हें मनुष्य जैसा लाभ, जो, महापुरुष समझकर मिलते हैं उन्हें महापुरुष जैसा लाभ और आगे जब ईश्वर समझकर उनसे मिलते हैं तो ईश्वर दर्शन का पूरा लाभ प्राप्त होता है।

नोट :—जैसे-जैसे हृदय खाली होता जायेगा, गुरु का असली रूप सामने आता जायेगा। इसके पूर्व गुरु को समझना व कृपा पाना कठिन है।

४—मन को एकाग्र करना ही ध्येय नहीं, अन्तःकरण की शुद्धि भी आवश्यक है। अन्तःकरण की शुद्धि की पहचान विनम्रता व शुद्ध व्यवहार से होती है।

५—२ जनवरी १९८६ गया भण्डारे में समापन प्रवचन में कहा—'सत्संगियों में पाखण्ड और आचार्यों में अफसरशाही पनपने लगी है। मिशन की सच्ची सेवा के लिये सत्संग को इन प्राणघातक कीटाणुओं से बचाना होगा।

प्रिय पात्र प्रसंग भी

पूज्य बड़े भैया को रामायण के कुछ प्रसङ्ग तथा पात्र विशेष रूप से प्रिय थे। वास्तव में अपने निजी जीवन तथा भाव के अनुसार ही संसार अपने-अपने इष्टों और पात्रों को चुनता है।

पूज्य बड़े भैया को भरत में भी अधिक लक्ष्मण का त्याग और सेवा बहुत पसन्द थी। माँ कैकयी का प्रसंग भी उन्हें बहुत प्रिय लगता था। उनके सारे कार्य लोक हितार्थ व श्री राम को प्रभु राम बनाने, उनके अवतरण के हेतु को सार्थक कराने, मानवता की पीड़ा हरने, मित्रों, भक्तों, माँ शबरी के मनोरथों की पूर्ति कराने की ओर ही उन्मुख थे—बस श्रीराम प्रेम के ज्वार-भाटे में कुछ भी करने की उन्होंने ठान ली। तीसरा पात्र जो उन्हें विशेष आकर्षित करता था वह थे हनुमान जी। श्री हनुमान जी की सेवा निष्काम थी—चाहना थी तो मात्र प्रभु के श्री चरणों का मकरन्द पान। श्री हनुमान में भक्त हृदय की वह सरलता थी कि माँ सीता से प्रभु के प्रिय रंग की जानकारी पा उस रंग से सारा शरीर ही रंग डाला। वे प्रभु की बराबरी पर कभी न बैठे, श्री चरणों के पास बैठना परम सौभाग्य माना। सच्चे गुरु भक्त को सरलता, निष्कामता, दीनता और सेवाभावना की बड़ी आवश्यकता है।

आपका जीवन प्रकाश का पुञ्ज था। आज आकांक्षा है आपके आशीर्वाद की व प्रकाश की जिससे हम वैसे बन सकें जैसा पूज्य गुरुदेव चाहते थे, पूज्य पण्डित जी चाहते थे व आप चाहते थे जिससे हम आपकी तीसरी इच्छा को अभी व भविष्य में भी पूर्ण करते रहें—करते हैं जिससे यह सत्संग बगिया हरी-भरी रहे व सारे विश्व में यह फैल उसे शान्ति व आनन्द देती रहे।

हम भरे हृदय से पुनः पुनः हे पूर्णतम प्रणाम करते हैं। हे देवाधिदेव! दया करें।



मातृ चरणों में

—सन्त श्री ओमप्रकाश विरल

['साधन' के मई माह के अङ्क में प० पू० श्री विरल जी के करुणा विगलित भाव गीत में गोते लगा बहुत से प्रेमी भाईयों ने पत्र लिखकर आग्रह किया है कि उस दीमक खाई कापी की अन्य प्रेम उर्मियों को भी प्रकाशित किया जाय। अस्तु प्रस्तुत है यह प्रेम गीत—जो उस आदि शक्ति (पूज्य गुरुदेव) को सम्बोधित है ।

सन्त की वाणी वीणा बन जाती है कविता या गीत में उतर—जब यह मस्तिष्क से आ हृदय में झंकार देती है तब इसमें माँ मीरा के घुँघुरुओं की रुनझुन, सन्त सूर के इकतारा की गूंज श्री चैतन्य महाप्रभु की अश्रुभरी पुकार साकार हो सुनाई देती है हाँ, यह सब होता है आनन्दमय कोश में ही ।—रुद्र]

तुम्हारी स्मृति में प्रतियाम—
अश्रु बहाना ही रह जाए केवल मेरा काम ॥
मुझे 'माँ' दे दो यह वरदान ॥
विस्मृति के गहनान्धकार में,
खो जायें प्रियजन मेरे ।
स्मृति के आलोक मधुर में पाऊँ एक तुम्हारा नाम ॥
अब तक जिससे जी बहलाया,
भूलूँ अब वह भी संगीत ।
अब ये कर्ण विकल हो सुनते सदा तुम्हारा मधुमय नाम ॥
भूले सब घर-बार मुझे औ,
सुध न रहे तन की अपने ।
समीपत्व ही आज तुम्हारा बन जाए 'माँ' मेरा धाम ॥
वैसे मर्जी रही तुम्हारी,
अपना लो या ठुकरा दो ।
पर मुझको तो यही अभीप्सित 'माँ' विरद न हो तेरा दुर्नाम ॥

अनुराग भर दो

—श्री प्रकाशचन्द्र सक्सेना





गा सकूं मैं गीत तेरे, साधना की इस डगर में
गुरु ! मेरे इस हृदय में, सरसतम अनुराग भर दो।
एक तुम केवल तुम्हीं तुम
और ना कुछ दृष्टि गोचर
मैं तुम्हें ही बस निहारूँ
जगत की सब चाह तज कर
कामना की माँग में ऐसा अमर सुहाग भर दो।
जिधर भी तुम ले चलो
मैं सदा चलता रहूँगा
गीत तेरे राह में ही
प्रेम से गाता चलूँगा।
राग का परित्याग कर दूं, वह अटल वैराग भर दो।
प्राण - लहरी पर थिरकते
शांत रस में नित महकते
मौन स्वर के पुष्प कोमल
तेरे चरणों पर बिलखते
द्रवित कर दें जो तुम्हें भी, वे करुण उद्गार भर दो।
युग युगों से गीत गाये
पर न तुम को मीत भाये
स्वांग भी कितने रचाये
पर न तुमको रास आये
जो तुम्हें बस खींच लाये, वही अनुपम भाव भर दो।
देखता हूँ रंग तेरे
दिस दिशाओं में घनेरे
और रँग मत डाल मुझ पर
जगत के मनहर चितेरे
इस अधम पापी हृदय में, प्रेम रँग की फाग भर दो।
यश तुम्हारा नित्य गाऊँ
तुम्हें गा गा कर बुलाऊँ
प्रेम के अवतार सुनलो
साधना के मूल सुन लो
मैं कभी भूलूं न तुमको, नाथ ! ऐसा आज वर दो।

दीदार

लेखक —शेख अहमद उल्ला साहब, इलाहाबाद

डाक्टर साहब मरहूम से शर्फबारयाबी (मिलने का अवसर) मुझे सिर्फ एक ही मर्तबा मिला, वह भी बहुत मुख्तसिर (अल्प)। गालिबन सन् १९५६ ई० में जाड़ों का जमाना था। बैंक रोड एलाहाबाद, पर रात को जल्से (समारोह) में मैं भी शरीक था। सब लोग इन्तजार में थे। हाँलाकि डा० साहब से दोस्तों ने पहले ही गायबाना तअर्रुफ (पहचान) करा दिया था, लेकिन अभी तक चूँकि जियारत (दर्शन) नसीब नहीं हुई थी, कुदरती तौर पर ज़हन (दिमाग) में तरह-तरह के तसव्वुरात (ख्याल) अँगड़ाइयाँ ले रहे थे और दिमाग ने एक अजीब सा नक्शा बना रक्खा था। बारे खुदा खुदा करके काफी रात गए डा० साहब तशरीफ लाए तो मैं उन्हें देखकर हैरत (आश्चर्य) में पड़ गया और दिमाग ने डा० साहब का जो नक्शा खींचा था उसके बरक्स (उलटा) पाया। जाहिरी शक्ल सूरत के एतबार (भरोसे) से बिल्कुल एक मुसलमान सूफ़ी मालूम पड़ते थे। सूफी के लिए मुसलमान का लफ्ज (शब्द) कदसन (मजबूरी) ले रहा हूँ, हाँलाकि उनका मजहब आफ़ाकी (सारे संसार) होता है और वह हर वक्त हम ओस्त (सब ईश्वर है) के नग़मा (गीत) से सरशार (मस्त) रहता है।

चेहरे पर हद दर्जा मतानत (गम्भीरता) व संजीदगी बरसती थी। आँखों से दिल की गहराई और अज़ीम (ऊँची) रुहानियत का पता चलता था। तबियत में एक सोज़ (निखार) एक जलन थी जो कि लोगों को कम से कम वक्ती तौर पर बगैर मुतअस्सर (प्रभावित) किए नहीं रहती थी।

बहुत हल्के अन्दाज में तकरीर (प्रवचन) शुरू की। गालिबन तकरीर का मौज़ू (विषय) फलसफा रुहानियत और खुदा तक रसाई (पहुँच) हासिल करने के ज़राये (साधन) था। बिला मुबालगा (अत्युक्ति) मैंने इससे पहले इस मौज़ू पर न कोई किताब पढ़ी थी। फिर लुत्फ (मजा) ये कि सादे अल्फाज में ऐसी बात कह देना कि हर शख्स मुतमय्यिन (सन्तुष्ट) हो जाय और पेचीदा मसायल (उलझी समस्या) से टकराये बगैर और येख्तलाफी (असम्मत) मसायल से कतराकर येख्तलाफी गिरोह के दिलों को रख लेना डा० साहब की खास खूबी थी। मुझे अच्छी तरह याद है कि उस रात के जल्से में शहर के सर्बरा बुर्दा बुजुर्ग (नामी) और आलिम (विद्वान) मौजूद दौरान तकरीर में कर्म के फलसफे पर भी डा० साहब ने रोशनी डाली ज्यादा जोर अपने साधन पर दिया था। लोगों पर

बलिहाज़ आदाबे महफिल सकूत (खामोशी) तारी (छाई) थी। ××× मैंने जल्से में लोगों को पुर सकून (पूरी शान्ति) पाया। ×××

जलसा खत्म होने पर जब हम रुखस्त हुए तब मेरे चन्द हिन्दू साथी रास्ते में अपना-अपना अनुभव बयान करने लगे। उनके बयान से पता चलता था कि उन्होंने काफी हद तक असर लिया था।

मैं रास्ते भर अपने अन्दर तबदीली को महसूस कर रहा था और एक अजीब सी लज्जत से झूमता चला जा रहा था। मैं दिल ही दिल में यह कह रहा था कि—

"देते हैं बादा ज़र्फे कदह ख्वार देखकर"

[पीने वाले के बर्तन को देखकर ही शराब दी जाती है।]

क्या मालूम था कि यह डा० साहब का आखिरी दीदार होगा और वे इस कदर जल्द दाए-अजल (मृत्यु) को लब्बएक (भेंट करके) कहकर हजारहा मोंअतकदीन (श्रद्धालु) और रुहानी औलादों (सन्तान) को दाग़-मुफारिकत दे जायेंगे (छोड़ जायेंगे)।

इस परा विद्या का पाठ न तो वाणी द्वारा किया जा सकता है ओर न लेखनी द्वारा। उसको तो गुरु लोग शिष्यों को सम्मुख बिठाल के अपनी आत्मा से उसकी आत्मा में पहुँचाते हैं। इसीलिये इस विद्या को आध्यात्मिक विद्या अर्थात् इल्म रूहानी कहते हैं।

× × ×

परमात्मा क्लेश, कर्म, विपाक और आशय से मुक्त है और जीव में यह सब रहते हैं। यही इन दोनों का भेद है।

× × ×

क्या अपने जीवन में सुख शान्ति चाहते हो? यदि हाँ तो सर्वप्रथम किसी पूर्ण गुरु का आश्रय लो जो तुम्हें यह दोनों दे सकता है, नहीं तो कई जन्म भटकते ही रहोगे। वास्तविक शान्ति तुम्हारे हाथ नहीं आयेगी।

—श्री गुरुदेव जी

भारतीय संत-परम्परा के जाज्वल्यमान नक्षत्र : परम पूज्य श्री गुरु महाराज जी

—डा० त्रिभुवन नाथ चतुर्वेदी, जयपुर

परमपूज्य श्री गुरु महाराज डा० चतुर्भुज सहाय जो से रामाश्रम सत्संगीजन और भारत के असंख्य लोग परिचित हैं। अनेक व्यक्ति ऐसे हैं, जिन्होंने उनके दर्शन किये थे, उनके सम्पर्क में आये थे और उनसे शिक्षा ग्रहण की थी, पर असंख्य लोग ऐसे हैं जिन्होंने उनके चित्र और उनके वाङमय शरीर से परिचित व प्रेरणा प्राप्त की है। फिर भी महान पुरुषों के बारे में ऐसा अनुभव होता है कि वे सुपरिचित से लगते हुए भी अपरिचित हैं। एक विशाल दिग्दिगन्त तक फैले क्षितिज को आंख कितना सा देख पाती है। महापुरुषों का जो स्वरूप अनुभूति में होता है, शब्दों में प्रकट नहीं किया जा सकता। पर दृश्यलोक में तो शब्दों से मुक्ति असम्भव है, अतः शब्द तो महान को लघु में बांधने का ही प्रयत्न होते हैं।

गुरु महाराज हमारे देश में इस सदी के विख्यात महात्मा और आत्मवान् पुरुषों में सम्मान्य हैं। जो आत्मवान होता है, वही दूसरे को छू सकता है, जो स्वयं सूर्य होता है, वही दूसरों को किरण दे सकता है। गुरु महाराज ने जन-जन का मानस छुआ, विद्वान व अपढ़; धनवान व निर्धन सबको अपने प्रेम से, सेवा से, सत्संग से और ज्ञान से आप्लावित किया, यही उनकी महानता का रहस्य है। परमसंत गुरु महाराज डा० चतुर्भुज सहाय जी का जन्म उत्तर प्रदेश के एटा जिले के चमकरी गाँव में शुभमिति कार्तिक शुक्ला चतुर्थी विक्रमी सम्वत् १९४० तदनुसार ३ नवम्बर १८८३ को हुआ था और चमकरी में उदित यह तड़ित चमक कालान्तर में राकेन्दु की प्रभा बनकर समस्त देश किंवा विश्व में छा गई और २४ दिसम्बर १९५७ तक प्रत्यक्ष रूप से सशरीर रसाप्लावित करती रही। यह भी आश्चर्य पूर्ण संयोग है कि जिस वर्ष आपके जन्म की शताब्दी समारोह मनाये जा रहे थे, उसी वर्ष आपके प्रिय शिष्य पू० पण्डित मिहीलाल जी ने गुरुधाम को प्रयाण किया।

गुरु महाराज तब जन्मे, जब देश में धार्मिक व सांस्कृतिक पुनरुत्थान की लहर चल पड़ी थी। राजनैतिक दृष्टि से देश अंग्रेजी सत्ताधीशों से पदाक्रांत था पर पश्चिमी शिक्षा व सम्पर्क ने देश में रूढ़ियों से मुक्त होकर नये ढंग से सोचना प्रारम्भ कर दिया था। चारों ओर घोर विपन्नता थी। आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जीवन के शाश्वत मूल्यों पर आवरण डाला जा रहा था। देश में छटपटाहट थी। खासकर उत्तर प्रदेश की गंगा-जमनी संस्कृति में भारतीय प्रेममार्गी भक्ति धारा के समानान्तर सूफी सन्तों द्वारा प्रेम और परमार्थ की एक अलग सांस्कृतिक धारा बह रही थी। पूज्य गुरु महाराज पर इस सब आध्यात्मिक व

सांस्कृतिक धाराओं का प्रभाव पड़ा। यद्यपि पूज्य लालाजी महाराज रामचन्द्र जी साहब आपके गुरु थे, और आपने उनसे नक्शबंदिया सूफी अध्यात्म शैली की दीक्षा ली थी, पर आपका हिन्दी व संस्कृत का विशाल ज्ञान व बचपन से सुनी हुई भागवत व पुराण उपनिषदों की कथाओं से प्राप्त अनुभूतियों ने, विवेकशीलता पर आग्रह की पश्चिमी धारा से मिलकर, सूफी सन्तों के उपदेशों को भगवत् गीता और उपनिषदों में खोजने को प्रेरित किया। परिणामस्वरूप आपने आध्यात्मिक ज्ञान को नया संस्कार दिया, नयी तर्क पुष्टि दी, उसे भारतीय संस्कृति के अविच्छिन्न अंग के रूप में उपस्थित करने का आग्रह किया, जिसके परिणाम-स्वरूप "योग फिलासफी और नवीन साधना" और "साधना के अनुभव" का लेखन हुआ जिनमें आपने अध्यात्म ज्ञान व आत्मा प्राप्ति की अपनी नयी परिष्कृत शैली की व्याख्या ही नहीं की है अपितु उस समय प्रचलित सभी आध्यात्मिक विचार धाराओं और शैलियों का तुलनात्मक अध्ययन भी प्रस्तुत किया है। आपकी कुशाग्र बुद्धि, सत्य को पाने की प्रबल इच्छा व पराधीन समाज को ऊपर उठाने की प्रेरणा ने आप में बचपन से ही यह नजरिया पैदा कर दिया था कि शान्ति न तो धन में है, न वैभव में है और न प्रचलित विद्या में है। वह तो भगवान की शरण जाने पर और आत्मज्ञान की प्राप्ति से ही आ सकती है और इसके लिए प्रथम किसी सद्गुरु के चरण पकड़ने होंगे क्योंकि ग्रन्थ तो उन महापुरुषों के अनुभव हैं। इनका पढ़ लेना बस उतना ही है जैसे किसी बालक का किसी किताब को पढ़ लेना। और यह नजरिया इतना सबल व सही था कि कालान्तर में वह अनेक साधकों के उद्धार का वाहक बना। और उसने वर्तमान जीवन में तो स्वार्थ साधना पर परलोक सुधारने के चल रहे दूषित चक्र से अनेक जीवों को निकाल कर सत्य धर्म पर आरूढ़ किया।

आपका कहना था कि जब शिष्य पूण रूप से अपने को गुरु के प्रति समर्पण कर देता है और गुरु उसे अपना लेता है, तो फिर गुरु शिष्य को अकेला नहीं छोड़ता, हर समय उसके साथ बना रहता है। जब तक शिष्य स्थूल बुद्धि का रहता है, गुरु शरीर से उसका साथ देता है, और जब शिष्य सूक्ष्म दशा में पहुँचता है तो गुरु मन के रूप में और जब शिष्य ज्ञानमय हो जाता है, तो गुरु ज्ञान के रूप में शिष्य के साथ रहता है। जब तक शिष्य पूर्ण नहीं हो जाता, गुरु भी अपने लोक को नहीं जाता। यदि गुरु का शरीर न भी रहे तो भी वह उस शिष्य का साथ नहीं छोड़ता।

गुरु महाराज ने समाज, शिक्षा की दशा और दिशा पर भी गहन चिन्तन किया था। आपका कहना था कि परिवर्तन व सुधार वही ला सकता है, जो पहले अपने में परिवर्तन लाए। उनका संदेश था, पहले अपने को बदलो, समाज अपने आप बदल जाएगा। यदि देशवासी अपने आचरण में सुधार कर लें तो सबके आचरण में अपने आप सुधार आ जायेगा। जो अपने को नहीं बदल सकता, वह दुनिया को भी नहीं बदल सकता। विडम्बना यह है कि जो आज समाज को नेतृत्व दे रहे हैं वे ही पापपंक में डूबे हैं, अतः महाराज जी का यह कथन आज और भी अधिक प्रासंगिक है।

इस प्रकार गुरु महाराज ने आध्यात्मिक शिक्षण में नया संशोधन किया, परिष्कार किया, नया फिलासफिक मोड़ दिया और नवीन साधना दी, जिसे उन्होंने समाज से जोड़ा और व्यक्ति के सुधार को समाज के सुधार का मार्ग बताया। बाद

में तो अनेक सन्तों व आध्यात्मिक शिक्षकों ने उनकी इस विधि को अपनाया, जिनकी आज अपनी शिष्य परम्पराएँ हैं। पर यह तो मानना पड़ेगा कि विशाल साधक समूह को एक साथ आध्यात्मिक प्रशिक्षण की विधि के निर्माण में गुरु महाराज ही अग्रणी हैं।

मेरा गुरु महाराज के शुभ नाम, रामाश्रम सत्संग और पं० गंगाधर जी के नाम से प्रथम परिचय स्वर्गीय सतीश पण्डित के द्वारा १६४६ में हुआ। हम सहपाठी थे। मेरे पिताजी रिटायर होने के बाद वृन्दावन वास करते थे, अतः मेरा मथुरा आना जाना होता था। मैं प्रथम बार पूज्य श्री गुरु महाराज जी से उनके बंगले पर १६५३ में मिला। गौर वर्ण, मँझला कद, भव्य ललाट, तेजस्वी और कमलवत अत्यन्त सुन्दर आँखें, प्रलम्ब कान, धवल परिधान, स्मितपूर्ण बदन, यह था उनका प्रथम दर्शन में ही आकृष्ट करने वाला व्यक्तित्व जो अब तक मेरे हृदय पटल पर अंकित है। उसे श्लाघा के रंग में रंगने की आवश्यकता नहीं है। उसका लेखा अनुभूति है! शब्दों में उतारने का तो यह बाल प्रयास है। श्री गुरु महाराज जी ने धर्म के शाश्वत सत्यों से युग को प्रभावित किया है, वे न केवल युगधर्म के व्याख्याता थे, बल्कि युग पुरुष थे, युग प्रधान थे। वे सर्व समर्थ होते हुए भी सबके पास स्वयं पहुँचे, अतः वे दया के सागर थे। वे अध्ययन, प्रशिक्षण, स्वाध्याय और साहित्य लेखन में सदा प्रवृत्त रहते थे। वे निष्काम कर्मी, स्थितप्रज्ञ महापुरुष थे। वे भारतीय सन्त परम्परा के जाज्वल्यमान नक्षत्र थे। उनकी पूत स्मृति को शतशः नमन।

देश विराना है

—श्री प्रभुदयाल शर्मा



परम पूज्य पण्डित जी महाराज कभी-कभी एक पद श्री कबीर साहब का गुनगुनाया करते थे :—

रहना नहिं देश बिराना है।
यह संसार कागद की बुड़िया,
बूंद पड़े घुल जाना है।
यह संसार झाड़ और झांकड़,
आग लगे जल जाना है।
× × ×
कहत 'कबीर' सुनो भई साधो,
सतगुरु नाम ठिकाना है।।

—अर्थात् जिस संसार में हम [जीव मात्र] आए हुए हैं अथवा जिस देश को हमने अपना समझ लिया है वह किसी दूसरे का हैं, विराना है, अपना नहीं है। भूल से इसे हमने अपना समझ लिया है। इसके प्रति ममत्व की भावना हमारे अन्तर में बस गई है—यही दुःख का कारण है। अर्थात् आसक्ति ही दुखी कर रही है। यह जगत तो उस परम पिता का जाग्रत स्वरूप है। इस जगत के कण-कण में वही व्याप्त हैं। भगवान सब जगह हैं जैसा कि श्रुति कहती हैं :—

ईशावास्यमिदं सर्वं यत् किंच जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद् धनम्।।

—अर्थात् यह संसार उस परमात्मा से आच्छादित है। उस ईश्वर को साथ रखते हुए, सर्वदा उनका स्मरण करते हुए ही तुम इस जगत में त्याग भाव से केवल कर्तव्यपालन के लिए ही विषयों का यथाविधि उपभोग करो। तात्पर्य यह है कि विषयों में मन को मत फँसने दो—इसी में कल्याण है। वस्तुतः यह भोग्य पदार्थ किसी के नहीं हैं। मनुष्य भूल से इनमें ममता और आसक्ति कर बैठता है। आशय यह है कि ये सब परमेश्वर के हैं और उन्हीं के लिये इनका उपभोग होना चाहिये। वास्तव में समझना तो यह चाहिये कि संसार में हम कुछ ही समय के लिए ही आए हैं तो यहाँ पर किस प्रकार रहें ? कैसे यहाँ की वस्तुओं का उपभोग करें ?

यह तथ्य यदि ध्यान में रहे कि हमें तो यहाँ पर आकर उस ईश्वर के द्वारा प्रदत्त वस्तुओं का उपभोग करने मात्र का अधिकार है तो उन वस्तुओं के प्रति मन में आसक्ति न आयेगी। उन्हें हम अपनी जब समझेंगे ही नहीं तब उन पर अधिकार भावना भी न पनपेगी। बस, हम तो इस दुनियाँ में सराय में बैठे हुए मुसाफिर की तरह ही हैं। किसी ने कहा है :—

दुनिया है सराय, इसमें बैठा तू मुसाफिर है।
औ जानता है यां से जाना तुझे आखिर है।।

यह सब जानते हुए भी यदि हम सजग नहीं

होते हैं, तो दिन पर दिन इस बिराने देश के प्रति आसक्ति बढ़ती ही जावेगी। इस आसक्ति और ममत्व में ही दुःख छुपा हुआ है तथा इसी दुःख से हम दुखी हैं। हमने उस परमेश्वर द्वारा प्रदत्त इस जगत की वस्तुओं को अपना मान लिया है। इसी का दुःख है जो हमें जीवन पर्यन्त इस परमेश्वर से पृथक सा कर देता है। उसकी कृति को हम समक्ष नहीं पा रहे हैं और इस संसार में हम दिन प्रति दिन लिप्त होते चले जा रहे हैं, लिप्सा बढ़ती ही चली जा रही है।

क्या कहा जाय इस संसार में ऐसे दरिद्र, असहाय तथा अनाथ भी हुए और एक से एक शूरवीर, पराक्रमी और वैभव सम्पन्न पुरुष भी आए जो संसार को अपना ही मान बैठे थे। ऐसे दोनों को ही खाली हाथ कराल काल के गाल में जाना पड़ा। खाक में मिलकर बराबर हो गये। मृत्यु ने किसी पर तरस नहीं खाया :—

'कितने मुफलिस हो गए, कितने तवंगर हो गए।
खाक में जब मिल गए, दोनों बराबर हो गए॥'

इस छोटे से जीवन में हम ऐसा सुनते भी हैं और देखते भी रहते हैं फिर भी इस संसार की असारता की ओर हमारी दृष्टि नहीं जाती। हमें इस संसार से ऐसा मोह हो गया है जो हमें अपने इस क्षणिक जीवन की तरफ कुछ सोचने का अवसर ही नहीं देता है। हम कुछ ही समय के लिए इस संसार में आए हैं पर इसकी लुभावनी तथा आकर्षण से परिपूर्ण चकाचौंध ने हमें कहीं का नहीं छोड़ा। अपना कर्त्तव्य भूल गए और संसार में रच पच गए। इस संसार में हम अपने ही संकल्पों तथा वासनाओं का जाल बुना करते हैं और उनके द्वारा स्वयं ही अपने आपको बन्धन में डालते हैं। हमारी हालत रेशम के कीड़े के समान हो गयी है जो अपनी ही लार के जाल में अपने को बन्धन में डालता है। कोई बाहरी आदमी उसे इस बन्धन में नहीं डाल सकता। जैसा कि कहा है :—

संकल्पवासनाजालैः स्वयमायाति बन्धनम्।
मनोजालामयैर्जालैः कोशकारकृमिर्यथा॥

अज्ञ लोग नहीं जानते कि हम इस संसार से जाने वाले हैं। जो इसे जानते हैं उनके मन के सभी विकार शान्त हो जाते हैं। हम इस मायावी संसार में वैसे रहें जैसे सन्त श्री गोरखनाथ जी कहते हैं :—

गोरख कहै सुनहु रे अवधू जग में ऐसे रहणा।
आँखें देखिबा काने सुनिबा, मुख से कछू न कहणा॥
नाथ कहै तुम आपा राखो हठ करि बाद न करणा।
यह जग है काँटे की बाड़ी देखि-देखि पग धरणा॥

यह संसार तो काँटे की बाड़ी है। यहाँ पग-पग पर काँटे ही हैं, दुःख ही हैं। आवश्यक है कि हम प्रत्येक पग देख-देख कर ही रक्खें। ऐसा न हो कि इस कंटकाकीर्ण विश्व में हम कहीं के न रहें, और इसी में फँसे रह जायें। महा पुरुष कहते हैं कि अज्ञान ही दुःख का कारण है।

समय व्यतीत होता जा रहा है। उसे वापस नहीं लाया जा सकता। पूज्य पण्डित जी महाराज कहा करते थे कि 'संसार में ऐसी घड़ी कोई नहीं है जो बीते हुए समय को वापस लाकर दिखा दे। हम इस बात को जानते हैं कि संसार पहले नहीं था और फिर आगे भी नहीं रहेगा परन्तु इसे मानते नहीं हैं। जो जानते हैं यदि उसे मानने लग जायें तो दुखों से बच जायें।

जिन महापुरुषों ने इस संसार को ईश्वर का समझ लिया था अथवा पराया (दूसरे का) समझ लिया वे आसक्ति से बच गए और मौन हो गये। सर्वत्र 'उसको' ही देखने लग गए और आनन्दमय हो गया उनका जीवन इस विराने संसार में। पूज्य पण्डित जी महाराज की वाणी है 'दूसरे के बन्धन से निकलना सरल है परन्तु अपने घेरे से निकलना महान कठिन है। जो अपने घेरे से निकल जाते हैं वही जीवनमुक्त कहलाते हैं। साधना इसीलिए नहीं थी कि तुम दूसरों का उद्धार करो। साधना इसलिए थी कि गुरु का सहारा लो और इस संसार से पार हो जाओ—अपना जीवन पवित्र करो।'

महात्मा श्री कबीर दास जी ने हम जैसे लोगों के लिए ही कहा है :—

साखी सब्दी बहु कही, जब जान्या था नाँहि।
बिछुड़ा था तब ही मिला, अब कहिबे कछु नाँहि॥

जब तक उसे जाना नहीं था तब तक बहुत कुछ कहते-सुनते रहे। परन्तु जब उसे जान लिया अथवा जब उसका ज्ञान प्राप्त हो गया तो कहना कुछ रहा नहीं, तब तो 'वही' रह गया। फिर तो यह संसार विराना ही नजर आने लग जाता है। आसक्ति समाप्त हो जाती है। सर्वत्र उसी एक का दर्शन होने लगता है।

—*::*—

धूप वृक्ष को सुखा नहीं सकती, वरन् उसको और पुष्ट कर देती है यदि उसे जल मिलता रहे। इसी प्रकार दुःख मनुष्य को दुखी नहीं कर सकता बल्कि और भी परिपक्व कर देता है, यदि उसे सच्चा ज्ञान मिलता रहे।

× × × ×

थोड़ा धैर्य भाव से सुनो। यदि तुम उस अनन्त का एक शब्द भी सुन लोगे तो कृतकृत्य हो जाओगे तथा इस घोर निद्रा से जाग जाओगे। अब तक जो भी तुमने शब्द सुने हैं सोते हुए पुरुषों के सुने हैं। भला कोई सोता हुआ पुरुष दूसरे सोते पुरुष को जगा सकता है?

× × × ×

मनुष्य का धर्म पुस्तक नहीं बताती, वरन् उसकी आत्मा बताती है। तुम्हारी आत्मा जिस समय पवित्र होगी, धर्म के रहस्य खुल जायेंगे। जो बोलोगे धर्म बोलोगे, जो कहोगे वेद वाणी ही होगी। इसलिये हम अपने को आत्मा के निकट जानें। —पूज्य पण्डित जी

सन्तों के जीवन प्रसंग—

मधुरं-मदिरम्

—श्री रुद्र प्रसाद मिश्र

जीव जगत की कल्याण-कामना से प्रभु जीव देह धारण करने में भी नहीं हिचकते हैं। यों तो कार्यानुसार परमात्मा ने मनचाहे स्वरूप धरे हैं परन्तु जब वे आदमियों के आत्मीय बन इस भूतल पर आ नरलीला करते हैं तब तो आनन्द ही बरस जाता है। उनका रूप इतना सुन्दर होता है, उनकी आन्तरिक व बाह्य दिव्य कान्ति इतनी मधुर व मदिर होती है कि सबके मन को सहज ही आकर्षित करती रहती है। उनकी वाणी गम्भीर व मृदमय होते हुए भी प्रेम व ज्ञान से ओत-प्रोत होती है। उनके विचार, व्यवहार व आचरण इतने पवित्र, सहज व सरल होवे हैं कि सबके लिये आदर्श व अनुकरणीय होवे हैं। परमपूज्य गुरुदेव समर्थ सन्त श्री डा० चतुर्भुज सहाय जी के बारे में ऐसा ही सुना, परम भागवत प्रेमनिधि श्री पं० मिहीलाल जी व मर्यादा पुरुषोत्तम परम सन्त श्री डा० वृजेन्द्र कुमार जी को ऐसा ही देखा, श्री चैतन्य महाप्रभु के चरितामृत में गोता लगाया तो उन्हें भी ऐसा ही पाया।

ऐसा क्यों ? इसका रहस्य क्या ?

बात बड़ी सरल सी है। ऐसा कैसे होता है, इसका रहस्य क्या है—को समझना बहुत ही आसान है साथ ही इसको जानना इतना कठिन है कि जब साक्षात् परमात्मा आवे और दया कर हमें जनावे तभी इसको जाना जा सकता है जैसा कि कहा है— "सोइ जानइ जेहि देहु जनाई"। सुनकर, पढ़कर, देखकर एक आभास बुद्धि को—प्रबुद्ध बुद्धि को अवश्य होता है। पर "जानने" का काम, सो भी इस रहस्य को, मात्र हृदय का है। और जानने का काम, बिना वाणी बताने का काम "हृदय देवता" का है जिन्हें अध्यात्म जगत में "गुरु" कहते हैं, वे भी जो समर्थ सन्त हों, जिनको पूरा अनुभवी ज्ञान हो। मैं शब्दों में कैसे बतलाऊँ ? हे मेरे प्रेमी विज्ञ पाठक ! मैं तो आपकी चरण-धूलि से भी गया बीता एक नादान हूँ। आप आशीर्वाद दें कि "वे" परम-दयालु मुझ पर दया करें। ....आइये, परम भागवत श्री चैतन्य महाप्रभु के पावन जीवन के दो लघु प्रसंगों में इस रहस्य के सूत्र अपने-अपने लिए खोजने का प्रयास करें।

श्री चैतन्य महाप्रभु के गुरु महात्मा श्री ईश्वर-पुरी जी थे। वे प्रभु श्रीकृष्ण के एक सरल हृदय प्रेमी भक्त थे। श्री चैतन्य जी एक महान न्यायविद्, तर्क-विद्या में निपुण व शास्त्रार्थ में भी पारंगत विद्वान थे। श्री ईश्वरपुरी जी एक बार नवद्वीप आये। श्री निमाई (चैतन्य जी का बचपन का नाम) इन्हें अपने घर भोजन हेतु आमंत्रित कर ले गये। श्री ईश्वरपुरी जी की प्रभु-प्रेम-चर्चा सुन उनके रचित काव्यग्रन्थ "कृष्ण लीलामृत" के कु

अंश सुन, उसे गुन तथा भक्ति रहस्य को समझ श्री निमाई इतने प्रभावित हुए कि उनके जीवन की दिशा ही बदल गई। सन्त ने इन्हें अधिकारी जान प्रभु-प्रेम की कुछ बूंदें इनके हृदय में डाल दीं। विद्वता के उद्धत स्वाभिमानी श्री निमाई के हृदय में भक्ति का उत्स ही प्रवाहित हो उठा। जब गया यात्रा के दौरान पुन: महात्मा श्री ईश्वरपुरी जी के दर्शन हुए तब श्रीकृष्ण भक्ति व निष्काम प्रभु-प्रेम को श्री निमाई ने उनसे खूब गहराई से समझा। विनय कर उनसे मंत्र दीक्षा ली। कुछ समय आन्तरिक व बाह्य-सत्संग चला। जब गुरु आज्ञा से घर लौटने लगे तो इन्होंने श्रद्धापूर्वक अपने गुरु की चरण-रज एक पोटली में बांध ली और कहा—

"प्रभु कहे ईश्वरपुरीर जन्मस्थान,
ए मृत्तिका आमार जीवन धन प्रान।"

—चैतन्य भागवत

[मेरे गुरु महात्मा ईश्वरपुरी के जन्म स्थान की मिट्टी मेरा जीवन, धन, प्राण है।]

घर लौटने पर इनका मन श्रीकृष्ण के प्रेम में रग उठा। हृदय में भी श्रीकृष्ण प्रेम की कालिन्दी ही प्रवाहित हो उठी। श्याम सुन्दर की "माधुरी मूरति" व विशाल "रसाल-नयन" इनके नयनों में नाचने लगे। परिणामत: "उनकी" कीर्तन करते-करते भाव में ये भी नाच उठते। श्रीकृष्ण के विरह में इनका हृदय कभी हाहाकार कर उठता और बहुधा एकाकार हो उठता। श्री गुरु के आशीर्वाद से यह श्रीकृष्ण भक्ति के चलते-फिरते कल्पवृक्ष बन गये, ऐसी दिव्य विभूति हो गये कि हरिनाम संकीर्तन की वह प्रेम-गंगा प्रवाहित की, कि सारा समाज ही प्रेमधारा में गोते लगा उठा। गुरु-प्रेम के गुप्त गहरे जल से इनके सारे ही प्रकृति-तत्व धुल गये और ये प्रेमनिधि, ज्ञाननिधि हो साक्षात् जगद्गुरु हो गये। परिणामत: सारे समाज ने इनमें श्रीकृष्ण की छवि देखी व गौरांग महाप्रभु के नाम से इन्हें पुकार उठा। माँ मीरा भी इनकी स्तुति कर उठीं—'उस श्याम को' इस गौरांग रूप में निरख—

"मात जसोमति माखन कारन, बांधे जाके पांव।
स्यामकिसोर भयो नव गौरा, चैतन्य जाको नांव॥
पीताम्बर को भाव दिखावे, कटि कोपीन कसै।
गौर-कृष्ण की दासी मीरा, रसना कृष्ण बसै॥"

माँ मीरा ने और आंख वालों ने इन्हें श्याम-सुन्दर जैसा ही प्रेमनिधि, ज्ञाननिधि, साक्षात् जगद्गुरु देखा और साथ ही इनमें पायी सन्तों की सरलता, सहजता व दीनता। श्री चैतन्य महाप्रभु सदा भाव में डूबे रहे, सर्वसमर्थ होते हुए भी प्रेमाश्रुओं से भीगे रहे। इनकी हर बात मधुर होती, मदिर होती प्रेमरस से।

दयालु व करुणालु भी

इन्होंने रूप व सनातन गोस्वामी जैसे विषय सुख में आसक्त व राज्य के बड़े पद के ऐश्वर्य को भोगने वालों को प्रभु प्रेम का अलौकिक मजा चखा महान सन्त बना लिया इतने दयालु थे ये श्री गौरांग महाप्रभु।

इन्होंने श्री प्रकाशानन्द व श्री सार्वभौम भट्टाचार्य जी जैसों को परमात्म-प्रेमपथ का प्रेमी पथिक बना लिया। इतने ममतालु थे ये श्री चैतन्य महाप्रभु।

इन्होंने श्री नित्यानन्द ऐसे परमज्ञानी को भी प्रेम की निष्काम ज्योति गंगा में स्नान करा प्रेमी

बना लिया। इतने ज्योतिर्मय थे ये श्रीकृष्ण चैतन्य।

इन्होंने श्रीधर जैसे दीन-हीन गरीब ब्राह्मण—जो केला व खोला बेचकर गुजर-बसर करते थे—को भौतिक धन व अध्यात्म धन (प्रभु-प्रेम) से मालामाल कर दिया। इतने कृपालु थे ये शची-नन्दन।

इन्होंने जगाई-मधाई जैसे शराबियों व कुपथ-गामियों को प्रभु भक्त लिया व अन्यायी व अत्याचारी काजी चाँद खाँ पर दया कर धर्म-द्रष्टा व धर्म-सहिष्णु बना लिया। इतने क्षमानिधि थे ये श्री निताई चैतन्य।

साथ ही—कुलिश से कठोर भी

बात उन दिनों की है जब श्री चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथ पुरी में निवास करते थे। एक दिन इनके संगी श्री हरिदास चावलों की भिक्षा माधवी नाम की स्त्री से ले आये। जब इन्हें पता चला तो तत्काल ही उस भक्त को अपनी मंडली से निकाल दिया और उसका मुख तक न देखने का दृढ़ निश्चय कर लिया। हरिदास बहुत दुःखी हुये। क्षमा चाही। अन्य प्रेमी भक्तों ने विनय की। पर ये अपनी बात पर अड़िग रहे। आखिर पश्चाताप की अग्नि में झुलसते हुए हरिदास ने त्रिवेणी संगम पर शरीर त्याग दिया।

महाप्रभु ने सुना तो कहा—हरिदास ने अपना कर्मफल भोग लिया। साधकों को पराई स्त्री के सम्पर्क से दूर रहने में ही भलाई है। प्रभु-प्रेम रस चखने के लिये कठोर आत्म-अनुशासन अनिवार्य है। एक बार भी जीव की प्रभु-प्रेम की मधुरता का रस मिल गया तो अन्य सारे रस खारे और फीके लगते हैं।

प्रभु-प्रेम जहाँ मधुर होता है वहीं मदिर भी होता है। उसमें एक मस्ती भरा नशा भी होता है। यह प्रेम ज्यों-ज्यों निष्काम होकर गहराता जाता है त्यों-त्यों इसका रस और भी मधुर व मदिर होता जाता है। चैतन्य महाप्रभु इसी प्रेम के स्वरूप हो गये थे। परम भागवत पूज्य पं० मिहीलाल जी व परमसन्त श्री डा० वृजेन्द्र कुमार जी भी इसी प्रेम-लोक के मालिक थे। वे भी यदा-कदा अपनी अंतरंग गोष्ठियों में पिछले चालीस-पचास साल की अध्यात्म-जगत की घटनाओं की ओर संकेत कर साधकों व आचार्यों को "नारी-शक्ति" से सतर्क व सावधान रहने की प्रेरणा देते व कहते प्रभु (गुरु) प्रेम में डूब जाओ, डूबे रहो उसकी मधुरता और मदिरता तुम्हारी रक्षा करती रहेगी व साथ ही मजबूरी भरे आँसू तुम्हें तुम्हारे प्रभु की गोद तक ले पहुँचेंगे।

परम भागवत चैतन्य महाप्रभु का परम पावन जीवन प्रभु-प्रेम की मधुरता, उसकी मदिरता, उसकी सर्वोच्च उत्कृष्टता का सुन्दर स्वरूप था जो अनेक अध्यात्म रहस्यों की ओर बड़ी सुन्दरता से प्रकाश डालता है।

—:❀❀:—

ओ निराकार ईश्वर के जानने के लिये ध्यान में बैठे हुए ज्ञानी, पहिले तू किसी साकार ईश्वर का ध्यान कर, वही कृपा करके तुझे अपने निराकार रूप का ज्ञान करा देंगे। निराकार ईश्वर से निराकार को बात कैसे पूछ सकेगा? —'पुष्प-सौरभ' से

मनमानी क्यों ?

—श्री मधुवन प्रसाद यादव



ऐसा देखने में आ रहा है कि गेरुआ वस्त्रधारी संन्यासी का वेश धारण करने वाले स्त्रियों से घिरे रहते हैं। इन स्त्रियों में से कुछ उनकी देह पोंछती हैं, कोई पंखे से हवा करती हैं, को पैर दवाती हैं। संन्यास धर्म क्या है उसकी इन्हे हवा भी नहीं लगी है। हाँ, एक बात अवश्य है कि लम्बा-चौड़ा प्रवचन, लच्छेदार भाषण ये खूब सुनाते हैं।

"........जो साधु संन्यासी विरक्त होकर के भी धन उपार्जन करते और स्त्रियों से ससर्ग रखते हैं, वह दोनों दीन अपने को खोते है। किसी ने कहा है—"न खुदा ही मिला न विसाले सनम, न इधर के हुए न उधर के हुए"। यही इन वेश-धारियों की दशा है। इनका सारा समय दूसरों से रोटी का टुकड़ा पाने में ही खर्च होता है।........... संसारी स्त्री पुरुषों से अपनी आवश्यकताओं के लिए कुछ न कुछ संसर्ग रखना ही इनका काम होता है और यही इन विरक्तों के पतन का कारण बन जाता है।"

(आध्यात्मिक मीमांसा खण्ड १ पृष्ठ २३७)

"........अपनी पत्नी के अतिरिक्त किसी अन्य स्त्री से सेवा न ले। अकेली किसी स्त्री को अपने समीप न आने दे। मजाक और हँसी दिल्लगी न करे।"

(साधना के अनुभव–अध्याय १६–शिक्षकों के लिए आवश्यक बातें)

स्वयं भू गुरु

कुछ लोग मनमाने तौर पर अन्य लोगों को साधना की क्रिया बतला रहे हैं। यह बहुत बड़ा

यह देखने में आ रहा है कि आजकल अनेक साधकबन्धु मनमानी करने लग गये हैं, कुछ तो सीमा पार कर गए हैं फिर भी वे अपने को सत्संगी मानते हैं। यह निश्चय जानिए कि श्री गुरु महाराज जी के आदेशों का जो उल्लंघन करता है, उसका कहीं ठिकाना नहीं लग सकता। मनमानी करने पर उसका पतन अवश्यभावी है। यहाँ पर कुछ बड़े आदेशों के उल्लंघन की चर्चा की जाती है। उदाहरण प्रस्तुत है—

स्त्रियों में मेलजोल

श्री गुरु महाराज जी ने चेतावनी के रूप में आदेश दिया है कि साधक को अनावश्यक रूप से स्त्रियों से मेलजोल नहीं रखना चाहिए। किसी स्त्री के साथ जब उसके पिता, पति, भाई, पुत्र, या माँ, सासु, या वहिन में से कोई हो तभी थोड़े समय के लिए आवश्यक बात संक्षेप में करनी चाहिए, फिर वहाँ से हट जाना चाँहिए। उनके ही शब्द इस सम्बन्ध में देखिए :—

"........गुरुओं के भेष में पाखण्डी और पेशेवर गुरुओं की चारों ओर भरमार है, वह भोले भाले लोगों को और खास कर स्त्रियों को अपने जाल में फांस लेते हैं और हर प्रकार की सेवा लेते हैं, और आगे करने और न करने सभी काम उनसे करा लेते हैं। ऐसों से सावधान रहने की जरूरत है। स्त्रियाँ बहुत जल्दी उनके जाल में फँसती हैं इसलिए गृहस्थों को उचित है कि स्त्रियों का सम्पर्क उनसे न होने दें, दूर ही रक्खें।" ओम् शम्॥

(आध्यात्मिक विषय मीमांसा खंड—१ सावधानी—पृष्ठ १९५)

पाप है। यह एक संक्रामक रोग जैसा फैल रहा है। ऐसे लोग अपना पतन तो कर ही रहे हैं, अन्य सीधे सादे लोगों को भी भ्रमित कर गुमराह कर रहे हैं। "उनको भटकाने का पाप भी उनकी गर्दन पर रहेगा और उन्हें ले डूबेगा।" "हमारे सत्संग में भी ऐसे लोगों की तादाद कम नहीं है जो आचार्य पद प्राप्त करने और गुरु बनने के लिए उतावले फिर रहे हैं। परिश्रम किया नहीं, शक्तियाँ जाग्रत की नहीं, उस महान विद्या का ज्ञान कुछ हुआ नहीं, मन में राग-द्वेष हटे नहीं, पर मास्टर उन्हें जरूर बना दिया जाय, चाहे कुछ आवे या न आवे।"

(आध्यात्मिक विषय मीमांसा खण्ड–२ पृष्ठ ६४, ६५

डिग्रियाँ

"सन्तों की दुनिया भी निराली है, उनके स्कूल व कालिज हैं, जहाँ से उनके इस अध्यात्म विद्या के विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर डिग्रियाँ लेते हैं।........ इन्हीं में से जिन साधकों को इस ड्यूटी पर तैनात किया जाता है उन्हें गुरु, सद् गुरु, पूर्ण गुरु और मर्थ गुरु का टाइटिल दिया जाता है। तान्त्रिक न्थों में इसकी बहुत बड़ी व्याख्या लिखी है, उनके यहाँ इसको "आचार्य दीक्षा कहते हैं।"

"........इनके अतिरिक्त गुरु की एक बड़ी तादद ऐसी भी पाई जाती है जो अपने आप ही इस पेशे को करने लग गये हैं। उन्हें न तो कहीं से आज्ञा मिली है और न इस अमृत रस की बूँद भी उनके पास है। भगवान ऐसों को सद्बुद्धि दें, यह खुद गड्ढे में गिरेंगे और दूसरों को भी ले जायेंगे। "आपन घर पानी नहीं औरन बख्शत खीर" यह कहावत ऐसे लोगों पर लागू होती है।

(आध्यात्मिक विषय मीमांसा खण्ड–२ पृष्ठ १६०, १६१)

"लोग गुरु बनने के लिए लालायित रहते हैं।........कई लोग तो इसी लालच में बिना किसी पूर्ण पुरुष का आदेश पाये हुए ही अपने को गुरु प्रसिद्ध करते हैं। कई झूँठा प्रचार करते देखे जाते हैं कि इनको अमुक महात्मा की ओर से आज्ञा प्राप्त है। कई स्वप्न में, कई समाधि अवस्था में आदेश मिलने का दावा करते हैं, ऐसे मनुष्य अज्ञानी और मूर्ख हैं, यह लोग असलियत से कोसों दूर हैं।"

"हमको तो इससे बुरा और नीच कर्म अध्यात्म संसार के प्राणी के लिए दूसरा नहीं दिखाई देता।"........इन्हीं कारणों से हम शिक्षा का काम बहुत ही खतरनाक और नीच मानते हैं जो इनसे बच जायें वही अच्छे हैं।"

(साधना के अनुभव अध्याय १६ से उद्धृत)

"अपने मन से आज्ञा लेकर दूसरों को तालीम देना नरक का द्वार खोलना है। अन्तःकरण पर कालिख पोत देने के अतिरिक्त और क्या हासिल हो सकता है?" (सरल हृदय सन्त पृष्ठ ८७)

गुरु बनने की इच्छा

"एक बात और भी बहुत समझने की है जो साधकों को बहुधा नीचे बहा ले जाती है। श्री गुरु महाराज जी ने कई बार लोगों को इससे सावधान भी किया है। वह है—गुरु बनने की इच्छा या दूसरों को उपदेश देने की भावना। बहुत से लड़के थोड़ा सा पढ़कर अध्यापक होने की सोचते हैं और विद्यालय छोड़ देते हैं, तब वह किसी काम के नहीं रहते। जीवन निर्वाह भी कठिन हो जाता है। फिर बिना गुरु-आज्ञा के जो इस आत्म विद्या का उपदेश करते हैं, वह महान पाप भी माना गया है। पाप इसलिए है कि यह बतायेंगे क्या? क्योंकि

गुरु का आशीर्वाद ही तो यह विद्या है और है ही क्या ? वह आज्ञा दे देंगे तो तुम निर्विघ्न काम करोगे, गुरु हर समय तुम्हारी रक्षा करेंगे। उनकी शक्ति तुम दूसरों को दे सकोगे, क्योंकि जब तक तुम्हारे पास गुरुशक्ति नहीं, दूसरों को क्या दोगे ? यदि दूसरों को कुछ बताओगे तो वह गलत होगा, संशययुक्त होगा क्योंकि तुम स्वयं संशय में बँधे होगे। यदि किसी को विपरीत या गलत मार्ग पर लगा दिया तो उसका भयंकर परिणाम तुम्हें भोगना पड़ेगा।" (हरि दर्शन की यात्रा पृष्ठ ८१)

"………तात्पर्य यह है कि साधु और महात्माओं को भी बिना आज्ञा दूसरों को शिक्षा देने का अधिकार नहीं है। यह आज्ञा परमात्मा की ओर से गुरु द्वारा मिला करती है और वह भी कई प्रकार की होती है। कई लोग सन्त और परमसन्त का दर्जा प्राप्त करके भी इस अधिकार को नहीं पाते और इसीलिये वह जानते हुये और सामर्थ्य रखते हुये भी दूसरों को इस विद्या की शिक्षा नहीं देते। ………और जिस किसी को ईश्वर की ओर से, गुरु द्वारा या आकाशवाणी द्वारा दूसरों के उद्धार करने का हुक्म मिल जाता है, उसी समय से ऐसे सन्त "सत्‌गुरु" कहलाने लगते हैं। ऐसे सत्‌गुरुओं की सहायता के लिये स्वर्गीय आत्मायें व दिव्य शक्तियाँ नियत रहती हैं, वह समय-समय पर इन कामों में उनको मदद पहुँचाती रहती हैं।………"

(गुरुभक्ता सहजोबाई पृष्ठ ७३)

यह निश्चय जानिये कि रामाश्रम सत्संग की प्रक्रिया उसी प्रकार की है जिस प्रकार रेलवे लाइन पर रेलगाड़ी के पहिये एकदम से चिपके हुये उससे "युक्त" रहते हैं। तनिक सा भी ये पहिये पटरी से बाहर दायें या बायें गये की गाड़ी गिर जायेगी।

मनमानी का एक रूप यह भी

मनमानी करने के एक से एक नये तरीके भटके हुये साधक बन्धु निकाल रहे हैं। देखा यह जा रहा है कि जिनको संस्कृत भाषा का क, ख, ग भी नहीं मालूम है, वे ऋषियों द्वारा रचित सूत्रों का मनमाना अर्थ लगा रहे हैं और भाषण भी दे रहे हैं, मनमाने तर्क भी प्रस्तुत कर रहे हैं। इससे श्रोतागण गुमराह ही तो होंगे। इसी प्रकार का भटकाव प्राचीनकाल में "चार्वाक" नामक विद्वान को हुआ था, उसने वैदिक सूत्रों का मनमाना अर्थ करना आरम्भ कर दिया, वह इतना भटक गया कि नास्तिकता की सीमा में पहुँच गया और परमात्मा के अस्तित्व को भी अस्वीकार कर दिया। उसी ने यह नया सिद्धान्त निकाला कि "खाओ, पीओ, मौज उड़ाओ"। नया सिद्धान्त बना दिया कि—

"यावज्जीवेत् सुखं जीवेत्, ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत्।
भस्मीभूत शरीरस्य पुनरागमनो कुतः॥"

इसके अनुयायी भी बहुत हो गये और "नास्तिकबाद" चल निकला।

उपरलिखित उदाहरणों एवं उद्धरणों को प्रस्तुत करते हुये सभी साधक बन्धुओं से सानुरोध आग्रह है कि वे मनमानी न करें। जो विधि गुरु महाराज जी ने स्पष्ट शब्दों में सर्वसाधारण के लिये प्रस्तुत की है, उसका पूर्णरूप से पालन करें, तभी कल्याण है। अपनी ओर से कुछ भी नमक मिर्च न मिलावें। श्री गुरुदेव सब पर कृपा करें। ओम् शम्।



समाचार इधर-उधर के



बहु-उपयोगी वृक्ष सुहैंजना

भारत में पेयजल की कमी के बारे में कौन नहीं जानता। पूरे देश के तीस प्रतिशत लोगों को ही स्वच्छ पेयजल नसीब होता है जबकि बाकी के सत्तर प्रतिशत लोग दूषित पानी से ही अपनी प्यास बुझाते हैं। अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर भी भारत के पानी को बेहद प्रदूषित माना जाता है। इसका एक उपाय भी निकाला गया है मिनरल वाटर के रूप में लेकिन काफी मँहगा होने की वजह से आम आदमी इसका प्रयोग नहीं कर सकता। वर्षा ऋतु में पेयजल में गन्दगी मिलने से यह कई रोग भी फैलाने लगता है। जैसे हैजा, आंत्रशोथ, दस्त आदि। कई बार पानी को शुद्ध करने के लिये इसमें क्लोरीन आदि रसायन मिलाये जाते हैं लेकिन इससे पानी के स्वाद पर असर पड़ता है साथ ही स्वास्थ्य की दृष्टि से भी यह रसायन अच्छे साबित नहीं होते। पानी को शुद्ध करने का दूसरा तरीका होता है फिल्टर, लेकिन अच्छा फिल्टर आमतौर पर काफी मँहगा होता है साथ ही इससे रोगाणु व जीवाणु नहीं अलग किये जा सकते। इन अप्राकृतिक तरीकों के अलावा एक प्राकृतिक तरीका और है जो पानी को सौ प्रतिशत शुद्ध करता है। हाल ही में ब्रिटेन के लाइसेस्टर विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने भारतीय मूल का एक ऐसा वृक्ष ढूंढ़ निकाला है जो पानी में मिट्टी के कणों को नीचे बैठा देता है और साथ ही रोगाणुओं को भी मारने की क्षमता रखता है। हमारे देश में इसे सहजन या सुहैंजना कहा जाता है। इसका वैज्ञानिक नाम है मोरिंगा ओलीफेरा।

इस पेड़ के बीजों से कोई भी व्यक्ति आराम से पानी का शुद्धिकरण कर सकता है। घर में ही पानी शुद्ध करने के लिये सुहैंजना के पके हुए बीजों का प्रयोग अति उत्तम रहता है। इसके लिये सबसे पहले बीज के पंखों को हटाकर बीज तोड़ कर गिरी अलग कर लीजिये। इन गिरियों को एक साथ पीसकर पाउडर बना लें। इस पाउडर को रखकर आवश्यकतानुसार प्रयोग किया जा सकता है। अब इस पाउडर में थोड़ा पानी मिलाकर इसकी लेई बना लें। इस लेई की मात्रा पानी के दूषण पर निर्भर करती है। इस प्रयोग के करने से धीरे-धीरे मालूम पड़ जाता है कि पानी में कितनी मिट्टी है और उसी के अनुसार कितने पानी के लिये कितनी लेई की आवश्यकता है।

लाईसेस्टर विश्वविद्यालय के शोधकर्ताओं ने तो यहाँ तक पाया कि बीस लीटर पानी की क्षमता वाली पानी की बाल्टी में दो ग्राम पिसे हुये पाउडर की आवश्यकता होती है। बस यह बात ध्यान में रखी जानी चाहिए कि पानी साफ करने के लिये पिसे हुये पाउडर से रोज ताजी लेई (पेस्ट) बनायी जाये। लेई बनाने के लिये पाउडर व पानी को आपस में अच्छी तरह मिलाना चाहिए ताकि बीज में उपस्थित रसायन सक्रिय हो जाये और साथ ही साथ उनमें आवेश भी आ जाये। यही आवेश मिट्टी के कणों व रोगाणुओं को अपनी ओर खींचता है।

लाइसेस्टर विश्वविद्यालय की एक अन्य रिपोर्ट के अनुसार इस विधि से ९० से ९९ प्रतिशत तक जीवाणुओं से छुटकारा पाया जा सकता है। इस

शोध से हमारे देश में प्रदूषित पानी से होने वाली बीमारियों से तो बचाव होगा ही, इन बीमारियों से जाने वाली सैंकड़ों जानें भी बच जायेंगी। इस साधारण, सस्ती और घरेलू विधि से भारत के लाखों लोगों को फायदा होगा।

सुहैंजना एक बहूद्देशीय पेड़ है। पानी शुद्ध करने के अलावा भी इसके अनेक उपयोग हैं। देखने में सुन्दर लगने वाला यह वृक्ष मौसम में सफेद फूलों से भर जाता है। बाद में यह फूल लम्बी-लम्बी फली का रूप धारण कर लेते हैं। यह ढोल की छड़ी जैसी लगती है। इसीलिये इसे ड्रमस्टिक कहा जाता है। इन फलियों की सब्जी और अचार बनाकर खाया जाता है। बाद में इनके बीज सूखने पर प्राप्त किये जा सकते हैं। इन बीजों में ४० प्रतिशत स्वादिष्ट खाद्य तेल होता है जिसे बेनआयल कहा जाता है। यह तेल सौन्दर्य प्रसाधनों के लिये बड़े पैमाने पर इस्तेमाल किया जाता है। इसके अलावा इत्र बनाने और घड़ियों के पुर्जे साफ करने में भी इसका प्रयोग किया जाता है। इस पेड़ की पत्तियाँ पशुओं के लिये उत्तम चारा होती हैं। इनमें २७ प्रतिशत प्रोटीन और पर्याप्त मात्रा में विटामिन 'ए' और 'सी' होता है। इसके अलावा लोहा, रेशा, कैल्शियम, मैग्नीशियम, फास्फोरस, पोटेशियम, सल्फर, क्लोरीन आदि तत्व भी इसकी पत्तियों में पाये जाते हैं।

यह एक औषधीय वृक्ष भी है। इसके प्रत्येक भाग में औषधीय गुण हैं। इसके बीज पीसकर उन्हें संक्रामक चर्म रोग के उपचार में प्रयोग किया जाता है। यह बीज परिवार नियोजन के लिये भी उपयोगी है। इसकी पत्तियाँ चर्मरोग, स्कर्वी और जोड़ों के दर्द में बेहद उपयोगी है। इसके फूल गुर्दों के लिये अच्छे हैं। इसकी जड़ों का अर्क मुँह की सूजन और हिस्टीरिया में प्रयोग होता है। जबकि इसका तेल गठिया में लाभदायक है।

इसके बीजों का तेल निकालने के बाद बची हुई खल में भी पानी को शुद्ध करने के गुण बचे रहते हैं। इसका उपयोग बड़े पैमाने पर पानी साफ करने के लिये किया जा सकता है।

सुहैंजना के इतने सारे गुणों के बावजूद हमारे दश में बड़े पैमाने पर इसका पौधारोपण नहीं किया जा रहा। इसके वृक्षों के संरक्षण के साथ-साथ कृत्रिम संवर्धन की भी यहाँ आवश्यकता है। इससे देश को बहुत सारे लाभ मिलेंगे जो भविष्य को भी उज्जवल बनायेंगे।

(अम्बाला के कम्पनी बाग के उप-वन संरक्षक जगदीश चन्द्र से प्राप्त जानकारी के आधार पर)

[दैनिक सहारा से साभार]

लखनऊ भण्डारा

श्री रामाश्रम सत्संग (मथुरा) उपकेन्द्र लखनऊ का भण्डारा दिनांक ९, १० एवं ११ अक्टूबर १९९७ को E/१३८२ राजाजीपुरम में होगा। प्रेमीजन पधारकर अनुग्रहित करें।

सम्पर्क सूत्र : के० सी० श्रीवास्तव, E/१३८२ राजाजीपुरम, लखनऊ

शोक समाचार

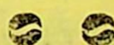
अत्यन्त दुःख के साथ सूचित करना पड़ रहा है कि—

नारंगपुर के श्री डल्लू गिरी जी का ६ जुलाई को, लखीसराय के श्री सुरेश प्रसाद सिन्हा जी की माता जी का ९ अगस्त को, पटना के श्री ध्रुव नारायण सिन्हा जी की चचेरी बहन का ९ अगस्त को, राजनन्द गाँव के श्री टरिलाल विश्वकर्मा जी के पिताजी का ९ मई को, सहारनपुर के श्री उमाशंकर जी का २३ जुलाई को, उरई के डा० सुरेशचन्द्र सक्सेना जी की धर्मपत्नी का २ अगस्त को, बिजनौर के श्री दिनेश कुमार जी की माताजी का १२ अप्रैल को, उरई के श्री बल्देव सहाय सैनी जी की धर्मपत्नी का ९ अगस्त को, मोसिमपुर के श्री रामप्रकाश शर्मा जी की माँ का ३० जुलाई को, सिवान के श्री नगेन्द्र प्रसाद सिंह जी की धर्मपत्नी का २० जून को, अजमेर के श्री दलीप सिंह राठौर जी की माताजी का २१ जुलाई को, कुदरा के साधुजी के भतीजे की धर्मपत्नी का २४ जुलाई को, सहरसा के श्री गंगानाथ ठाकुर जी की सास का, श्री रामानन्द कुंवर जी की भगिनी का, रेवाड़ी के श्री रामानन्द यादव जी की माताजी का २ अगस्त को, प्रतापुर के श्री राणा प्रताप सिंह का २५ जुलाई को, वाघी के श्री धर्मदेव सिंह जी की धर्मपत्नी का १६ जुलाई को, वाराणसी के सदानन्द लाल जी का १८ जुलाई को, कलकत्ता के नारायण दास जी के साले साहब का १६ जुलाई को स्वर्गवास हो गया है।

परम पूज्य श्री गुरु महाराज जी से प्रार्थना है कि दिवंगत आत्माओं को निजधाम में शान्ति एवं शोक सन्तप्त परिवारीजनों को धैर्य प्रदान करें।

राजस्थान तथा बिहार सरकार द्वारा स्वीकृत

साधन के नियम



१ गूढ़ तथा अनुभवी गुप्त रहस्यों को सरल भाषा द्वारा जनता तक पहुँचाना तथा सदाचार की शिक्षा देना "साधन" का मुख्योद्देश्य है।

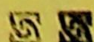
२. साधन प्रत्येक मास की २०-२१ तारीख को प्रकाशित होता है। जिन ग्राहकों को पत्रिका ३० तारीख तक न मिले, उन्हें डाकखाने तथा कार्यालय से तलाश करना उचित है। अंक न मिलने पर एक माह के अन्दर सूचित करने पर अंक दोबारा भेज दिया जायेगा।

३. साधन में आध्यात्मिक, सामाजिक तथा शारीरिक उन्नति के लेख ही छापे जायेंगे। राजनैतिक तथा अश्लील लेख भेजने का कोई भी सज्जन कष्ट न करें।

४. लेखों को घटाने बढ़ाने और छापने न छापने का अधिकार सम्पादक को रहेगा, परन्तु लेख प्रकाशित नहीं होने पर सम्पादक उत्तरदायी न होगा। लेख सरल भाषा में कागज के एक ओर ही स्वच्छ लिखे हों।

५. ग्राहकों को पता व ग्राहक नम्बर स्वच्छतापूर्वक लिखना चाहिए। उत्तर के लिए टिकट भेजना उचित है। बिना ग्राहक नम्बर के विलम्ब हो सकता है।

६. साधन का वार्षिक मूल्य रु० ६०/- है। एक प्रति का मूल्य रु० ५.०० है। केवल अगस्त १९९७ विशेषांक का मूल्य १२.०० है। एक वर्ष से कम के ग्राहक नहीं बनाये जायेंगे।



Reg. No. of R. No. 2959/57 Postal Regd No. MTR - HO - 12

Licence No. 001/ 97 to Post without prepayment



प्रबन्ध सम्पादक : आलोक कुमार, साधन हिन्दी मण्डली कार्यालय, मथुरा.
प्रकाशक : हेमेन्द्र कुमार, साधन हिन्दी मण्डली कार्यालय, डैम्पियर, नगर, मथुरा
मुद्रक : हेमेन्द्र कुमार, साधन प्रेस, डैम्पियर नगर, मथुरा.

404545, 404066

अक्टूबर 1997

साधन

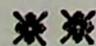
संस्थापक -
समर्थ गुरु परम सन्त डा. चतुर्भुज सहाय जी



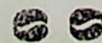
रामाश्रम सत्संग, मथुरा







इस अंक में





युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे ।
स्वर्ग्याय शक्त्या ।।

— यजुर्वेद ११-२

—दुखों से छूटकर, मोक्ष आनन्द प्राप्त करने के लिए उपासना योग द्वारा आत्मा को शुद्ध करके, परमेश्वर में प्रकाश रूप आनन्द को प्राप्त हों।

ॐ शान्तिः । शान्तिः ।। शान्तिः ।।।

वर्ष : ६५
अंक : ३

अक्टूबर १९९७

वार्षिक मूल्य : रु० ६०.००
इस अंक का : रु० ५.००

✳ दरसन की प्यास ✳




अखियां गुरु दरसन की प्यासी ।
यकटक लागी पंथ निहारूँ, तन से भई उदासी ।।१।।
रैन बिना मोंहि चैन नहीं है, चिन्ता अधिक सतावै ।
तलफत रहूँ कलपना भारी, निश्चल बुद्धि नहिं आवै ।।२।।
तन गयो सूख हूक अति लागी, हिरदे पावक बावी ।
छिन में लेटी छिन में बैठी, घर आगन छिन ठाढ़ी ।।३।।
भीतर बाहर संग सहेली, बातन ही समझावैं ।
"चरनदास" शुकदेव प्यारे, नैनन ना बरसावैं ।।४।।

—सन्त श्री चरणदास जी




अमृत-बिन्दु

मुमुक्षु का मुख्य साधन

—परम पूज्य गुरुदेव



["ज्ञान नेत्र खोलने के लिए—परम ईश्वरीय तत्व का साक्षात्कार करने के लिए और भवसागर के पार मुक्तिधाम तक पहुँचने के लिए अभ्यास के साथ-साथ सत्संग भी जरूरी है। जो अभ्यासी सत्संग की महिमा नहीं जानता, खाली अभ्यास के ही पीछे पड़ा हुआ है, वह गलती पर है।" —पूज्य गुरुदेव के ये शब्द उन लोगों के लिये पठनीय और और मननीय हैं जो पुस्तकों से ही "विवेक" प्राप्त करने की भारी भूल कर बैठते हैं और अन्त में हाथ मलकर रह जाते हैं।] —सम्पादक

संसार की प्रत्येक घटना को गहरी दृष्टि से देखना, उस पर मनन करना और अन्त में किसी मुख्य परिणाम पर पहुँचना "विवेक" कहलाता है। विवेक से बुद्धि में विकास होता है, ज्ञान नेत्र खुलते हैं, संसार का वास्तविक रूप प्रत्यक्ष होता है और इसी के द्वारा वैराग्य एवं उदासीनता चित्त में आती है। विवेक से मनुष्य को अपनी स्थिति समझ में आती है, उसे अपने बल व सामर्थ्य का ज्ञान होता है। अपना कर्त्तव्य दिखाई देने लगता है और यही विवेक अन्तर चक्षुओं को खोल सत् मार्ग की ओर ले जाता है।

"विवेक" एक शक्ति है जो प्राणी के मस्तिष्क में रहती है। इसके उदय होते ही ज्ञान-शक्ति "बुद्धि" में तीक्ष्णता आती है। सूक्ष्म बुद्धि से सूक्ष्म तत्वों का ज्ञान होता है और यही वास्तविक ज्ञान आत्म-दर्शन कराता हुआ मोक्ष का अधिकारी बनाता है। विवेकहीन मनुष्य ऐसे पशु के तुल्य है जो मस्तिष्क रखता है पर अपने लिए न कुछ सोच सकता है, न अपने समाज के लिए कर्तव्य जान सकता है।

ध्यान

योग के साधन—'धारणा' और 'ध्यान' बुद्धि के साधन नहीं हैं। वह मन के साधन हैं, उनसे मन में एकाग्रता व शान्ति आती है, उसकी चंचलता बन्द होती है। जैसे-आँधी के वेग के समय

मनुष्य का दिमाग बेकार हो जाता है, उसी प्रकार परेशान या अशान्त मन होने पर बुद्धि कोई काम नहीं कर सकती। इसलिए जरूरत है इस बात की, कि बुद्धि से काम लेने के लिए एवं उसे तीव्र करने के लिए मानसिक साधन किए जायें। इसका अभ्यास जितना-जितना बढ़ता जाता है, उतना ही दिमाग (बुद्धि) खुलता जाता है, उसमें गूढ़ और गहन रहस्यों के समझने की शक्ति आने लगती है और उसी से पूर्ण त्यागी बन पाता है। जहां एकाग्रता नहीं वहां ज्ञान नहीं।

सत्संग

धारणा व ध्यान के अभ्यास से शान्ति तो मिलती है, कई प्रकार की सिद्धियां व शक्तियां भी प्राप्त हो रहती हैं, परन्तु इससे विवेक नहीं उभरता। विवेक की स्फूर्ति के लिए "सत्संग" की आवश्यकता पड़ती है। महान पुरुषों के समीप बैठ के उनके उपदेशों को ग्रहण करना, उनकी आत्मशक्ति को अपने अन्दर खींच-खींच के भरना "सत्संग" कहलाता है। सत्पुरुषों के वाक्य हृदय की ग्रन्थि को खोलते हैं, उनकी देह व आत्मा से निकली हुई विद्युत धारायें शिष्य में प्रवेश हो उसके आवरणों को भेदन करती हैं और उसे प्रकाश देती हैं।

इस प्रकार वह बड़ी सरलता से अन्धकारमय 'चन्द्रलोक' से ऊपर चढ़, ज्योतिर्मयी 'सूर्यलोक' में जा पहुँचता है। 'मुमुक्षु' का अर्थ है—मायावी बन्धनों से मुक्ति की इच्छा रखने वाला। मुमुक्षु के लिए विवेक और विवेक के लिए "सत्संग" लाजिमी है। विज्ञान और आनन्दमय लोकों के पार सत्संग ही ले जा सकता है, जिन्होंने इस सत्संग रूपी नौका को नहीं पकड़ा वह इस विशाल जलाशयों को पार कर सकेंगे, इसमें बहुत कुछ सन्देह है। पूर्ण रूप से गुरु का आश्रय लेना और उनका आशीर्वाद प्राप्त करना इन दोनों धामों के साधन हैं।

विवेक की प्राप्ति के लिए तीसरी चीज 'स्वाध्याय' है। महापुरुषों के बनाये हुए ग्रन्थों को पढ़ना, उन पर मनन करना और उनके अनुसार जीवन बनाने की कोशिश करना 'स्वाध्याय' कहलाता है। लेकिन जो बात चैतन्य शरीर के समीपत्व द्वारा प्राप्त होती देखी जाती है, वह केवल स्वाध्याय से नहीं प्राप्त होती। इसलिए जब कभी अवसर मिले, जितना भी अवसर मिले, कष्ट उठाके, पैसा खर्च करके, दूसरे कामों को पीछे डाल के मुमुक्षु को "गुरु-सत्संग" अवश्य लाभ करना चाहिए अन्यथा उसका काम अधूरा ही रहेगा।

—※::※—

मनुष्य का आदर्श है कि वह परमात्मा को सर्वत्र देखे। यदि उसे सभी वस्तुओं में नहीं देख सकते तो पहले उसी में देखो जो तुम्हें सबसे अधिक प्यारी हो। फिर दूसरी में। इस प्रकार आगे बढ़ते चलो। इच्छानुसार समय खर्च करो। तुम्हारी इच्छा अवश्य पूर्ण होगी।

—प० पूज्य पण्डित जी

सम्पादकीय

संसार और ईश्वर

हम और आप इस संसार में आये हैं। इसमें हमें रहना है तो आवश्यक यह है कि इसमें हम आनन्दपूर्वक रह सकें तथा इसे और भी सुविधा सम्पन्न बनायें ताकि आने वाली सन्तति भी इसमें आनन्द से रह सके। संसार क्या है? संस्कृत में इसकी बड़ी सुन्दर व्याख्या आती है—संसरति इति संसारः। अर्थात् जो संसरण करता है, अर्थात् जिसमें गति है। परमपूज्य पण्डित जी महाराज ने भी लिखा है जगत (संसार) ईश्वर का जाग्रत स्वरूप है। यहाँ हम चेतन संसार देखते हैं जिसमें गति है, क्रिया है तथा अचेतन संसार देखते हैं जो जड़ है जिसमें क्रिया नहीं दिखलाई पड़ती। लेकिन हमारे धर्म शास्त्रों में आया है कि यहाँ कण-कण में परमात्मा है, और यहाँ वह लीला कर रहा है। अर्थात् हर परमाणु में वह बसा हुआ क्रियाशील है। हर परमाणु यहाँ आता है, निर्माण होता है। कुछ काल तक रहता है और लुप्त हो जाता है। यहाँ ओउम् के चारों चरण अ, उ, म और अर्धमात्रा की उपस्थिति हर समय रहती है। आज के विज्ञान की दृष्टि से देखें तो हर परमाणु में न्यूट्रोन व इलैक्ट्रोन है और वहाँ क्रिया हो रही है। जिस परमाणु को हम अपनी आँखों से देख नहीं सकते उसमें भी क्रिया हो रही है। प्रत्येक वस्तु का एक केन्द्र है। हर वस्तु उसी अपने केन्द्र की ओर एक व्यवस्थित प्रक्रिया से दौड़ रही है। परमपूज्य पण्डित जी महाराज कहा करते थे कि हम जो अँगुली में सोने की अंगूठी पहने हैं उसके भी कण या परमाणु धीरे-धीरे झड़ते रहते हैं, और जहाँ उसका केन्द्र है, वहाँ पहुँचते रहते हैं। ऐसा एक रचनात्मक विधान है कि हर परमाणु की गति धीरे-धीरे अपने केन्द्र की ओर है। केन्द्र तक पहुँचने में कितना समय लगता है यह अलग बात है। हम स्वयं को ही देखें—कभी बालक थे, युवा अवस्था आई, युवा से वृद्धावस्था आ रही है और धीरे-धीरे अपने केन्द्र की ओर अग्रसर होते जा रहे हैं। लेकिन कुछ भी मालुम नहीं पड़ता। कब बालकपन छूट गया, कब युवावस्था आई और कब युवावस्था वृद्धावस्था में बदल गई कोई पता नहीं चलता। और इस अपने केन्द्र की ओर चलते रहते हैं। इसमें कोई व्युतिक्रम नहीं होता।

प्रकृति के सभी तत्व दौड़ रहे हैं लेकिन केन्द्र शान्त है। जहाँ कोई क्रिया नहीं। वह पूर्ण शान्त है लेकिन चिन्मय है—ज्ञानवान है। पूर्ण है सृष्टि का बीज स्वरूप है। इसे ही शास्त्रों ने परमात्मा या पूर्ण ब्रह्म कहा है। इसी से क्रिया है, क्रिया से ही सृष्टि का निर्माण, पालन और संहार और पुनः पूर्ण शान्ति। यही पूर्ण ओउम् है। ओउम् के चार

पाद शास्त्रों ने लिखे हैं १. उत्पत्ति, २. स्थिति, ३. लय, ४. अर्ध मात्रा। उत्पत्ति को जाग्रत कहा जाता है, यहाँ जीव आया कुछ काल तक रहा। स्थिति इसे स्वप्न भी कहा है तथा तीसरी अवस्था लय—जहाँ वह इस शरीर से अलग हो गया इसे सुषुप्ति कहा है। इससे आगे चौथी अवस्था तुरीय अर्थात् अर्धमात्रा। अभी कुछ है पूर्ण शान्ति नहीं। बिल्कुल ऐसे ही जैसे हमने घड़ियाल (घण्टे) में मौंगरी मार दी। बस एक शब्द हुआ कुछ काल तक रहा, फिर शान्त हो गया। शान्त होने पर भी एक हल्की सी झंकार बाकी है। क्रिया है लेकिन सूक्ष्म में है, अभी क्रिया व्याप्त है। पूर्ण शान्ति तभी है जब सूक्ष्म क्रिया भी न रहे। अर्थात् तुरीयातीत, जहाँ अर्धमात्रा भी न हो तभी ओउम् की पूर्णता होती है। यही पूर्णब्रह्म परमात्मा की अवस्था है, जहाँ शान्ति है पूर्ण चैतन्यता है। यही हमारा केन्द्र है। यही हमारी मञ्जिल है।

अब प्रश्न उठता है उस पूर्ण शान्ति को हम कैसे प्राप्त करें ? परमात्मा केन्द्र है, जहाँ आकर्षण और अनाकर्षण दो शक्तियाँ सदैव कार्य करती हैं। आकर्षण अपनी ओर खींचती है और अनाकर्षण उसे विपरीत दशा में ढकेलती है। ऐसी दशा में कोई भी उस केन्द्र की ओर नहीं जा पाता। इन दोनों शक्तियों के कारण एक चक्र सा बन जाता है जहाँ जीव भ्रमण करता रहता है। चाहते हुए भी वह केन्द्र तक नहीं जा सकता। इस चक्र को भेदना असम्भव ही है। कोई अपने पुरुषार्थ से इसे भेदना चाहे, साधना के द्वारा उस केन्द्र से मिलना चाहे असम्भव ही है। हाँ वही कृपा करे तब यह सम्भव हो जाता है। परमात्मा जब द्रवित होता है तब उस जीव को किसी सन्त की शरण में भेज देता है। केवल सन्त ही समर्थ है जीव को उस चक्र से पार कर केन्द्र से मिलाने में सन्त कृपा कर देते हैं तो जीव अपने केन्द्र से मिलकर पूर्ण हो जाता है। जैसे बुझा हुआ दीपक जलते दीपक के सम्पर्क में आकर जलने लगता है वह स्वयं तो प्रकाशित होता ही है अन्य लोगों को भी प्रकाश देता है। ऐसे ही ऐसा व्यक्ति स्वयं तो आनन्दमय होता ही है और को भी आनन्द प्रदान करता है।

बस केवल मात्र यही रास्ता है किसी सन्त की शरण जाकर अपने को प्रकाशित कर लें। बस आप स्वयं भी प्रकाश में होंगे और लाखों को आप मार्ग दिखा सकेंगे अन्यों को भी प्रकाशित कर देंगे। तब यह समाज सुन्दर होगा। यहाँ सर्वत्र आनन्द ही आनन्द होगा। दुःख नहीं होगा क्लेश नहीं होंगे। सभी कुछ पूर्ण होगा।

—:❀❀:—

तीर्थ

जहाँ पहुँच के हृदय की तपन बुझ जाय, मन में शान्ति व शीतलता आ जाय बुद्धि शुद्ध व निर्मल बन जाय और चित्त संसार की ओर से हटकर आत्मा की ओर खिंच जाय, ऐसे स्थान को तीर्थ कहते हैं। तीर्थ में पहुँचते ही मन से विषय वासना और चिन्तायें दूर जा खड़ी होती हैं।

प्रवचन-पराग

हमारा स्वप्न

—परम पू० पण्डित जी

संसार को स्वप्न कहा गया क्योंकि स्वप्न की भाँति इसका वास्तविक कोई अस्तित्व नहीं है। इसको मिथ्या कहा गया क्योंकि यह सदा नहीं रहता और रहने पर भी पल-पल परिवर्तन का शिकार है। यह सम्पूर्ण विश्व भी एक दिन शून्य में विलीन हो जायेगा और महाप्रलय का शून्य रह जायेगा। इसलिए इस संसार को क्षणभंगुर, नाशवान, यहाँ तक कि पानी का बुलबुला कहा गया।

यह तो हुयी स्थूल जगत की बात। मगर संसार सूक्ष्म भी है जो हमारे आपके अन्तर में बसा हुआ है और यह संसार और भी विशाल और अथाह है। इसका नाश होना भी महान कठिन है। स्वप्न में जाने पर स्वप्न मिथ्या नहीं अपितु सच ही लगते हैं, ठीक वैसे ही यह मिथ्या होते हुए भी सच ही लगता है। लाख बताने और समझाने पर भी यह बात समझ ही नहीं आती कि यह मिथ्या है। एक-दो दिन नहीं, एक-दो वर्ष भी नहीं, हजारों जन्म व्यतीत हो जाते हैं, मगर हम इस मिथ्या को सच मानने से मान नहीं सकते। इस संसार की भूलभुलैया में हम इस कदर फँसे हैं कि कहीं से घूमकर फिर वहीं पहुँच जाते हैं जहाँ से चले थे। एक भँवर की भाँति जो बार-बार घूमकर फिर वहीं उलझा देता है। फँसा हुआ जीव छटपटाता है, घबड़ाता है, मगर उसके चंगुल से निकल नहीं पाता। इसीलिए इसे भवसागर और भवजाल कहा गया।

तब फिर जीव विविध विध, पावइ संसृति क्लेस।
हरि माया अति दुस्तर, तरि न जाइ बिहंगेस॥
(रा० मा०)

माया कहते हैं छलावा को, प्रपञ्च और धोखा को, भ्रम या जादूगरी को। ये जितनी भी संज्ञाएं हैं उनमें सत्य नाम मात्र भी नहीं है। माया एक ऐसा इन्द्रजाल है जो उस सनातन ऐन्द्रजालिक की महान विद्या है जिसका भेद जान पाना महान कठिन है। वह ईश्वर सर्वशक्तिमान है, उससे महान कोई नहीं, उसके समान भी कोई नहीं। वह सबको बनाता है, सबको रखता है और सबको बिगाड़ता भी है। एक बालक जो अनेकों खिलौनों का मालिक है, बालू के घर बनाता और बिगाड़ता है। भला खिलौनों और बालक में क्या तुलना? एक चलने वाला, दूसरा उसे चलाने वाला, एक बनने-बिगड़ने वाला, दूसरा उसका बनाने-बिगाड़ने वाला। उस परमात्मा के विषय में तो वही जाने

कि उसे कोई बनाता है, स्वयं बनाता है या वह बनने-बनाने से परे अजन्मा और सनातन है।

जिसे हमने सनातन ऐन्द्रजालिक की विद्या कहा उसे हम अविद्या के नाम से जानते हैं क्योंकि यह हमें भ्रम में फँसाती है, सत्य के ऊपर पर्दा करती है। मगर इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि माया उस मायापति की एक अप्रतिम कला है और इसका बिस्तार वहाँ तक है, जहाँ तक हमारी समस्त इन्द्रियों की पहुँच है। हम जहाँ तक सोच सकते हैं, समझ सकते हैं, अर्थात् मन और बुद्धि की पहुँच तक माया ही है।

गो गोचर जंह लग मन जाई ,
सो सब माया जानहुँ भाई ॥
(रा० मा०)

उस जादूगर की जादूगरी पर दाँतों तले उँगली दबाकर रह जाना पड़ता है, अवाक् और आश्चर्य चकित रह जाना पड़ता है। यह इतना सुन्दर और विचित्र है कि इसके मोह पाश से छूटने का मन ही नहीं करता। इसके मोह निशा से उठने का मन ही नहीं होता। यह जान कर और आश्चर्य होगा कि यदि कोई जगाने वाला मिल जाय तो यह मोह निद्रा क्षणमात्र में भङ्ग हो जाती है। यह सूक्ष्म और कारण संसार पल मात्र में नष्ट हो जाता है।

हम तीन अवस्थाओं में नित्य रहते हैं—जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति। हम इन अवस्थाओं को अच्छी प्रकार जानते-समझते हैं। हम जब जागते हैं तो जाग्रत और सोने में स्वप्न और सुषुप्ति की दशा आती है। इसमें जाग्रत को तो हम सत्य मानते हैं और स्वप्न और सुषुप्ति की दशा को मिथ्या। ऐसा इसलिए कि जाग्रत में आने पर स्वप्न की अधिकतर बातें अनापशनाप और ऊटपटांग लगती हैं और स्वप्न में स्थायित्व नहीं रहता। जाग्रत में हम जो भी करते हैं उसमें कुछ स्थिरता है, जीवन में उसका उपयोग है। संसार के दिन-रात और जाग्रत-स्वप्न की भाँति सूक्ष्म और कारण जगत में भी जीव की तीन अवस्थाएँ हैं—जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति। एक समय वह होता है, जब जीव सोता है और अनेक प्रकार के स्वप्न देखा करता है। यह जीव के अज्ञान और मोह की दशा है। वह इस संसार को अमर और सुख की खान समझकर इसी में लिप्त रहना चाहता है। वह अपनी अनेकानेक कामनाओं के सुन्दर सुन्दर स्वप्न संजोया करता है। संसार में उसकी आसक्ति इतनी घनी होती है जितनी कि मीन की जल में। यह स्थूल जगत में जाग्रत की दशा है तो अन्तर जगत में निद्रा की।

मोह निसा सब सोव निहारा ,
देखहिं सपन अनेक प्रकारा।

मगर जब जीव जागता है तो देखता है की सत्य कुछ और है। यह सारा संसार मिथ्या, एक स्वप्न की भाँति मिथ्या लगने लगता है और एक मात्र परमात्मा ही सत्य भासता है। वह देखता है कि संसार पल-पल कितना बदल रहा है, सत्य तो बदलता नहीं। वह पछताने लगता है—अरे मैं कितना सो गया? स्वप्न में क्या-क्या देख गया अपने पर कभी हँसता है, कभी रोता है। हाय कितना समय निकल गया। किसी ने मुझे जगाया भी नहीं। हे परमात्मन् क्षमा करना। मैं जीव हूँ, माया में रहकर भूल करना मेरा स्वभाव बन गया है। जब तक आपकी कृपा नहीं होगी जीव कभी इस निद्रा से जाग नहीं सकता।

नाथ जीव तव माया मोहा ।
सो निस्तरइ तुम्हारेहिं छोहा ।।
(रा० मा० बाल०)

जीव जन्म-जन्म से इसी मोह निशा में सोकर सच को झूंठ और झूंठ को सच मानकर गर्व के साथ चल रहा है। वह नहीं सोचता कि यह सोने की चिड़िया आज तक किसी की हो नहीं पायी। एक से एक महान आये और चले गये, न कुछ लेकर आए, न कुछ लेकर गए। इसे भोगते-भोगते स्वयं भुगत गए। मगर हमारी आँखें बन्द हैं। हम दूसरों को धोखा देने से चूकते नहीं, काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, द्वेष का चोला पहनकर नाचने में मस्त हैं। बस यही जीव की गहरी निद्रा है, यही स्वप्नों का संसार है, इसमें जीव अनन्त काल से निमग्न है। संसार के प्रति जागना सत्य के प्रति सोना है।

स्वप्न में जब हम बड़बड़ाने लगते हैं तो कोई आकर हमें जगा देता है, आवाज दे देता है या झकझोर देता है, बस हम तत्क्षण जाग जाते हैं और भयङ्कर स्वप्न से मुक्त हो जाते हैं। जब तक कोई नहीं जगायेगा हम उसी स्वप्न में सदा मरते-जीते रहेंगे। वही जगाने वाले गुरु हैं। वे जीव को जगाते हैं, आवाज देते हैं, झकझोरते हैं। मगर इतने पर भी जो न जाग पायें और आलस में चादर तानकर पड़े रहें तो उनको क्या कहा जाय। इससे बड़ा दुर्भाग्य जीव का और क्या होगा।

इस संसार की मोह रूपी निद्रा बस उतनी ही देर की है जितनी कि बालू की रेत में चमकती सीपी में चाँदी समझ लेने का भ्रम या रास्ते में पड़ी रस्सी में सर्प होने का भ्रम। जितनी ही देर में यह भ्रम चला जाता है, बस उतनी ही देर में मोहनिशा भी भंग हो जाती है। सोये हुए आदमी को जाग्रत में आने में कोई समय लगता ही नहीं। बस गुरु के एक इशारे पर ही जन्म-जन्म की यह निद्रा भंग हो जाती है।

"जीव के जागरण के लिए समाधि की आवश्यकता है और उसके लिए साधना, सत्संग और सद्गुरु की। तभी काम बन पाता है, नहीं तो जन्म के जन्म बीत जाते हैं और हम हर सुबह एक अज्ञान लिए हुए जागते हैं।"



उनकी बात

"लो, यदि तुम मुझको गुरु मान रहे हो तो सुनो—डरो मत-विश्वास रक्खो यह एक ही साधन तुमको पापों से छुड़ा · मुक्त कर देगा।"

रामाश्रम सत्संग की धारणा

—श्री कृष्णकान्त



हम सब जानते हैं कि समाज की रचना हम सबसे होती है। हम चाहते हैं कि हमारा समाज सुन्दर हो, हमारे विचार और कार्य एक दूसरे की भलाई के हों। इसके लिए सन्तों ने विचार किया कि कैसे हम और सुन्दर समाज बना सकते हैं, कैसे हम अपने जीवन को और भी सुन्दर अवस्था में ले जा सकते हैं। इसकी सन्तों ने शोध की। गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि हर मनुष्य का धर्म होता है कि उसके पास जो भी अच्छा है वह समाज को दे। अच्छे विचार हैं तो अच्छे विचार दे, खूब धन है तो धन दे, विद्या है तो विद्या दे। इस प्रकार सब भाई समाज को देते हैं तो समाज पुष्ट होता है, सुन्दर समाज की रचना होती है। इसी सुन्दर व पुष्ट समाज की स्थापना में रामाश्रम सत्संग का बहुत बड़ा सहयोग है।

ज्ञान दो तरह का होता है—एक अपरा और दूसरा परा। एक ज्ञान जिसको आप और हम प्राप्त करते हैं माता से, पिता से, शिक्षक से, समाज से—इसको अपरा ज्ञान कहते हैं। इस ज्ञान से हम जीवन के आवश्यक कार्यों को करते हैं। दूसरा ज्ञान परा ज्ञान है। एक है जीवन जीना, दूसरा है जीवन जानना। जीना और बात है जीवन को सुन्दर बनाना और बात है। जीते सभी हैं लेकिन जिनमें परा ज्ञान आ जाता है उनका जीवन सुन्दर हो जाता है। जैसे जलता हुआ दीपक, स्वयं तो प्रकाशित होता ही है औरों को भी प्रकाशित करता है। इस तरह परा ज्ञान आवश्यक है। रामाश्रम सत्संग की धारणा है, ध्येय है कि हम सब इस ज्ञान को प्राप्त करें।

साधना और समाज

वास्तव में समाज के हर व्यक्ति का कर्त्तव्य है—साधना करना। कोई कठिन साधना करना नहीं बल्कि अपने मन का अध्ययन करना। मन क्या सोच रहा है, क्या करना चाहिए—हमारा धर्म क्या है। एक धर्म होता है साधारण दूसरा धर्म होता है आत्मा का। यह आत्मा का धर्म पूर्णता को प्राप्त कराता है। सुन्दर समाज के लिए आवश्यक है कि हर व्यक्ति पूर्णता को प्राप्त करे। हर व्यक्ति जलते हुए दीपक के समान हो और सबको प्रकाश दे। उसी के लिए रामाश्रम सत्संग की साधना है।

इस विश्व में दो तरह के सन्त आए। एक तो सब कुछ पा परमात्मा को प्राप्त कर गए लेकिन पूर्णता को प्राप्त कर अपने तक ही रहे। कुछ सन्त ऐसे भी आए जिन्होंने हर वर्ग को लिया, कोई भेद नहीं किया—न जाति का, न स्त्री या पुरुष का, न पढ़े बेपढ़े का, न धनी या गरीब का—उन्होंने पूरे समाज को लिया। इनमें श्री गुरु महाराज का स्थान सर्वोपरि है। एक भाई ने श्री विनोबा जी से पूछा था कि समाज में विकृतियाँ भर गयी हैं, उसके लिए क्या किया जाय ? उन्होंने बतलाया था कि इसके लिए सारा समाज समाधि में जाय। समाधि

में—तात्पर्य है समता में, ज्ञान में, उस अवस्था में जहाँ अपने को देख सकें। इसे गुरु महाराज ने व्यवहार में उतारा। उन्होंने हर वर्ग को बुलाया। धर्म, विचारधारा, इष्ट का कोई फर्क नहीं किया। उन्होंने कहा—सब ही बैठो, सभी जन परमात्मा को याद कर लो।

साधारणतया यह बात बड़ी सादी लगती है। लेकिन इसमें तीन चीजें होती हैं—धारणा, ध्यान और समाधि। धारणा में हम परमात्मा को याद करते हैं। किसी ने राम को, किसी ने शिव को, किसी ने किसी को लिया। हम सब अलग-अलग बैठे, लेकिन सूक्ष्म (ध्यान) में गए तो सब एक हो गए। जैसे जागृति में तो सब अलग-अलग बैठे हैं, सो जायेंगे तो एक अवस्था में आ जायेंगे। किसी को होश नहीं कि मैं स्त्री हूँ, पुरुष हूँ, अमीर हूँ, गरीब हूँ। ऐसे ही जब ध्यान में जायेंगे तो कुछ पता नहीं रहेगा कि मेरा इष्ट राम था या शिव था। भिन्न-भिन्न विचारधारा में बैठे और एक हो गए। कोई जरूरी नहीं कि अपने-अपने इष्ट को छोड़कर आवें। छोड़ना नहीं है। आप राम को जानते हैं वह अल्ला को जानते हैं। यह कहते हैं ये बड़े हैं वह कहते हैं वे बड़े हैं। परन्तु न तो भाई आपने राम को जाना और न अल्ला को जाना। दोनों जान जाओगे तो संघर्ष नहीं होगा। इसलिए भाई पूज्य गुरुदेव की समन्वय की रीति है कि बैठो और उसे जानने का प्रयास करो।

ज्ञान एक प्रकाश

ज्ञान एक प्रकाश है। अन्धकार में हम झगड़ रहे थे। मानो रात्रि में हम जा रहे हैं, कोई व्यक्ति पीछे आ रहा है। हम समझते हैं कोई चोर, लुटेरा बदमाश होगा। प्रकाश में पहुँच देखते हैं कि यह तो अपना ही भाई है। इसी तरह यहाँ ज्ञान में कोई झगड़ा नहीं होगा। पूज्य गुरुदेव ने यह अवधारणा दी कि जिस विचार पर हो, जहाँ पर हो वहाँ से आगे चलो। आगे सब रास्ते एक होते हैं। जिस धर्म की आप बात करते हैं वह बाहर का धर्म है। बाहर से हम हिन्दू हैं, मुस्लिम हैं, सिक्ख हैं, ईसाई हैं लेकिन उस प्रकाश में सब एक होंगे। मनुष्य मात्र एक होगा, जीव मात्र एक होगा। सबके लिए सुन्दर विचार होगा। सब एक दूसरे की चिन्ता करेंगे। "सर्वेभवन्तु सुखिनः सर्वेसन्तु निरामया" कहने की बात नहीं होगी। अब हम उसके लिए विचार कर काम करेंगे। अध्यात्म ज्ञान मात्र कहता नहीं सुन्दर व्यवहार करता है।

सन्तों को आपने देखा है। पूज्य पण्डित जी महाराज के आपने दर्शन किये हैं। कितना सुन्दर व्यवहार था उनका हर एक के साथ। कल्पना नहीं कर सकता कोई—जैसे मेरे पिता हों, मेरे बड़े भाई हों। सन्त आत्मा होता है। हम भी आत्मायें हैं। वह प्रकाश में हैं हम भी प्रकाश में चले जायें। श्री गुरु महाराज ने अन्धकार से प्रकाश में, अज्ञान से ज्ञान में जाने की एक साधना सारे समाज को दी। जब यह अज्ञान के आवरण हट जायेंगे तब जीवन का रहस्य और ही दिखेगा। वहाँ पर मैं-मेरा, तू-तेरा नहीं रहेगा। आपने देखा है कि वह स्वयं नहीं पहनते, दूसरे को पहना कर प्रसन्न होते हैं। भूखे हैं, स्वयं भोजन नहीं करते, दूसरों को खिलाकर प्रसन्न होते हैं। क्योंकि आत्मा दो नहीं एक है। आत्मा में सन्तुष्टि है, आत्मा में पूर्णता है—वह सन्तुष्ट हो गया हम भी सन्तुष्ट हो गए। इस साधना से शान्ति मिलती है—टेन्शन, दुःख, दर्द, परेशानियाँ सब दूर हो जाते हैं—हमें दुखी नहीं कर पाते।

दो आवश्यक चीजें

हमें दो आवश्यक चीजें अपनानी हैं—एक

साधना और दूसरा स्वाध्याय। इनसे हमारे जीवन में निखार आ जायेगा। साधना हमारे गुरु महाराज की अमूल्य देन है। परमात्मा एक प्रकाश है। यह प्रकाश अन्दर जा मन को शुद्ध करता है। हमारे मन में काम है, क्रोध है, लोभ है, मोह है लेकिन साधना से फिर ये हमारे वश में हो जाते हैं—धीरे-धीरे विकार साफ हो जाते हैं। जीवन में एक सन्तुष्टि व एक सहजता आ जाती है। एक अजीब आनन्द मिलता है। कैसे व्यक्त करें? जैसे कोई व्यक्ति शरबत पी रहा हो। आप उससे पूछें कैसा है भाई? बहुत सुन्दर है, अच्छा है, मीठा है। वह पूछेगा—कैसा मीठा है? कोई शब्द नहीं। भाई, आप भी पीकर देखें। ऐसे ही जो आत्मा की अनुभूति होती है उसके लिए कोई शब्द नहीं।

स्वाध्याय दो होते हैं—एक तो अच्छे ग्रन्थों को पढ़ना और दूसरा अपने का अध्ययन करना। अपने का अध्ययन करना अति आवश्यक होता है। जब तक आप अपना अध्ययन नहीं करेंगे, पवित्रता नहीं आवेगी। हम अपने अध्ययन में आत्म निरीक्षण करें—मैं कहाँ पर हूँ, विचारों में कोई फर्क आया या नहीं, स्वभाव सुन्दर हो रहा है या नहीं। साधना करते-करते ५०-६० वर्ष हो गए—गिनने से कोई लाभ नहीं होगा। आत्म निरीक्षण में ढील न दें—बस, आपको सारे ही प्रश्नों का समाधान मिल जावेगा। जन-जन को व समग्र विश्व को प्यार, स्नेह देकर सबके साथ शान्ति से रहने की शक्ति व समझ भी मिल जावेगी। रामाश्रम सत्संग की साधना सरल है—सहज है, साथ ही अमोघ भी। श्री गुरु महाराज की साधना अपनायें और इस सबका अपने जीवन में प्रत्यक्ष प्रभाव देखें।



– आलोक किरणें –

संसार में रहने के लिए यदि सुख का विधान है तो संसार से छूटने और प्रभु चरणों में पहुँचने के लिए दुःख की व्यवस्था है। दुःख ही पल-पल श्री हरि का स्मरण कराता है।

× × ×

विपत्ति को सह लेने में अचरज नहीं है। अचरज है वैसी हालत में भी शान्त और आनन्दमग्न रहने में। और यही ईश्वर विश्वास का लक्षण है।

× × × ×

गुरु का निरन्तर चिन्तन ही उनका संग है और गुरु का संग ही वास्तव में ईश्वर का संग है।

—पूज्य पण्डित जी

ईश्वर प्राप्ति का मार्ग

—श्री राजे



आपको अगर कहीं जाना हो तो वहाँ का पता मालूम होना चाहिए, इसके लिये या तो आप स्वयं पता मालूम कीजिए या पूछ-पूछ कर पहुँचने की कोशिश कीजिये। पूछ-पूछ कर पहुँच तो जायेंगे पर मुश्किल होगी—दिक्कतें आयेंगी, हो सकता है आप जिस रास्ते पर जा रहे हैं, काफी दूर उस पर चलने के बाद, आपको पता चले कि आप उल्टे रास्ते जा रहे हैं—फिर लौट कर दूसरी तरफ चलना शुरू करना पड़ेगा, इसमें समय भी ज्यादा लगेगा।

एक दूसरा तरीका है कि किसी ऐसे व्यक्ति को साथ ले लें, जो उस रास्ते पर पहले जा चुका हो, जो उस रास्ते के उतार चढ़ाव, गड्ढों, खाई आदि से वाकिफ हो। चूँकि वह जानकार है, आपको आसानी से ले जायेगा और साथ ही आसान अथवा छोटे रास्तों से ले जायेगा।

संसार में आप देखिये, जो किसी विषय के आचार्य होते हैं—उनकी कोशिश होती है, कि वह विद्यार्थियों को आसान से आसान तरीके से पाठ्य (lesson) समझायें, जिससे विद्यार्थियों को समझने में कोई दिक्कत न हो। इसी तरह जो जानकार व्यक्ति है उसकी कोशिश होगी कि आपको आसान से आसान तरीके से, छोटे रास्ते से ले जाए—और आपको कम से कम परेशानी हो—इसमें समय भी कम लगेगा और दिक्कत भी कम होगी—आपको बस इतना करना होगा कि उसके पीछे-पीछे चलते चलिये, वह आपको आपकी मञ्जिल तक पहुँचा देगा। कुछ लोग जो यह कहते हैं कि हमें गुरु की आवश्यकता नहीं है, हम खुद ही रास्ता तय कर सकते हैं—वह भी कुछ हद तक ठीक है—वे जिस (Stage of Evolution) विकास की स्थिति पर हैं—उनके लिए वह ठीक है जैसे-जैसे अनुभव बढ़ेगा, अक्ल (Wisdom) बढ़ेगी वह समझ जायेगा हर काम अपने आप नहीं किया जा सकता। एक विख्यात आँखों का डाक्टर (जिसने हजारों आपरेशन किये हों) अपनी आँख का आपरेशन स्वयं नहीं कर सकता, दूसरे से ही कराना पड़ेगा। दूसरे से मदद लेनी पड़ेगी।

साधना मार्ग में एक मुश्किल जो साधकों के सामने आती है वह है—'संशय का समय-समय पर उठना'।—प्रश्न यह उठता है कि यह कैसे पता चले जो साधना हम कर रहे हैं वही ठीक है। प्रभावशाली (effective) है।—हमें ध्येय तक पहुँचा ही देगी।—जब आप दूसरों को उनकी (कोई दूसरी पद्धति से) पूजा व साधना करते देखते हैं, तो मन में यह संशय उत्पन्न होता है कि शायद उनकी (दूसरों की) साधना ज्यादा अच्छी है, ज्यादा महत्वपूर्ण है—शायद वह हमें हमारे अभीष्ट पद को जल्दी और आसानी से प्राप्त करा देगी।—तब आपको अपनी साधना पर (जो आप कर रहे हैं) पूरा विश्वास (confidence) नहीं

रहता, इसके लिए जरूरी है कि आप सम्बन्धित बातों को अच्छी तरह से समझिये।

भूमिका

हर चीज के दो पक्ष (aspects) होते हैं एक सिद्धान्तिक (theoretical) और दूसरा प्रायोगिक (practical)। सिद्धान्त (theory) तो हम जान लेते हैं, पर जब तक उसे सिद्धान्त (theory) का प्रायोगिक अनुभव (practicaly experience) न करें, हमें यथार्थ ज्ञान नहीं होगा। यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमें सिद्धान्त (theory) का प्रायोगिक (practically) अनुभव पर उतारना पड़ेगा। किताब पढ़ने से अथवा नक्शा देखने से पूरा ज्ञान नहीं हो पाता। मिसाल जो पू० पण्डित जी देते थे, वह यह है आपने नक्शे पर यह तो देख लिया कि ये गंगोत्री है। यहाँ से गंगा जी निकलती हैं। फिर यहाँ से नीचे आती हैं। यहाँ प्रयाग है। यह पटना है। यह कलकत्ता है। और फिर यह बंगाल की खाड़ी में जाकर गिर जाती है। यह सब ठीक है। आपको गंगाजी के पूरे मार्ग (course) के बारे में एक प्रकार का ज्ञान हो गया। कहाँ से वह निकलती हैं, और कहाँ-कहाँ से होती हुई आती हैं। परन्तु आपने गंगा जी की एक बूंद भी नहीं देखी, न स्पर्श की, न पीकर देखी, जिससे यह पता चले कि वह कितनी पवित्रता प्रदान करती हैं। यह तो वास्तविक अनुभव करके ही जानना होगा। इसी तरह अनेकों साधनाओं के बारे में आप सुनते हैं, परन्तु उनका व्यवहारिक ज्ञान अनुभव (practically) करने पर ही होता है।

विभिन्न साधनायें

देखिए, एक हमारी साधना है—और भी कई प्रकार की साधनायें है, यह समझने के लिए कि हमारी साधना ही सबसे उपयुक्त है हमारे लिए, यह किस दर्जे की है, इसके लिए हमें तुलनात्मक विवेचना करनी होगी। आप अन्य प्रकार की साधनाओं के बारे में, जब भी, जो कुछ भी सुनें पढ़ें, देखें, उसे एक जगह नोट करते चलें और फिर विषलेषण (analysis) कीजिये, कुछ साधनाएँ समानान्तर पाठ्यक्रम (parallel courses) के समान है। एक ही स्तर तक पहुँचने वाली है। इसे एक मिसाल से समझिये—मान लें आपने एम. ए. की डिग्री प्राप्त करने के लिए एक विषय चुना, कोई दूसरा दूसरे विषय चुन ले, तो कोई तीसरा और विषय ले ले, अगर आप यह सोचें कि शायद जो दूसरे पढ़ रहे हैं वही ठीक है मैं भी वही पढ़ूं, तभी एम. ए. की डिग्री मिलेगी—ऐसा नहीं है क्योंकि आपका और उनका विषय अलग-अलग होने पर भी अन्तिम स्तर तो एक जैसा ही होगा। सबको एम. ए. की डिग्री ही मिलेगी, तो बेहतर है कि आप अपना ही विषय पढ़ें। क्योंकि आपका विषय आपको वही हासिल करायेगा जो कि कोई दूसरा विषय किसी दूसरे को। यह पाठ्यक्रम (courses) समानान्तर हैं, एक ही स्तर (level) की सनद (degree) दिलायेंगे।

पुराने ऋषि लोग इसे इस तरह से समझाते थे कि मानो एक घर की छत पर जाने के लिए कई सीढ़ियाँ, कई तरफ से, लगी हो और हर सीढ़ी हमें उस घर की छत पर ले जाती है तो चाहे जिस भी सीढ़ी पर जाओ, आप छत पर ही पहुँचेंगे, तो बेहतर है कि आप जिस सीढ़ी पर चढ़ रहे हैं, उसी पर चढ़ते चलिए। धीरे-धीरे चढ़ते-चढ़ते ऊपर पहुँच जायेंगे। यदि आपने किसी दूसरे व्यक्ति को, किसी दूसरी सीढ़ी पर चढ़ते देख, यह

सोचा कि शायद उस सीढ़ी पर चढ़ना अधिक बेहतर होगा और अपनी सीढ़ी चढ़ते-चढ़ते छोड़कर, उस दूसरी सीढ़ी पर चढ़ने लगे और थोड़ी देर बाद किसी तीसरे व्यक्ति को किसी तीसरी सीढ़ी पर चढ़ते देखकर उन सीढ़ियों को बेहतर जानकर, इस दूसरी सीढ़ी से उतरकर, उस तीसरे सीढ़ी पर चढ़ने लगे, तो क्या होगा ? आप ऊपर कभी नहीं पहुँच पायेंगे, क्योंकि आप समूचा वक्त एक से दूसरी सीढ़ी को बदलने में ही गँवा देंगे, और अगर आप एक ही सीढ़ी पर चढ़ते चले गये, जिस पर आपने पहले चढ़ना शुरू किया था, तो अवश्य छत पर जल्द पहुँच जायेंगे।

एक दूसरा विचारणीय प्रश्न होता है समय का विभिन्न साधनाओं में अभीष्ट पद प्राप्त कराने हेतु समय का अन्तराल अलग-अलग होता है, अर्थात् प्रत्येक साधना की अपनी गति होती है, इसे एक मिसाल से समझिए—आपको कहीं दूर जाना है तो आप साइकिल से भी जा सकते हैं और कार से भी जा सकते हैं, चाहे जैसे जायें आप वहाँ तक पहुँच ही जायेंगे, अन्तर जो होगा वह समय का होगा। कार से आप जल्दी पहुँच जायेंगे, साइकिल से देर में पहुँचेंगे। इसी प्रकार साधना में आपको यह देखना है (समझना है) कि आपके पास जितना समय बाकी रह गया है उस समय में आपको अपने ध्येय तक पहुँचाने के लिए कौन सी साधना ठीक रहेगी। जो कम समय में आपको ध्येय तक पहुँचा दे। वही उपयुक्त मानी जायेगी।

साधना की पहुँच

अगली बात है "पहुँच"—इसे भी एक मिसाल से समझिये। आप एक जगह से दूसरी जगह जा रहे हैं मानिए आप कार पर जा रहे हैं, ठीक है—पर आगे अगर नदी आ जाती है और उस पर पुल नहीं है तो आप कार पर आगे नहीं जा पायेंगे, आपको कार छोड़कर उतरना पड़ेगा और नदी पार करने के लिए, नाव करनी पड़ेगी। अब चाहे नाव वह कितनी अच्छी, कितनी सुन्दर हो, चाहे हीरे जवाहरात से जड़ी नाव क्यों न हो, जब आप दूसरे किनारे पर पहुँचेंगे, तो आपको नाव छोड़नी पड़ेगी, क्योंकि जमीन आने पर अब नाव से आगे नहीं जा सकते। आपको फिर दूसरी सवारी या दूसरी कार में आगे जाना होगा। अतः आपको यह देखना होगा कि आखिर यह जो साधना आप कर रहे हैं, उसकी पहुँच कहाँ तक है और कहाँ इसे छोड़ना पड़ेगा।

इन बातों को ध्यान में रखते हुए अब नोट करिये निम्नलिखित साधनाएँ केवल प्राणमय कोश पार करा सकती हैं।

मन्त्र जाप, कीर्तन, मन्दिरों में जाना, आरती करना, तीर्थाटन, धार्मिक पुस्तकों का पाठ करना, स्काउट बनकर दूसरों की सेवा करना, धर्मशालाएँ व अस्पताल बनवाना (जहाँ कम से कम पैसे खर्च हों) हठयोग आसन, प्राणायाम आदि।

यह सब बहिरंग साधन कहलाते हैं और इनकी पहुँच केवल इतनी है कि ये साधक को मनोमय कोश के दरवाजे तक पहुँचा दें, आगे नहीं ले जा सकती। इसलिए यदि हम इस प्रकार की साधना विधियाँ किसी को करते देखें तो उनसे केवल इतना निष्कर्ष निकालें कि ये सब समानान्तर (parallel courses) पाठ्यक्रम हैं, परेशान होने की जरूरत नहीं है कि हम किसको करें, अपनी-अपनी रुचि के अनुसार इनमें से कोई भी साधना अपनायी जा

सकती है, देर सवेर प्राणमय कोश पार करा देगी।

इनके आगे जो साधनाएँ अपनानी पड़ेगी वो 'अन्तरंग साधन' कहलाती हैं, जिनमें मन को एकाग्र, सयमी अथवा निर्मल बनाना होता है, इन क्रियाओं को मुख्य रूप से "राजयोग" तथा 'उपासना' के नाम से जाना जाता है। अर्थात् मनोमय कोश की साधनाएँ निम्नलिखित है :—

भक्ति, मानसिक जाप (अजपाजाप) शब्दयोग, प्रकाशयोग व ध्यानयोग। जब इष्ट को अपने से बाहर स्थापित करके आराधना करते हैं तो वह 'भक्ति' के नाम से जानी जाती है, और जब इष्ट को अपने अन्तर में स्थापित करके साधना की जाती है तो उसे "उपासना" के नाम से जाना जाता है। ये सब आन्तरिक साधना हैं और इनमें से किसी एक के करने से 'मनोमयकोश' की अन्तिम सीमा तक (सुषुप्ति तक) पहुँचा जा सकता है। इनसे आगे ये साधन नहीं ले जा सकते। यहाँ तक अपने पुरुषार्थं का सहारा लिया जा सकता है। यदि आप इसमें से कोई भी साधना अपनाये हों, या किसी को करते देखें तो परेशान होने की जरूरत नहीं है कि किसकी साधना अच्छी और ऊँची है, सभी एक स्थान तक पहुँचायेंगे। अपनी-अपनी रुचि के अनुसार साधक कोई एक साधना पकड़ लेता हैं।

आगे का मार्ग अब गुरु कृपा के बगैर नहीं खुलता, क्योंकि सोया हुआ मनुष्य चाहे कुछ देखता रहे, वास्तव में चलता नहीं है, जब तक कोई उसे जगा न दे, उठा न दे और चलने के लिए सहारा न दे, तब तक आगे नहीं जा सकता। 'सुषुप्ति' अवस्था से निकल नहीं सकता, इस प्रकार पुराने साधकों के बदले गुरु की शक्ति व आशीर्वाद तथा सत्संग का सहारा लेना होता है जिससे विवेक जागृत होता है, तथा बुद्धि ऋतम्भरा बनती है, इन साधनाओं को "बुद्धियोग" तथा "द्रष्टायोग" कहा जाता है, सूक्ष्ममन, सूक्ष्मबुद्धि के द्वारा अनुभव प्राप्त करते-करते (दर्शन करते-करते) अर्थात् ज्ञान अर्जित करता है और सब कुछ जान लेने के बाद मन तथा बुद्धि शान्त होकर, सिमिट कर (समाहित होकर) बैठ जाती है। इन स्थितियों को समाधियों के नाम से जाना जाता है, जो आगे चलकर (सम्प्रज्ञात से उठकर असम्प्रज्ञात में होकर) शून्य तथा महाशून्य अवस्थाओं का दर्शन कराती है।

मन व बुद्धि नष्ट नहीं होते केवल, शान्त और चुप होकर बैठ जाते हैं।

ऊपर लिखित अवस्थाओं में (शुद्ध) तम प्रधान हो जाता है, यह भी ऐसी गहरी नींद की सी (जैसी) अवस्था होती है, जिसमें थोड़ा-थोड़ा आनन्द का आभास होता है।

यहाँ भी गुरु के सहारे की जरूरत होती है वरना यहाँ से भी ऊपर उठना अत्यन्त कठिन है, गुरु की आकर्षण शक्ति ही ऊपर खींच ले जाती है।

आगे की साधना 'आत्मयोग', 'प्रेमयोग' अथवा 'लययोग' के नाम से जानी जाती है जिसमें आत्मा अपने स्वरूप का प्रत्येक में दर्शन करती है। पुरुष और प्रकृति का मिलन होता है। कृष्ण का महारास है। सर्वत्र आनन्द, हर्ष, उल्लास तथा प्रकाश भरा हुआ दृष्टिगोचर होता है। यह ही माया की अन्तिम हद है। जहाँ तक पहुँचना है। और गुरु की कृपा के सहारे माया के बन्धन से निकल जाना है। इसीलिए कहा जाता है— "गुरु कृपा ही केवलम्" क्योंकि अपने पुरुषार्थ

की यहाँ न पहुँच है और न वह काम देता है।

इस तरह से आप समझगे कि नीचे से ऊपर आने वाली साधनाओं में अलग-अलग स्तर हैं और एक प्रकार की साधना को छोड़कर अन्य दूसरी साधना पकड़नी पड़ती है, प्रत्येक साधना की अपनी limitation है।

गुरु महाराज साहब ने जो हम सबों को साधना बतायी है वह इन सब साधनाओं से भिन्न है। ये सब साधनायें क्रमिक रूप से अन्नमय से प्राणमय में ले जाती हैं, प्राणमय से मनोमय (कोश) में ले जाती हैं, मनोमय से विज्ञानमय (कोश) में ले जाती है और विज्ञानमय से आनन्दमय में ले जाती हैं। परन्तु जो गुरु महाराज सा० की साधना है वह ऊपर से नीचे आदे की है "अवरोह मार्ग" है, गुरु अपनी शक्ति से सभी साधकों को सामने बिठाकर एकदम आनन्दमय कोश में ले जाते हैं, और वहाँ छोड़ देते हैं। साधक धीरे-धीरे उतरता हुआ नीचे आता है। यह दूसरी बात है कि वह विभिन्न स्थितियों को कितना देख पाता है, कितना समझ पाता है हर एक की grasp अलग-अलग होती है।

एक मिशाल लेकर इस विषय को समझिए, जैसे आपको एक ऊँचे पहाड़ पर चढ़ना हो, तो नीचे से धीरे-धीरे चढ़कर ऊपर पहुँचने का तरीका है जिसमें मेहनत, थकान लगेगी, कड़ी चढ़ाई पर हिम्मत भी टूटेगी, दूसरा मार्ग है यदि कोई हेलिकोप्टर में बिठाकर पहाड़ की चोटी पर ले जाकर वहाँ उतार दे, वहाँ से धीरे-धीरे उतरते हुए नीचे आ सकेंगे इससे चढ़ाई की थकान व मेहनत कुछ भी नहीं है, यह ऊपर से नीचे आदे का रास्ता हुआ। ऐसी ही गुरु महाराज जी की साधना है।

अब आप समझ जायेंगे कि साधनाओं में क्या फर्क है और इस तुलनात्मक विवेचन से आपके संशय भी दूर हो सकेंगे। जो आप साधना कर रहे हैं, वह अन्तिम पद पर पहिले पहुँचती है, यद्यपि यह बात एकदम समझ में नहीं आती। इस बात पर धीरे-धीरे मनन करिए।

भण्डारों में आकर देखिये, यह सत्य है अथवा नहीं।

शाश्वत शान्ति और आनन्द प्राप्त होना अन्तिम पद प्राप्त होने का जागृत प्रमाण है, जिसे आप खुली आँखों देखिये। और साधनाएँ आपको एक लम्बे अरसे के प्रयास के बाद भी उस स्थिति पर नहीं पहुँचा सकती, जिस पर आप गुरु कृपा से (बिना मेहनत के) कुछ क्षणों में पहुँच जाते हैं।

—:❀❀:—

❀ गरीब वह नहीं है, जिसके पास थोड़ा है; बल्कि वह है, जो अधिक की आकांक्षा करता है। —श्री दानियल

❀ प्रेम सब कुछ जीत लेता है। घृणा पर भी प्रेम से विजय प्राप्त होती है। —श्री रस्किन

भक्ति का स्वरूप

—श्री प्रभुदयाल शर्मा



"सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वां सर्वं पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ।।"

भक्त सुतीक्ष्ण जी कहते हैं—

"एक बानि करुना निधान की,
सो प्रिय जाके गति न आन की ।"

पुन: भगवान कृष्ण अपने भक्त को आश्वस्त करते हुए कहते हैं।

हे अर्जुन ! जो मेरे ही आश्रित भक्त सम्पूर्ण कर्मों को मुझ में अर्पण करके मुझ सगुण रूप परमात्मा को ही अनन्य भक्ति से निरन्तर चिन्तन करते हुए भजते हैं उन प्रेमी भक्तों का मैं शीघ्र ही मृत्युरूप संसार समुद्र से उद्धार करने वाला होता हूँ—

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः ।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ।।
तेषामहं समुद्धर्ता मृत्यु संसार सागरात् ।
भवामि वचिरात पार्थ मय्यावेशित चेतसाम् ।।

भक्ति से चित्त पिघल जाता है। उस पिघले हुए चित्त में भगवान के चरण कमल अंकित हो जाते हैं। जैसे पिघली हुई लाख में वस्तु की छाप पड़ जाती है। उसके बाद वह भक्त सभी वस्तुओं को भगवान स्वरूप देखने लगता है। ऐसा ही भाव 'भक्तिमकरन्द' में देखने को मिलता है।

भगवान के प्रति अनन्य प्रेम का नाम ही भक्ति है। प्रेम की पराकाष्ठा ही भक्ति है और प्रेम ही भक्ति का पूर्ण रूप है। जब आराधक और आराध्य, प्रेमी और प्रेमास्पद एक हो जायें और भक्त की सारी द्वैतभावना लुप्त हो जाय। उठते-बैठते, सोते-जागते सारी क्रियायें करते हुए सभी अवस्थाओं में जब भक्त भगवान के अतिरिक्त और कुछ न देखे तब वही तन्मयता परा भक्ति बन जाती है— 'सा परानुरक्तिरीश्वरे', 'जागत सोवत सपने....' 'रामहिं केवल प्रेम पियारा, जानि लेहु जो जाननि हारा ।।' भगवान की भक्ति के लिये ऊँच नीच, स्त्री-पुरुष, जाति, विद्या, रूप, कुल, धन और क्रिया का कोई भेद नहीं है क्योंकि भगवान सबके हैं—

**"स्वपच खवर खस जमन जड़ पांवर कोल किरात ।
राम कहत पावन परम होत भुवन विख्यात ।"**

भक्त तो अनन्य भाव से सतत् अपने उपास्य देव को ही देखता रहता है।

**"जहँ जहँ चालूँ करूँ परिकम्मा जो कछु करूँ सो पूजा ।
जब सोऊँ तब करूँ दण्डवत जानूँ देव न दूजा ।।"**

भक्त तो अपना सम्बन्ध अन्य किसी से न जोड़कर नित्य निरन्तर अखण्ड सम्बन्ध प्रभु के साथ ही जोड़ता रहता है और तब वे दयामय श्री हरि हमें आप ही अपना लेंगे जैसा कि अपने परम प्रिय भक्त अर्जुन से कहते हैं—

द्रुतचेतसि भक्तितो हरेर्जतु
नीवाङ्कृति पाद पंकजम् ।
सकलेषु विलोकते पुनर्भगवद्-
भावमसौ रसात्मकम् ।।

इसी प्रकार हृदय में भगवान की छाप पड़ जाने से भक्त सारे जगत को प्रभुमय देखने लगता है ।

भक्ति दो प्रकार की होती है ऐसा शास्त्रों का मत है । एक परा तथा दूसरी अपरा । अपरा भक्ति में कर्म आवश्यक है तथा सर्वसाधारण के लिये है तथा सरल भी है । अपरा में भक्त भगवान के गुणों का श्रवण, उनका कीर्तन, स्मरण, चरणों की सेवा, उनकी अर्चना तथा वन्दना करता है । अपने को दास समझता है, उनसे प्रीति स्थापित करता है और अन्त में अपने आपको उनके चरणों में अर्पण कर देता है आत्म निवेदन कर देता है—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनं ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ।।

ऐसी भक्ति कर्म प्रधान होती है । इससे भक्त का अन्तःकरण शुद्ध तथा निर्मल हो जाता है । पराभक्ति अपेक्षाकृत सूक्ष्म तथा गहन होती है । यह बुद्धिजन्य इसमें स्वभाविक प्रीति होती है । यह भगवान को आनन्दित करती रहती है । इसका अधिकारी सर्वसाधारण न होकर अर्जुन की तरह ज्ञानी ही होता है । पराभक्ति कर्म प्रधान न होकर ज्ञान प्रधान होती है । फिर भी इनमें किसी प्रकार का विरोध नहीं है ये दोनों एक दूसरे की पूरक ही हैं । अतः ईश्वर में परा (उत्कट) अनुरक्ति ही भक्ति है । पराभक्ति में अहैतुक, निष्काम तथा निरन्तर प्रेमभाव टपकता रहता है—

"अहेतुक्य व्यवहिता या भक्ति पुरुषोत्तमे ।"

ईश्वर से कुछ पाने की इच्छा से की गई भक्ति तो सकाम हो जाती है । यह तो निकृष्ट भक्ति मानी जाती है । भक्ति का सच्चा स्वरूप तो वह है उसमें कुछ लेने का भाव ही नहीं हो । वरन् उल्टे अपने प्राण तक अर्पण करने का भाव होना चाहिए । ऐसे चार प्रकार के भक्त माने गये हैं—

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोर्जुन ।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभः ।।
तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एक भक्तिर्विशिष्यते ।
प्रियो हि ज्ञानिनोत्यर्थं अहं स च मम प्रियः ।।

ऐसी भक्ति करने वाले चार प्रकार के मनुष्य होते हैं, तीन प्रकार के तो सकाम भक्त ही गिने जायेंगे, ज्ञानी भक्त ही बिना किसी कारण के केवल भगवान से स्वाभाविक नित्य निरन्तर प्रीति करने वाला होता है ।

आर्त भक्त धन वैभव का नाश होने पर अथवा शारीरिक कष्ट आने पर उनको दूर करने के लिए भगवान को पुकारता है परन्तु अर्थार्थी के समान वैभव या भोग का संग्रह नहीं करना चाहता है । अर्थार्थी भोग तथा ऐश्वर्यादि पदार्थों की इच्छा लेकर भगवान की भक्ति की ओर अग्रसर होता है उसके लिए भक्ति गौण तथा पदार्थ की प्राप्ति मुख्य होती है । क्योंकि वह पदार्थ प्राप्ति के लिए भगवान का भजन करता है भगवान के लिए नहीं । जिज्ञासु भक्त भगवान का तत्व जानने के लिए ही भगवान के ऊपर निर्भर करता है । साथ ही उसके हृदय में जन्म-मरण रूप सांसारिक दुखों से बचने की इच्छा भी होती है । परन्तु ज्ञानी भक्त सर्वदा निष्काम होता है । इसीलिए भगवान ने ज्ञानी को अपना आत्मा ही कहा है । ऐसे भक्तों के लिए भगवान स्वयं कहते हैं "मैं भक्त पद रज की इच्छा से सदा उन भक्तों के पीछे-पीछे घूमा करता हूं ।

जिससे उनकी चरण रज मेरे शरीर पर पड़े तथा मैं उसके द्वारा पवित्र हो जाऊँ। मैं सर्वदा भक्त के आधीन हूँ मुझ में तनिक भी स्वतन्त्रता नहीं है।" ऐसे ज्ञानी भक्तों के योग क्षेम का वहन स्वयं भगवान ही करते हैं।

ऐसी ही एक गाथा है ज्ञानी भक्त श्री माधवदास की है। वे बड़े ही धार्मिक तथा विद्वान गृहस्थ थे। स्त्री की मृत्यु के कारण विरक्त हो गये और सब कुछ छोड़कर जगन्नाथपुरी चले गये। वहाँ समुद्र के किनारे एकान्त स्थान में ध्यानमग्न हो गये। उस दशा में उन्हें शरीर का भी भान नहीं रहा। इस प्रकार उन्होंने कई दिन तक अन्न जल भी ग्रहण नहीं किया। भगवान द्रवित हो गये उन्होंने सुभद्रा जी से कहा 'हे सुभद्रे ! तुम उत्तम भोजन सामिग्री सोने के थाल में मेरे भक्त के पास पहुँचा आओ।' सुभद्रा जी थाली में बहुत सुन्दर व्यंजन लेकर पहुँचीं। वहाँ जाकर देखा कि भक्त ध्यान में मग्न है। अत: उन्होंने ध्यान को भंग करना उचित नहीं समझा और थाली वहीं रख दी। भक्त का जब ध्यान हटा तब उन्होंने सामने सोने के थाल में भोजन देखा। वे भगवान की दया से द्रवित हो गये। उनके नेत्रों से आनन्दाश्रु टपकने लगे। कुछ समय पश्चात् भोजन किया और फिर ध्यान में लग गये। प्रात:काल मन्दिर में सोने की एक थाली कम मिली, ढूंढ़ते-ढूंढ़ते लोग महात्मा जी के पास पहुँचे, देखा थाली उनके पास रक्खी है। उन्हें चोर समझकर बेंतों से पिटाई की। भक्त माधवदास ने हँसते-हँसते बेंतों की चोट सह ली परन्तु बेंतों की सारी चोट तो भगवान स्वयं सह रहे थे। रात्रि में पुजारी ने देखा कि बेंतों के निशान भगवान के श्री विग्रह के ऊपर उभर रहे हैं और वे कह रहे हैं मेरे भक्त पर जो बेंतों से मार पड़ी है वह मैंने अपने ऊपर ले ली है यदि तुम लोग बचना चाहते हो तो मेरे भक्त से क्षमा याचना करो। पुजारी भक्त के पास गया, भक्त ने क्षमा कर दिया।

श्री राधा जी अपनी सखी ललिता जी से कहती हैं, हे सखि यदि भगवान में मेरा मन पूर्णतया अनुरक्त है तो प्रतिपल भगवान ही मेरे आश्रय हों मेरी दृष्टि उन्हीं की ओर लगी रहे।

पंचत्व तनुरेत भूतनिवहाः स्वांशे विशन्तु स्फुटं।
धातारं प्रणिपत्य हन्त शिरसा तत्रापि याचे वरम॥
तद्वापीषु पयस्तदीय मुकुरे ज्योतिस्तमीयाङ्गण।
व्योम्नि व्योम तदीय वर्त्मनि धरा तत्तालवृन्तेनिलः॥

हे सखि राधा जी पुन: सखी से कहती है 'यदि श्रीकृष्ण लौटकर ब्रज में नहीं आते तो निश्चय ही मैं उनको इस जीवन में नहीं पाऊँगी। अत: इतना कष्ट उठाकर इस शरीर की रक्षा करने का कोई प्रयोजन नहीं है। अब यह शरीर भी चला जाय और पंचतत्वों को प्राप्त हो जाय। परन्तु मैं फिर उनसे यही प्रार्थना करती हूँ कि मेरे शरीर के पाँचों भूत प्रियतम श्रीकृष्ण के प्रति समर्पित हो जायें—जलतत्व उस जलाशय में जा मिले जिसमें वे स्नान करते हों। तेज तत्व उस दर्पण में जिसमें वह अपना सुन्दर मुखड़ा देखते हों। आकाश तत्व उस आँगन के आकाश में चला जाय जहाँ श्रीकृष्ण क्रीड़ा करते हों। पृथ्वी तत्व उस धरा खण्ड में जा मिले जिस पर वे चलते फिरते हों तथा वायु तत्व उस ताड़ के पंखे की हवा में समा जाय जो प्रियतम श्रीकृष्ण को हवा देता हो।' यह है भक्त की कामना यह भाव समुद्र अगाध अनन्त है इसका वर्णन करके पार पाना असम्भव है।

'सुखी मीन जे नीर अगाधा,
जिमि हरि सरन न एकउ बाधा।'

'कागद लिखें सो कागदी, कै व्योहारी जीव ।
आतम अक्षर का लिखूं, जित देखूं तित पीव ।।'

—कबीर

जब जीव को यह दशा प्राप्त हो जाती है तो वह अपने को अपने इष्ट में ही लय कर देता है। यही अन्तिम पद जहां भक्त भगवान में समा जाता है। यही अन्तिम पद माँ मीरा को प्राप्त हुआ था जब अपने इष्ट में ही समा गई थीं।

श्री गुरु महाराज जी ने लिखा है 'शिष्य को गुरु खोजने की जरूरत नहीं होती, वह घर बैठे ही आ जाते हैं, शिष्य में योग्यता होनी चाहिए। योग्य शिष्य संसार में कम मिलते हैं और मिल जाने पर गुरु उससे कुछ दुराव भी नहीं करता है वह अपनी सारी आध्यात्मिक सम्पत्ति उसे अर्पण कर देता है।'



लखनऊ भण्डारे पर :—

'साधन', सत्संग और श्री विरल जी

—श्री डॉ० महेन्द्रनाथ राय



विश्व में प्रकाशित होने वाली अध्यात्म पत्रिकाओं में 'साधन' का एक विशिष्ट स्थान है। उसका कारण यह है कि इसका संरक्षण व सम्पादन इस विद्या के अनुभवी समर्थ सन्तों के हाथों में प्रारम्भ से ही रहा है। परम पूज्य श्री विरल जी उसी क्रम की एक— कड़ी थे व लखनऊ भण्डारे से प्रारम्भ से ही जुड़े थे एक प्रकाश दीप की तरह। —सम्पादक

रामाश्रम सत्संग के एकमात्र पत्र 'साधन' के यशस्वी सम्पादक, अध्यात्मधन के धनी श्री ओम प्रकाश 'विरल' का देहावसान इस सत्संग परिवार की अपूरणीय क्षति है। ध्यातव्य है कि इस 'पत्र' की परिकल्पना परम पूज्य स्वर्गीय डा० चतुर्भुज सहाय जी के उर्बर मस्तिष्क की उपज थी और इस पत्र के जरिए भारत ही नहीं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के बहुत सारे साधक अपनी आध्यात्मिक तृषा को शान्त करते हुए इस सत्संग को ओर उन्मुख हुए थे। अध्यात्म विद्या और आन्तरिक साधना को केन्द्र में रखकर निकलने वाले भारत के विभिन्न आध्यात्मिक पत्रों में साधन का वैशिष्य अध्याम विद्या के जिज्ञासुओं से छिपा नहीं है। परम पूज्य, समर्थ सन्त, डाक्टर साहब आजीवन उस पत्र के जरिए आध्यात्मिक जागरण की चेतना लोकमंगल को दृष्टि में रखकर सामान्य जन के भीतर जाग्रत करते रहे और जीवन के परम पुनीत लक्ष्य का बोध कराते रहे। उनके गोलोकधाम के पश्चात् इस पत्र के प्रचार-प्रसार का गुरुतर भार परम पूज्य बड़े भैय्या डॉ० बृजेन्द्र कुमार, हेमेन्द्र भाई साहब, और भरत सदृश व्यक्तित्व के धनी परम पूज्य पण्डित जी ने उठाया और इन सबके निर्देश का व्यावहारिक प्रतिपादन सफलतम रूप में स्वर्गीय विरल जी ने किया।

विरल जी एकान्त रूप से इस पत्र के लिये समर्पित थे। साधकों को स्मरण होगा कि वे आरम्भ से ही सत्संग समारोहों में अपनी गुरुजन परम्परा के साथ छायावत लगे रहे। गुरुजनों के निर्देश पर जब-जब उन्होंने सत्संगियों को सम्बोधित किया तो हमेशा यही लगा कि जैसे प्रेम की अमृत वर्षा हो रही हो। उनके उद्‌बोधन क्या थे मानो उस सत्संग प्रणाली के वास्तविक मर्म और अभिप्राय को सरल-सुबोध और हृदयग्राही ढंग से खोलने के साधु उपक्रम ही थे। उनकी वक्तृता में इतनी सरसता, मार्मिकता और भक्त-हृदय की विह्वलता

समाहित होती थी कि स्रोता साधक सहज ही ध्यान की प्रशस्त शुरूआत पा जाते थे। 'साधन' के मार्मिक आलेखों के माध्यम कोई न कोई हार्दिक उद्बोधन विरल जी का 'साधन' के प्रत्येक अङ्क में निश्चित रूप से होता था और इससे रूबरू होने की विकलता 'साधन' के प्रत्येक पाठक के मन में हमेशा रहती थी। विरल जी की भावदशा, विचार-प्रणाली और मन्तव्य हमेशा उनके पाठक को उदात्त साधनात्मक कक्षा में उपस्थापित कर देते थे।

गुरु कृपा के स्मरण से, उद्बोधनों में उनकी वाणी ही नहीं लरजती थी उनकी भाषा—शैली भी कम्पित होती प्रतीत होती थी। उनके उद्बोधनों और आलेखों के साथ साधकों की सहभागिता हमेशा उन्हें कृतार्थता की अनुभूति से गुजारती थी। वे परम पूज्य डॉ० साहब की कृपा और अपनी अकिंचनता की चर्चा कर रहे हों, परम वत्सला जिया माँ की अहेतुक कारुणिकता का स्मरण कर रहे हों, परम सन्त बड़े भंय्या के समुद्रवत गाम्भीर्य और कैलाशवत ऊँचाई की स्मृति दिला रहे हों अथवा परम भागवत पंडित जी के साधु स्वभाव के उद्घाटन में तल्लीन हों—प्रत्येक अवसर पर उनकी वाणी और लेखन शैली का चारुत्व उत्कर्ष को प्राप्त होता था। उनके लेख अक्सर हमारे भीतर गोपीभाव को जगा देते थे और गुरु महाराज योगेश्वर कृष्ण के सौन्दर्य विधान की आकर्षक भावभंगिमा से तद्रूप हो जाते थे। विरल जी को हम सुन रहे हों या उनके लेखों से गुजर रहे हों—सर्वत्र गुरु महाराज की अशेष कृपालुता और अपनी अपात्रता की चर्चा करते रहते थे। उन्होंने जीवन का चरम पुरुषार्थ गुरुनिष्ठा को माना था। वे अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व में परम धार्मिक व्यक्तित्व थे। उनके दृष्टिकोण को उनकी निम्नांकित पंक्तियां चरितार्थ करती हैं—"सत्संगों में बैठने पर एक अनिर्वचनीय अवस्था कभी-कभी गुरु कृपा से आ जाती है—जहाँ कुछ कहते नहीं बनता, कोई विषय पकड़ते नहीं बनता।........ऐसे कृपालु गुरु के जिसने दर्शन किए हों, उनकी आँखों में फिर दूसरी मूरत समा ही नहीं सकती। मगर आश्चर्य है कि फिर भी तलाश जारी है। जिन गोपियों के लिए कहा जाता है कि उनकी आँखों में काजल देने की जगह तक नहीं थी, क्योंकि उनकी आंखों में श्याम समाये हुए थे।........ आन्तरिकता इतनी थी कि जो गोपियाँ को देख लेता था, उसे ऐसा लगता था कि वह गोपियों को नहीं, बल्कि कृष्ण को ही देख रहा हो एवं जिसको गोपियाँ देखती थीं उसे ऐसा लगता मानों वे अपने कृष्ण को ही देख रही हों। ऐसा अद्वैत मनुष्य को सत्संग एवं साधना के द्वारा ही प्राप्त होता है।.... वास्तव में देखा जाये तो सत्संग न तो लोगों का समूह मात्र है, न ध्यान योग की कोई क्रिया। आन्तरिक सत्संग तो एक अवस्था—विशेष है, रस विशेष है, चलता फिरता तीर्थराज है, जहाँ किसी की कृपा सतत् बरसती रहती है। इस कृपा को प्राप्त करने के लिये हम अपना हृदय उनकी ओर खोल दें—यही साधना है।" ऐसे बड़भागी स्वयं विरल जी थे। वे आजन्म गुरु के बन कर जीते रहे। ऐसे महापुरुष को हम सब सत्संगी भाइयों का शत-शत प्रणाम।



❀ सेवा ही धर्म है और सेवा में ही ईश्वर का साक्षात्कार है।

—महात्मा गांधी

सूफीमत और हमारे उपनिषद्

—श्री डॉ० जे० एस० त्यागी

मुख्य विषय पर चर्चा से पहिले सूफी शब्द तथा सूफीमत के संक्षिप्त परिचय हेतु कुछ समझ लेना उपयुक्त होगा।

सूफी शब्द की परिभाषाओं की एक बहुत लम्बी-चौड़ी सूची है। लगभग सन् १२३० ई० में एक दार्शनिक श्री फरीदुद्दीन अत्तार ने सूफी सन्तों के जीवन सम्बन्धी अपनी पुस्तक "तजार्करातुल औलिया" में इस प्रकार की सत्तर परिभाषाओं का जिक्र किया है। इन सभी परिभाषाओं से एक बात तो निर्विवाद सिद्ध हो जाती है कि लोगों में साधारणतः सूफी सन्तों के प्रति एक आदर और सम्मान का भाव था। ये साधक अत्यन्त उदार थे और धार्मिक तथा साम्प्रदायिक बन्धनों के प्रति उदासीन से ही रहते थे। अबूनसर अल-सर्राज ने अपनी 'पुस्तक किताब अल-लुमा' में सूफी शब्द पर विचार करते हुए बताया है कि सूफी शब्द अरबी के 'सूफ' शब्द से निकला है जिसका अर्थ 'ऊन' है; इस व्युत्पत्ति को ठीक मानने की गवाही देते हुए अल-सर्राज ने कहा कि ऊन का व्यवहार पैगम्बर, सन्त तथा साधक करते आये हैं। इसलिये ऊन का वस्त्र धारण कर एकान्त जीवन बिताने वाले साधकों के जीवन को ध्यान में रख कर सम्भवतः यह नाम रख लिया गया है। इस्लाम की प्रथम दो शताब्दियों में आमतौर पर लोग ऊनी वस्त्रों का ही व्यवहार करते थे। 'सूफ' से 'सूफी' शब्द बना। इसको मानने वाले अधिकांश हैं। एक पाश्चात्य दार्शनिक ब्राऊन भी इसी मत को मानते हैं। उनका कहना है कि पर्सिया में इन रहस्यवादी साधकों को "पश्मीना-पूश" (ऊन पहनने वाला) कहा गया है।

और भी कई प्रकार से सूफी शब्द की व्युत्पत्ति पर विचार किया गया है। 'सफा' (पवित्रता) शब्द से सूफी शब्द का निकलना भी कई लोग मानते हैं। कई लोगों ने व्याकरण की दृष्टि से इस मत के प्रति अपना विरोध प्रकट किया है। उनका कहना है कि अगर 'सफा' शब्द को स्वीकार किया जाय तो उससे 'सूफी' नहीं बल्कि 'सफवी' शब्द बनेगा। इसी प्रकार अनेक मत और मतान्तर इस शब्द के सम्बन्ध में देखने को मिलते हैं।

इस शब्द और मत के आविर्भाव को लेकर भी अनेक मत-मतान्तर हैं। सबसे पहले इस शब्द को अपने नाम से जोड़ने वाला कूफा अल हाशिम था। यह समय सन् ७८० ई० के आस पास का था। प्रारम्भ में यह शब्द व्यक्तियों के नाम से जुड़ा मिलता है परन्तु अर्ध शताब्दी के भीतर ही इसका प्रयोग सम्पूर्ण इराक के रहस्यवादी साधकों के लिये होने लगा और दो सौ वर्ष के बीतने पर प्रायः सभी मुस्लिम रहस्यवादी साधकों के लिये इसका उपयोग होने लगा।

इस मत के आविर्भाव को लेकर भी कम मत-भेद नहीं हैं। सम्भव है कि यह रहस्यवाद जिसमें परम सत्ता की उपलब्धि प्रकृति के सभी व्यापारों में साधक को होती है, साधकों का स्वयम् का अनुभवगम्य सत्य हो और इस्लाम धर्म ही इसका मूल हो। यद्यपि सूफियों का एकेश्वरवाद इस्लाम के एकेश्वरवाद से पूरी तरह मेल नहीं खाता फिर भी यह कहना कि कुरान में यह बात नहीं पाई जाती अनुचित ही होगा। 'अल्लाह के सिवाय सारी वस्तुएँ हालिक (नाशवान) हैं' (कुल्लो नफशीन हालिकुन इल्ला वज्जे हू) अथवा 'जिस ओर भी तुम दृष्टि फेरो अल्लाह का जलवा नजर आयेगा' (फाएनमा तब्ल्लू फसमा वज हिल्ला)। फिर भी इस्लाम जैसी कट्टरता सूफियों में नहीं पाई जाती।

यदि हम सूफियों द्वारा प्रतिपादित परमात्मा, आत्मा, सृष्टि रहस्य सम्बन्धी सिद्धान्त, सूफियों का प्रेम तत्व, सूफियों का रहस्यवाद और सूफी मत के विकास जैसे विषयों पर गम्भीरतापूर्वक विचार करें तो एक बात तो साफ नजर आती है कि सूफीमत का सनातन-पन्थी इस्लाम के साथ मतैक्य नहीं है; परन्तु इसके साथ-साथ एक और बात साफ होकर सामने आती है कि सूफी साधक मूलतः इस्लाम के अनुयायी थे और वक्त जरूरत वे इस्लाम की अपनी आँखों से ओझल नहीं होने देते थे। सनातन-पन्थी इस्लाम का सूफीमत के साथ मतैक्य न होने के बाद भी इस्लाम ने सूफीमत को स्वीकार कर लिया परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि सनातन-पन्थी इस्लाम ने अपने सिद्धान्तों को छोड़ कर सूफीमत को अपना लिया हो।

सूफीमत में परमात्मा के प्रति जिस प्रेम और मिलन की बात कही जाती है वह सनातन-पन्थी इस्लाम के विरुद्ध है। सनातन-पन्थी इस्लाम बाह्याचार पर अधिक जोर देता है। नमाज, हज, रोजा, जकात आदि को सनातन-पन्थी इस्लाम प्रत्येक मुसलमान के लिये आवश्यक मानता है। सूफी इन्हें दूसरा ही रूप देते हैं अथवा इन बाह्याचारों की आवश्यकता नहीं स्वीकार करते। मुसलमान (विश्वासी) तथा काफिर (अविश्वासी) के भेद पर सनातन-पन्थी इस्लाम अधिक जोर देता है। सूफियों में उदारता है, वे इस भेद को स्वीकार नहीं करते। सूफियों के लिए 'जेहाद' का अर्थ अपनी बुराइयों से युद्ध करने का है। सूफीमत का गुरु-वाद सनातन-पन्थी इस्लाम को स्वीकार नहीं है।

परमात्मा के स्वरूप को लेकर सनातन-पन्थी इस्लाम और सूफीमत में बहुत बड़ा भेद है। सनातन-पन्थी इस्लाम को यह कभी भी मन्जूर नहीं है कि परमात्मा के साथ 'एकमेव' हुआ जा सकता है अथवा उसके और मनुष्य के बीच प्रेमी-प्रियतम का सम्बन्ध हो सकता है। सूफी परमात्मा के सिवाए किसी अन्य सत्ता को स्वीकार नहीं करते। उसे पाने के लिये वे प्रेम का सहारा लेते हैं और इसी व्याकुलता में वे दीवाने बने रहते हैं। उनके लिए परमात्मा परम् प्रियतम है। जिसके सौन्दर्य और विभूति पर सूफी साधक अपने को न्योछावर कर देता है। परमात्मा और मनुष्य के बीच रागात्मक सम्बन्ध सूफीमत की विशेषता है। सूफी कहता है कि वह परमात्मा को पा सकता है, उसके साथ अन्तरंग हो सकता है अथवा उसके साथ एकमेव हो सकता है। सनातन-पन्थी मुसलमान इसको स्वीकार नहीं करता। वह यह मानता है कि परमात्मा और आत्मा के बीच इस प्रकार का घनिष्ठ सम्बन्ध हो ही नहीं सकता।

अगर हम भारतीय विचारधारा के प्रकाश

में सूफीमत का विवेचन करें तो मोटे तौर पर यह बात उभर कर सामने आती है कि सूफियों की विभिन्न विचारधाराओं में कितनी ऐसी हैं जिनका साम्य अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद आदि के साथ है। वहदतुल वुजूद के सिद्धान्त को मानने वाले यह कहते हैं कि सम्पूर्ण सृष्टि का उद्गम एक ही है और वह उसी में लय हो जाती है। एकमात्र सत्ता केवल परमात्मा ही है और दीखने वाला जगत उसकी अभिव्यक्ति मात्र है। इस मत के मानने वाले सूफी कुरान की इस आयत से अपने मत का प्रतिपादन करते हैं, "इन्ना लिल्लाह व इन्ना इलैहे राजयून" अर्थात् हम लोग परमात्मा से उत्पन्न हुए हैं और परमात्मा में ही लौट जायेंगे। इसकी तुलना तैतिरीयोपनिषद्, भृगुवल्ली प्रथम अनुवाक के मन्त्र से कर सकते हैं, "यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रन्त्यभि संविशन्ति। तद्वि जिज्ञास्व तद् ब्रह्मेति" अर्थात् यह ये सब प्रत्यक्ष दीखने वाले प्राणी जिससे उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होकर जिसके सहारे जीवित रहते हैं तथा अन्त में इस लोक से प्रयाण करते हुये जिसमें प्रवेश करते हैं उसको तत्त्व से जानने की इच्छा कर, वही ब्रह्म है। मतालिबे रशीदी में एक स्थान पर कहा गया है कि, 'क्या ही वर्णहीन सत्ता है जो असंख्य वर्णों में प्रकट होती है, क्या ही रूपहीन सत्ता है जो दस सहस्र रूपों में प्रकट होती है। इसकी तुलना श्वेताश्वतर उपनिषद् के इस मन्त्र से की जा सकती है।

> य एकोऽवर्णो बहुधा शक्ति योगाद्,
> वर्णाननेकान्नि हितार्थो दधाति।
> विचैति चान्ते विश्वमादौ स देवः,
> स नो बुद्धया शुभया संयुनक्तु॥

अर्थात् जो रङ्ग रूप आदि रहित होकर भी छिपे हुए प्रयोजन वाला होने के कारण विविध शक्तियों के सम्बन्ध से सृष्टि के आदि में अनेक रूप-रङ्ग धारण कर लेता है तथा अन्त में यह सम्पूर्ण विश्व जिसमें विलीन हो जाता है वह परमदेव (परमात्मा) एक और अद्वितीय है। वह हम लोगों को शुभ बुद्धि से संयुक्त करे।

भारतीय सन्तमत और सूफीमत में कितनी अधिक समानता है, यह बात उभर कर साफ नज़र आ जायेगी अगर हम निम्न शब्दावलियों पर गौर करें। ये शब्दावलियाँ उन चार विभिन्न स्थितियों के लिये प्रयोग होती हैं जिनसे होकर (क्रमशः एक के बाद दूसरी से) साधक को गुजरना होता है तब वह उस परम सत्ता अर्थात् परमेश्वर के साथ एकमेव होता है। ईश्वरमुखी होकर ईश्वर को प्राप्त करने के मार्ग की प्रथम स्थिति को सन्तमत में 'गुरु-प्राणिधान' कहा गया है। सूफी इस पहली मञ्जिल को 'फनाफिलशेख' के नाम से कहते हैं। जिस प्रकार सन्तमत साधक गुरु के प्रति सम्पूर्ण समर्पण कर देता है उसी प्रकार सूफी साधक अपने शेख अथवा पीर में फना हो जाता है। सन्तों की दूसरी स्थिति को 'ईश्वर-प्राणिधान' के नाम से जाना जाता है अर्थात् ईश्वर (जो गुरु के रूप में दिखाई देने लगता है) के प्रति पूर्ण समर्पण। सूफी साधक इस दूसरी मञ्जिल को 'फनाफिल्लाह' के नाम से जानते हैं अर्थात् अपने वुजूद को अल्लाह में फना कर देते हैं। सन्तों की तीसरी स्थिति 'तत्त्वमसि' अर्थात् जो तू है वही मैं हूँ, मैं तेरा ही अंश हूँ, तेरी ही तरह अविनाशी हूँ। सूफी इसको 'इन्नलहक' के नाम से कहते हैं। सन्तों और सूफियों की चौथी और आखिरी स्थितियाँ क्रमशः 'अहम्ब्रह्मास्मि' और 'अनलहक' के नाम से जानी जाती है। तीसरी स्थिति में द्वैत की जो भावना रहती है (तू और मैं) वह यहाँ

चौथी स्थिति में आकर समाप्त हो जाती है। यह ईश्वर अर्थात् अल्लाह के साथ अन्तरङ्गता की चरमसीमा है। यही साधक का चरम लक्ष्य है। एक महान सूफी सन्त मौलाना रूमी ने कहा है।

सर बरहना नेस्तम दारम कुलाहे चार तर्क।
तर्क दुनिया, तर्क उकबा, तर्क मोला, तर्क तर्क ॥

अर्थात् मैं नंगे सर नहीं हूँ। मेरा सर चार तर्कों (त्यागों) की टोपियों का घर है। मेरा पहिला त्याग संसार का त्याग था, दूसरा मेरा त्याग कर्म-काण्ड अध्यात्म अर्थात् बाह्याचार का था। तीसरी स्थिति में जब मुझे अल्लाह के अपने भीतर ही होने का अहसास हुआ तो मैंने उस ख्याल को भी तर्क कर दिया और अब मैं उस चौथी स्थिति में हूँ जहाँ मैंने तर्क के ख्याल को भी तर्क कर दिया। यही 'अहम्ब्रह्मास्मि' अर्थात् 'अनलहक' की स्थिति है।

मार्ग अलग-अलग होने पर भी सब का मालिक व लक्ष्य एक ही है।

॥ ओ३म् शम् ॥



कोई क्या जाने इस मन की

—सन्त श्री विरल जी

कोई क्या जाने इस मन की,
क्यों यह रोया करता है।
दीप जला कर वे अपने को,
नित्य बुलाया करते हैं ॥

तुम, यह कहलो फूल चढ़ाकर,
उसे रिझाया करते हैं।
जिसकी एक अदा पर निशदिन,
सागर गर्जन करता है ॥

जिसकी एक दृष्टि पाने को,
मेघ उमड़ते रहते हैं।
जिसके एक स्पर्श को आतुर,
निर्झर रोया करते हैं ॥

कोई है जीवन का साथी,
जिसे पुकारा करते हैं।
कोई हैं जिसकी बाँहों में,
बंध जाने को कहते हैं ॥

कोई है अपना अपने से,
दूर पास भी रहता है।
कोई है जो चुप हो जाता,
कभी बहुत कुछ कहता है ॥

उसको सुनने, उसे सुनाने,
आँसू आया करते हैं।
बिना बुलाए भी आ जाता,
उस पर रोया करते हैं ॥

धर्म और अध्यात्म

—श्री डा० विजय कुमार मिश्र

जहाँ से धर्म का अन्त होता है वहीं से अध्यात्म का प्रारम्भ होता है। धर्म बहुत कुछ रूढ़ियों से घिरा होता है। अध्यात्म प्रगतिवादी है। धर्म में जाने-अनजाने ढकोसला आ ही जाता है। अध्यात्म में चैतन्यता की गहराई है। धर्म बाह्य है अध्यात्म आन्तरिक। मानवता की सबसे बड़ी आवश्यकता है नैतिकता। नैतिकता की उपलब्धि धर्म से हो न हो पर अध्यात्म से अवश्य होती है। यह कोई जरूरी नहीं है कि हर धार्मिक व्यक्ति आध्यात्मिक हो पर यह निश्चय है कि हर आध्यात्मिक व्यक्ति नैतिक और धार्मिक अवश्य होगा। यही बात है कि गीता में सभी धर्मों को त्यागकर अध्यात्म में ही अवस्थित होने का स्पष्ट निर्देश है।

धर्म परिवर्तनशील है। उसका स्वरूप सदा बदलता रहता है। धर्म—देश, काल, परिस्थिति सापेक्ष होता है। अध्यात्म एक रसमय चैतन्य प्रकाश है। धर्म में गुणों का वैषम्य हो सकता है। अध्यात्म में तीनों गुणों को समत्व में ही रखना है। व्यवहार में परमार्थ और परमार्थ में व्यवहार सच्ची व सरल आध्यात्मिकता है। धर्म में कामना का पुट ज्यादा है जब कि अध्यात्म में निष्कामता का समादर है। धर्म—जन्म, संस्कार, समाज सापेक्ष है जब कि अध्यात्म कठिन आत्मानुशासन समन्वित आन्तरिक गहराई की व्यक्तिगत खोज है। इसमें सहायक समर्थ गुरु की शक्ति होती है जब कि धर्म पण्डे, पुरोहितों, पादरियों, उपदेशकों, मौलवियों के पुस्तकीय ज्ञान पर आधारित होता है। महर्षि श्री अरविन्द कहते हैं—

"धर्म सदैव अपूर्ण रहता है क्योंकि वह एक व्यक्ति की आध्यात्मिकता का उसके उन प्रयासों के साथ मिश्रण होता है जो उसकी अपनी निम्नतर प्रकृति को अज्ञानता से उदात्त बनाने की कोशिश में उसमें आ जाते हैं।"

ब्रह्मलीन परमसन्त श्री पं० मिहीलाल जी लिखते हैं—"मजहब किसी को ऊँचा नहीं उठा सकता, सम्प्रदाय कभी ईश्वर दर्शन नहीं करा सकता। अध्यात्म में कोई मत और मजहब काम नहीं आता। इसमें काम आती है केवल अन्तःकरण की शुद्धि।"

अन्तःकरण की शुद्धि होती है आन्तरिक सत्संग से, साधना, सेवा और स्वाध्याय से। स्वाध्याय में भी अपना अध्ययन—आत्म निरीक्षण। पुस्तक अध्ययन, पठन-पाठन ही अलम् नहीं—यह बात ध्यान देने की है।

विज्ञान के ज्ञान की बात

विज्ञान और अध्यात्म दोनों ही सत्य के अन्वेषक हैं। विज्ञान उस चरम शक्ति को—परम सत्ता को अभी बाहर तत्वों में खोज रहा है जब कि अध्यात्म में उसे पा लिया गया है—अनुभव कर लिया गया है। विज्ञान उसे अपनी प्रयोगशाला में उसका साक्षात्कार अपने नित-नूतन प्रयोगों के

माध्यम से कर लेना चाहता है परन्तु अध्यात्म के अन्वेषी पथिक अपने अन्दर ही अन्तःकरण के उपकरणों की मदद से और आगे उनसे भी पार जा उसे पा लेता है।

विज्ञान परमाणु (Atom) को विखण्डित कर जैसे ही अन्दर झांका तो वह कणों के जंजाल में पड़ ऐसे चकराया जैसे अध्यात्म पथ का राही माया के चक्कर में चकराता है। सत्, रज व तम तीनों गुणों व माया के परिवार मोह, काम, क्रोध आदि में भ्रमित हो भटक कर कहीं न कहीं अटक जाता है वैसे ही विज्ञान आटम (Atom) के विखण्डन के बाद इलेक्ट्रान, न्यूट्रान और प्रोटान के बाद लेप्टान, हैड्रान, मेआन या फिर इलेक्ट्रान, म्युआन और टाउआन जैसे मूल कणों में उलझ गया। ऐटम के अन्दर प्रोटान तो अभी भेदा ही नहीं गया।

जीव विद्या के वैज्ञानिकों ने भेड़ के सूक्ष्म तन्तु से भेड़ बना आत्मदर्शी ऋषियों व वर्तमान युग के सन्तों के इस सत्य दर्शन को ही आंशिक रूप से प्रमाणित किया है कि यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जीवों से ठसाठस भरा है कहीं भी तिल रखने को भी जगह खाली नहीं।

विज्ञान की दिशा ठीक है। सत्य को खोजते-खोजते उस चरम सत्य को विज्ञान जिस दिन पा लेगा वह भी अध्यात्म-विज्ञान बन जावेगा। विज्ञान और अध्यात्म एक दूसरे का आलिंगन कर विश्व को और भी सुन्दर बनाने के लिए साथ-साथ अग्रसर होंगे। आइन्स्टाइन ने कहा है "भौतिक विश्व की वास्तविकता का यथार्थ बोध हमें केवल विशुद्ध चिन्तन से ही हो सकता है।" यही चिन्तन जब आत्म तत्व की ओर बढ़ेगा तो एक दिन विश्व में व्याप्त शक्ति व सत्य से भी उसका मिलन होगा। रामाश्रम सत्संग की साधना एक ऐसी ही रिसर्च विद्या है जो पूर्णतया वैज्ञानिक है। अध्यात्म विज्ञान का यह खुला विश्वविद्यालय है। यहाँ की कक्षायें विज्ञान, धर्म व अध्यात्म की प्रयोगशालायें हैं।

रामाश्रम सत्संग, मथुरा के

उपकेन्द्र मुरादाबाद का सत्संग कार्यक्रम

दिनांक २२ नवम्बर सायं, २३ नवम्बर प्रातः सायं और २४ नवम्बर १९९७ प्रातः तद्नुसार शनिवार, रविवार और सोमवार को सुनिश्चित हुआ है। प्रेमीजन पधारकर आध्यात्मिक लाभ उठायें।

ठहरने एवं सत्संग स्थल :—

शिव सुन्दरी मोन्टेसरी स्कूल (साहू रमेश कुमार की कोठी) निकट गुलजारी मल धर्मशाला, मुराबाबाद (१ बजे दोपहर बाद से)

सम्पर्क सूत्र :—

कर्मचन्द डंग

२३/ए, पार्क के सामने, हरथला रेलवे कालोनी, मुरादाबाद

फोन नं० : ३२१६४९, ३१४६२५, ३१०८३४

हम जांईं कहाँ पद छाँड़ि तिहारे

—श्री सत्यपाल वर्मा 'सनेही'



जग द्वन्द्व से ऊँच निवासु सदा,
चख नेह-तरंगनि सों रतनारे।
विष-पानु किये भव-बारिधि को,
बहु नेही भुजंग सुअंग सिधारे॥
जगदम्ब जिया अरधंग लसैं,
सत्संग-सुगंग बहावनि हारे।
गुरुदेव दयालु दया करिये,
हम जांईं कहाँ पद छाँड़ि तिहारे॥ १॥





जब दीनन की दुख टेर सुनी,
तुम ह्वै दुखिया निज लोक मझारे।
धरि रूप चतुर्भुज आइ गये,
जन के मग-कंटक फेरि बुहारे॥
पुनि आइ बजाइ दई बंसरी,
यमुना-तट रास रचावनि हारे।
गुरुदेव दयालु दया करिये,
हम जांईं कहाँ पद छाँड़ि तिहारे॥ २॥





कलि काल विहाल कियो जग को,
नभ छाइ गये तम के घन कारे।
बहु सोइ गये धरि हाथु हिये,
कछु जागि रहे एकु दीपकु बारे॥
पुर-जोर हवा पछुवा बहती,
हम रोकि रहे लघु हाथु पसारे।
गुरुदेव दयालु दया करिये,
हम जांईं कहाँ पद छाँड़ि तिहारे॥ ३॥



हम मानत पापि बड़े हम हैं,
बहु पापु नहीं जो न हाथ हमारे।
सबु कामुहि कामु भर्यो मन में,
नित क्रोधु ढहावति ज्ञान कँगारे॥
मद-लोभ-कुमोह के पाश बँधे,
हम बूड़त हैं भवसिन्धु-मझारे।
गुरुदेव दयालु दया करिये,
हम जांईं कहाँ पद छाँड़ि तिहारे॥ ४॥



समाचार इधर-उधर के



मनोविकारों से मुक्ति पाइये : होमियोपैथी अपनाइये

(१) **क्रोध**—अशान्ति, क्रोध, चिड़चिड़ापन। माँगी हुई वस्तु देने पर उसे दूर फेंक दे—कैमोमिला सो. एम. शक्ति

(२) **अपमान**—अपमान व दमित क्रोध का दुष्परिणाम। लोग क्या कहेंगे ? सोच कर परेशान होना—स्टेफि सै० उच्चशक्ति

(३) **प्रतिशोध**—थोड़ा-सा विरोध या काम में रुकावट असह्य। प्रवल प्रतिशोध की भावना—नक्सबोम उच्चशक्ति

(४) **झगड़ालूपन**—जब अकारण झगड़ा मोल लेता रहे और जिस किसी पर प्रहार करने को तैयार रहे—लाइकोपोडि० उच्चशक्ति

(५) **हत्या कर देने की प्रवृत्ति**—जब क्रोधाधिक्य अचानक भड़क उठे और हत्या करने को उद्यत हो जाय—आयोडियम उच्चशक्ति

(६) **कंजूसीपन और लोभ**—(अ) क्रोधी स्वभाव के साथ ही लोभी और कंजूस होने की प्रवृत्ति—लाइकोपोडियम उच्चशक्ति

(ब) दुखी और लोभ स्वभाव—पल्साटिला उच्चशक्ति

(स) अत्यन्त स्वार्थी और लोभी। दूसरों से बिलकुल मतलब नहीं। कुछ भी हो—सल्फर उच्चशक्ति

(७) **धोखा देना और झूठ बोलना**—(अ) जब उच्चस्तरीय मानसिक शक्ति क्षीण हो जाय और सद्भावना ढीला पड़कर मन पर—धोखा देना, झूठ बोलना आदि प्रवृत्तियाँ अपना अंकुश जमा लें तो—ओपियम उच्चशक्ति

(ब) जब ठगने की प्रवृत्ति आगे बढ़कर झगड़े पर उतर आये—कास्टिकम उच्चशक्ति

(७) **ईर्ष्या और संदेह**—(अ) अश्लीलता, ईर्ष्या और क्रोध के साथ दूसरों पर संदेह करने की प्रवृत्ति—हायोसियामस उच्चशक्ति

(ब) अकारण ईर्ष्या और संदेह—लैकेसिस उच्चशक्ति

(स) दीर्घकालीन ईर्ष्या और क्रोध से उन्मत्त होकर हत्या कर डालने को तत्पर—एपिसमेल उच्चशक्ति

(९) **घमण्ड**—अपने को बहुत बड़ा और दूसरों को बिलकुल तुच्छ समझना और लोगों को घृणा की दृष्टि से देखना—प्लैटिना उच्चशक्ति

(१०) **आत्मघात**—(आत्महत्या)

(अ) जब परिस्थियों से निराश होकर आत्मघात करना चाहे—आर्सेनिक एल्ब उच्चशक्ति

(ब) जब नैराश्य से प्रभावित होकर आत्मघात करने को उद्यत हो जाय—आरममेट उच्चशक्ति

(११) अश्लील चिन्तन—कामुतापूर्ण अश्लील चिन्तन करते रहना—स्टेफिसेग्रिया उच्चशक्ति

मनोविकारों की चिकित्सा में सावधानियाँ

नोट—

[१] मानसिक रोगों की चिकित्सा उच्चशक्ति सामान्यतया (१००० से १०,००० शक्ति) से की जाती है। अत: ऐसे रोगों की चिकित्सा स्वयं न करके किसी योग्य चिकित्सक से परामर्श लेना ही उचित होता है।

[२] समयाभाव में तत्काल १००० शक्ति की दवा दी जा सकती है।

[३] मनोविकारों की चिकित्सा में नित्य एक खुराक दवा दे सकते हैं।

[४] दवा खाली पेट लेना ही उचित है।

[५] ३० नम्बर की ८-१० गोलियाँ एक बार चुसाना चाहिए।

[६] दवा सेवन के १ घण्टे बाद तक कोई चीज न खाये।

[७] औषधि सेवन काल में एलोपैथिक दवाइयाँ और तामसिक भोजन एवं अधिक मिर्च-मसाले न खायें।

[८] विशेष परामर्श हेतु अगर आप स्वेच्छा से चाहें तो सम्पर्क निम्न पते पर कर सकते हैं—

डा० पी० के० द्विवेदी
धर्मार्थ होम्योपथिक चिकित्सालय
सनातन धर्म मन्दिर
सुभाष नगर (मेन मार्केट)
मेन नजफगढ़ रोड, नयी दिल्ली

—:※※:—

शोक समाचार

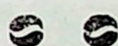
अत्यन्त दुःख के साथ सूचित करना पड़ रहा है कि—

केशवपुर वाराणसी के श्री ब्रिन्दा प्रसाद जी का १७ सितम्बर को, पुर्णिया के श्री सीताराम जी की दादी का २ सितम्बर को, औलोछपरा के श्री हरिवंश सिंह जी के पिता जी का १३ मई ८७ को, हवेली खड़गपुर के महेन्द्र गुप्ता जी की माँ का २३ जून को, नारंगपुर के श्री महिपाल गिरि जी के पिता जी का ६ जुलाई को, जयपुर के श्री देवेश बिहारी माथुर जी की पत्नी का २६ जुलाई ८७ को, देवरिया के श्री दिनेशचन्द्र श्रीवास्तव जी की माताजी का १६ मई को, सीतारामपुर के श्री नेमचन्द पाल जी की भतीजी का २२ जून को एवं चाचा का २६ जून को, रतनपुर के श्री चौधरी मिस्त्री के पिता जी का १४ जुलाई को, सफापुर के श्री अभय कुमार जी की माँ का, आबूलेन के श्री ओमप्रकाश कश्यप जी का १५ जुलाई को, पटना के डा० के. एन. पी. श्रीवास्तव के नाती का ११ जुलाई को, शेरघाटी के श्री कृष्णचन्द्र प्रसाद जी के पिताजी का २० जुलाई को, सीतारामपुर के श्री के. के. झा जी की पत्नी का २९ जून को, टिहरी के श्री ओमप्रकाश चौधरी जी की सास का ११ जुलाई को, गौसपुर के श्री शिवपूजन सिंह यादव जी की माताजी का २६ जुलाई को, गणेशपुर के श्री श्याम कुमार जी के बड़े भाई का २२ जुलाई को, बारन के श्री गुजर महतो जी के चचेरे भाई का २३ जुलाई को, एवं माँ का २१ मई को, बिजुलिया के श्री ललन सिंह जी के पिताजी का ६ जून को, समस्तीपुर के श्री ब्रजकिशोर सिन्हा जी के बड़े भाई का ३० जून को, बरेली के श्री श्यामा चरण गुप्ता जी का २४ जुलाई को, भीलवाड़ा के राजमल जैन जी के बड़े भाई का १६ जून को, बरदेपुर के श्री हेमचन्द्र जी के पिताजी का १७ मई को, जुजोद के श्री ठाकुर भूलसिंह जी का १६ मई को, जोधपुर के श्री हरिकृष्ण सक्सेना जी की पुत्री का ३० मई को, रतनपुर के श्री राजकिशोर सिंह जी के पिताजी का १९ मई को, शाहपुर के रिशालसिंह जी के पुत्र का १६ जून को, धुरगांव के श्री द्वारिका प्रसाद के बड़े भाई का २६ अप्रैल को, अमेठी के श्री देवन्दनसिंह जी की चाची का ११ जून को, औली के श्री रघुवंशसिंह जी के पिताजी का १३ मई को, जाखल के श्री सोनीसिंह जी की धर्मपत्नी का ३ जुलाई को, सेवराई के श्री अंगद जी की माता जी का २४ मई को, भागलपुर के श्री मदन गोपाल शर्मा जी के समधी का २५ जुलाई को, सासाराम के श्री रघुवंश ओझा जी के चाचा का ११ अगस्त को, जोगापुर के श्री रामदेव साव जी के पुत्र का १ अगस्त को, जयपुर के श्री रामसिंह जी के पिताजी का १७ अगस्त को, नाखल के श्री छीगनाराम जी का २६ अगस्त को, रामपुर के श्री राजकिशोर सक्सेना जी के पिताजी का ३ अगस्त को, भगतावाला के श्री मितानसिंह जी का २३ फरवरी को और धर्मपत्नी का २९ जून को, मुहम्मदपुर सादा के श्री नोबहार सिंह जी का २ अगस्त को, फीना की श्रीमती शिक्षा शास्त्री का १८ अगस्त को एवं नसोरदी वाला के श्री होरीसिंह जी का स्वर्गवास हो गया है।

परम पूज्य श्री गुरु महाराज जी से प्रार्थना है कि दिवंगत आत्माओं को निजधाम में शान्ति एवं शोक सन्तप्त परिवारीजनों को धैर्य प्रदान करें।

राजस्थान तथा बिहार सरकार द्वारा स्वीकृत

साधन के नियम



१. गूढ़ तथा अनुभवी गुप्त रहस्यों को सरल भाषा द्वारा जनता तक पहुँचाना तथा सदाचार की शिक्षा देना "साधन" का मुख्योद्देश्य है।

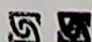
२. साधन प्रत्येक मास की २०-२१ तारीख को प्रकाशित होता है। जिन ग्राहकों को पत्रिका ३० तारीख तक न मिले, उन्हें डाकखाने तथा कार्यालय से तलाश करना उचित है। अंक न मिलने पर एक माह के अन्दर सूचित करने पर अंक दोबारा भेज दिया जायेगा।

३. साधन में आध्यात्मिक, सामाजिक तथा शारीरिक उन्नति के लेख ही छापे जायेंगे। राजनैतिक तथा अश्लील लेख भेजने का कोई भी सज्जन कष्ट न करें।

४. लेखों को घटाने बढ़ाने और छापने न छापने का अधिकार सम्पादक को रहेगा, परन्तु लेख प्रकाशित नहीं होने पर सम्पादक उत्तरदायी न होगा। लेख सरल भाषा में कागज के एक ओर ही स्वच्छ लिखे हों।

५. ग्राहकों को पता व ग्राहक नम्बर स्वच्छतापूर्वक लिखना चाहिए। उत्तर के लिए टिकट भेजना उचित है। बिना ग्राहक नम्बर के विलम्ब हो सकता है।

६. साधन का वार्षिक मूल्य रु० ६०/- है। एक प्रति का मूल्य रु० ५.०० है। केवल अगस्त १९९७ विशेषांक का मूल्य १२.०० है। एक वर्ष से कम के ग्राहक नहीं बनाये जायेंगे।



Reg. No. of R. No. 2959/57

Postal Regd No. MTR - HO - 12

Licence No. 001/ 97 to Post without prepayment



प्रबन्ध सम्पादक : आलोक कुमार, साधन हिन्दी मन्थली कार्यालय, मथुरा.
प्रकाशक : हेमेन्द्र कुमार, साधन हिन्दी मन्थली कार्यालय, डैम्पियर, नगर, मथुरा
मुद्रक : हेमेन्द्र कुमार, साधन प्रेस, डैम्पियर नगर, मथुरा.

तार का पता - साधन प्रेस • टैलीफोन - 404545, 404066

नवम्बर 1997

साधन

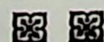
संस्थापक -

समर्थ गुरु परम सन्त डा. चतुर्भुज सहाय जी



रामाश्रम सत्संग, मथुरा

इस अंक में





अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम ।।–यजु० ४०-१६

—हे परमात्मन् ! हमें ऐश्वर्य के सम्पादन के लिये सुपथ से ले चलो । हमारे अन्दर जो इस विषय में वक्रतापूर्ण, छल-छद्म की बातें आती हैं, पापमयी प्रवृत्ति जाग्रत होती है, उसे हमसे दूर कर दो । आपकी चरण-शरण में रहते हुये हम सदैव सत्पथ पर चलकर ही ऐश्वर्य को प्राप्त करें ।

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

वर्ष : ६५
अंक : ४

नवम्बर १९९७

वार्षिक मूल्य : रु० ६०.००
इस अंक का : रु० ५.००

卐 भगवत्कृपा ही तीनों लोकों में समाई है 卐



भगवत्कृपा से चढ़ जाता पंगु पर्वतों पर,
भगवत्कृपा से सिद्धि साधकों ने पाई है ।

भगवत्कृपा से गूँगा बोलता है मीठे बैन,
भगवत्कृपा से देता अन्धे को दिखाई है ।।

भगवत्कृपा से बधिर पाता श्रवण-शक्ति,
भगवत्कृपा से वाणी होती सुखदाई है ।

भगवत्कृपा से ब्रह्मज्ञान की है प्राप्ति,
भगवत्कृपा ही तीनों लोकों में समाई है ।।



—श्री उमादत्त जी सारस्वत 'दत्त'

अमृत-बिन्दु

प्रभु-मिलन का द्वार—प्रेम

—परम पूज्य श्री गुरुदेव

★

ईश्वर प्राप्ति के तीन मार्ग हैं, जिनको वेदों की भाषा में ज्ञान कर्म और उपासना कहते हैं। इसी को ऋग्, यजु और साम का नाम दिया गया है। ऋग् वेद में ज्ञान का ही वर्णन है इसीलिए उसको ज्ञान काण्ड, यजुर्वेद को कर्म काण्ड और सामवेद को उपासना काण्ड कहा जाता है। केवल विचार द्वारा जो साधक अपने को उधर ले जाता है, उसे "ज्ञानयोग" कहते हैं। आसन और प्राणायाम से जो मन को उधर लगाने का प्रयत्न करते हैं, उसे "कर्म-योग" कहते हैं, और जो ईश्वर रूप गुरु को या उनके किसी स्वरूप को सामने बैठालकर समीपता का अभ्यास करते हैं, इसको "उपासना-योग" कहते हैं। प्रभु की समीपता में, जब साधक तन्मय होकर उनकी सत्ता में विलीन होने लगता है, वास्तव में यही उपासना है और इसी की गहरी अवस्था को समाधि का नाम दिया गया है।

साधना कैसे

मन को प्राणायाम या अन्य साधनों द्वारा निर्विषय तो बनाया जा सकता है परन्तु ऐसा मन प्रभु आनन्द से पूर्ण न हो पायेगा। इसी वास्ते जड़ समाधियों में चाहे वह कई दिन की हो जावें, जागने पर वैसा ही निकलेगा जैसा वह समाधि से पहले था, बल्कि वह विचार उसके वहाँ और पनप जाते हैं।

ईश्वर दर्शन की इच्छा रखने वालों को मन को निर्विषय तो बनाना है, परन्तु वह या तो किसी सद्गुरु के ध्यान में उसे निर्विषय बनावे या भगवान के किसी स्वरूप में उसे लय कर दे। ऐसा करने से साधक के हृदय में गुरु का या ईश्वर का तेज प्रवेश कर जायेगा। परन्तु गीता के अनुसार किसी पूर्ण गुरु में ही अपने को समाहित करे तो बस फिर ध्यान से हटने पर ईश्वर आनन्द (आत्मानन्द) से अपने को परिपूर्ण देखेगा। ऐसी एक दिन की क्रिया उसे आनन्द में डुबो देगी। परन्तु उपासना के रहस्य को हर कोई नहीं जानता, कोई सद्गुरु या सन्त ही इसे बता सकते हैं। अतः ईश्वर दर्शन के अभिलाषी किसी सन्त को अपना पथ-प्रदर्शक बनायें तो साधना सुलभ भी हो जायेगी और सरल भी।

अपनी मनमानी साधना सफलता नहीं दे सकेगी। इसी वास्ते प्रथम भक्ति को सन्तों का संग ही लिखा है। ईश्वर उन्हीं में बोलता है, इसीलिये

सन्तों के शब्द हृदय को पकड़ लेते हैं। जहाँ सूर्य का प्रकाश हमें संसार के दर्शन कराता है वहाँ सन्त के शब्दों का प्रकाश हमें ईश्वर दर्शन कराता है। सन्त आत्मप्रकाश देते हैं।

वैदिक काल में निराकार उपासना प्रचलित थी। उसके पश्चात् पौराणिक ऋषियों ने साकार उपासना का ढंग निकाला और उपासना शब्द को भक्ति के नाम में बदल दिया। निराकार कठिन समझ कर लोग साकार पूजा (साकार उपासना) की ओर चल पड़े और थोड़े ही काल में यह "भक्तियोग" के नाम से प्रसिद्ध हो गयी। जब साधक बार-बार अपने इष्ट की समीपता करता है, उसका स्मरण और ध्यान करता है तो उसमें इष्ट से प्रीति हो जाना अनिवार्य हो जाता है। इसीलिये भक्ति योग की ही अन्तिम अवस्था को "प्रेम" कहने लगते हैं। जब साधक के हृदय में प्रेम का श्रोत बहने लगता है तब जिज्ञासु उसके साक्षात्कार (दर्शन) के लिए बेचैन हो जाता है। प्रभु दर्शन के लिये यही अन्तिम द्वार है। कबीर, नानक, मीरा सब इसी द्वार पर तो पहुँचे थे। इसीलिये सभी की वाणी एक सी है। सब उस प्यारे के दर्शन को उतावले और बेचैन हैं। कोई कुछ कह रहा है कोई कुछ परन्तु भाव सबका एक है—वह है उनके अन्तर का सच्चा "प्रेम"।

प्रेम द्वार

भक्ति, ज्ञान, योग इत्यादि यह सब सीढ़ियाँ हैं जो प्रेम के स्थान तक पहुँचाती हैं। प्रेम इन सब साधनों के उपरान्त आता है, और आते ही आनन्द में सराबोर कर देता है। प्रेम रस के छींटे पड़ते ही मनुष्य कुछ और ही बन जाता है। प्रेम के उदय होते ही निष्कामता, निरहंकारता, त्याग, वैराग्य इत्यादि सभी सद्गुण हृदय में आ विराजते हैं। प्रेम में ऐसी आकर्षण शक्ति है कि स्वयं श्री हरि को खींचकर ला सकती है। परन्तु हाँ ! प्रेम मनुष्य को कुछ विचित्र सा कर देता है, विरह व्यथा में व्याकुल हो अपने प्यारे के लिये दिन रात तड़पा करता है।

साधक जब चढ़ाई करता हुआ, सबसे ऊँची चोटी आनन्दमय में पहुँचता है तभी प्रेम का उदय होता है। जब हृदय में प्रेम जाग्रत हो जाता है तो प्रभु का सिंहासन हिल जाता है, प्रेम एक ऐसा विचित्र पक्षी है जो प्रेमी के हृदय से तत्काल उड़कर उस प्यारे के हृदय में पहुँचता है और गरुड़ से भी जल्दी प्रभु को अपने साथ ला प्रेमी को मिला देता है। वैसे प्रभु आयें न आयें और अपनी सुविधा से आयें, परन्तु जब प्रेमी प्रेम में विभोर होकर तड़पता है तो प्रियतम से देखा नहीं जाता, क्योंकि प्रेम एक ऐसी विलक्षण शक्ति है जो प्रेमी और प्यारे को मिलाये रहती है। इसीलिये प्रेम को ईश्वर का ही स्वरूप कहा गया है।

प्रभु मिलन का साधन

नासिका बन्द कर देने पर जैसे वायु के लिये प्राण छटपटाते हैं, अधिक प्यास लगने पर जैसे जल के लिये जी दुखी और अन्न न मिलने पर जैसे भूखा आदमी अन्न के लिये छटपटाता है इतनी ही तड़प अथवा इससे भी आधी यदि हृदय में भगवान के लिए पैदा हो जाय, तो कोई कारण नहीं है कि मनुष्य को भगवान का दर्शन न हो। परन्तु मनुष्य तो धन सन्तान के लिये मरता है, इन्हीं की प्राप्ति के लिये वह दिन-रात पिसता रहता है और अन्त में सब यहीं छोड़कर चलता बनता है। एक दिन नहीं यदि एक घड़ी भी वह उसके लिये विलखे, हृदय में

उसके मिलने की उत्कट चाहना करे, रो रोकर उसे बुलावे, न आने पर प्राण देने को उतारू हो जाय, तो प्रभू उससे कहीं दूर थोड़े ही हैं। वह हर समय उसके पास हैं, उसकी प्रत्येक क्रिया को देखते हैं। चौबीसों घण्टे मनुष्य के हृदय के भावों को जाँचते हैं कि भक्त मेरे लिये कितनी चाहना रखता है। जिस दिन जिज्ञासु इस परीक्षा में पास हो जाता है, जिस दिन वह अपना हृदय संसारी पदार्थों से शुद्ध कर लेता है और उसमें प्रभु के लिये आसन बिछा लेता है और हृदय से उनका आह्वान करता है तो फिर उन्हें प्रकट होने में देर नहीं लगती। मनुष्य की आँख के सन्मुख एक झीना आवरण है। इस आवरण को तो बस भगवान हटाते हैं। जब आरत हृदय की पुकार उनके कानों में पहुँचती है तो पट खोल उसी समय प्रत्यक्ष आ विराजते हैं।

—❀::❀—

★ रंगे-इश्क का ★

—श्री ग़ाफ़िल बरनी

मस्तों की बात है ये ज़माने को क्या पता
रहते हैं बेनियाज़[1] वफ़ा हो कि हो जफ़ा

दुनिया की फ़िक्र है न खुदा का है ख़ोफ कुछ
दीवानगी ने कर दिया हर क़ैद से रिहा

साक़ी शराब की भी ज़रूरत नहीं रही
दिल खुद ही बन गया है मेरा एक मैकदा[2]

माशूक़ हूँ मैं या कि हूँ आशिक़ पता नहीं
आलम अजीब है ये तेरे रंगे-इश्क़ का

कोई करीम कहता है तुझको कोई रहीम
मुझको तो बेनियाज़ मिला संगदिल[3] मिला

होशो-हवास में वो उसे ढूँडते फिरे
होशो-हवास में किसे उसका पता चला

ये दुर्दशा जो मेरी हुई है जहान में
"ग़ाफ़िल"[4] हूँ मैं तो तू भी मगर बेख़बर रहा

---

१. बेपरवाह, २. शराबख़ाना, ३. पत्थर-दिल ४. बेख़बर, असावधान, बेसुध ।

सम्पादकीय

समाज और धर्म

★

मारीशश यात्रा के दौरान एक टेलीविजन भेंट कर्ता में वार्ताकार श्रीमती मधुजी ने एक प्रश्न किया कि "क्या धर्म के द्वारा आज गर्त की ओर जाते समाज का उद्धार हो सकता है?" आज हम पहले से अधिक सुविधा सम्पन्न हैं। आज हमारे पास धन है, वैभव है, रहन-सहन का स्तर बहुत अच्छा है। लेकिन जब हम अपनी आने वाली पीढ़ी को देखते हैं तो मन सिहर जाता है। हृदय में बड़ा दुःख होता है। संस्कार हीन, तथा दिशाहीन आने वाले समाज को देखकर भयंकर पीड़ा होती है। चरित्र नहीं, विद्या नहीं, आदर्श नहीं, आखिर कहाँ रुकेगा यह प्रवाह ? यह समस्या एक देश की नहीं, एक समाज की नहीं, एक धर्म की नहीं, बल्कि पूरे विश्व की है। समूची मानव जाति की है। आखिर कारण क्या है ?

हम सारा दोष अपने ही बच्चों पर डालकर स्वयं को अलग कर लेते हैं। लेकिन क्या भविष्य हमें इसके लिए क्षमा कर सकेगा ? शायद नहीं, कभी नहीं। इन बच्चों में संस्कार हीनता एवम् दिशा हीनता कहाँ से आई ? इन छोटे-छोटे शिशुओं के चेहरों पर खेलती सरलता, सहजता वह भोलापन कहाँ चला गया ? इन सबके कारण हम हैं, केवल मात्र हम हैं। इसके लिए हम किसी समाज शिक्षा की पद्धति या संस्कृति या धर्म को दोष देकर स्वयं को अलग नहीं कर सकते। आज आवश्यक है कि हम अपना अध्ययन पूरी सच्चाई एवम् ईमानदारी से निष्पक्ष रूप से करें तो देखेंगे कि हम बहुत सी विकृत मनोवृत्तियों को समाज एवम् शासन के दण्ड के भय से व्यक्त नहीं कर पाते। वे सारी विकृत मनोवृत्तियाँ हमारे अवचेतन मन (Sub concious mind) में जमा होती रहती है। यही सारी विकृत मनोवृतियाँ हमारे द्वारा ही हमारी सन्तति में आती हैं। हमारे अन्दर तो ये अवचेतन मन में थीं लेकिन हमारे बच्चों में ये प्रकट होकर आती हैं। छोटे-छोटे बच्चों पर खेलती कुटिल मुस्कान, मासूमों में अपराध भावना एवम् युवकों में दिशा हीनता एवम् संस्कार हीनता हमारी ही देन है। मैंने ऐसे परिवारों को देखा है जहाँ पुत्र पिता का सम्मान नहीं करता, दुत्कारता है, क्या पिता ने इसका कारण जानने का प्रयास किया ? नहीं। आज समाज को सुधारने से पहले हमें अपने को कसना होगा। हमें स्वयं को सम्मान पाने के लिए एक आदर्श बनना होगा ? एक कहानी याद आती है—एक माँ अपने बच्चे को लेकर स्वामी रामकृष्ण परमहंस के पास गई। बोली 'बाबा ! यह बालक गुड़ बहुत खाता है। इससे बहुत मना करती हूँ लेकिन मानता नहीं। आपकी बात यह मान जायेगा आप इससे मना कर दें।' स्वामी जी ने कहा 'ठीक है माँ ! आप अगले सप्ताह आ जायें, मैं मना कर

दूँगा।' माँ बालक को लेकर अगले सप्ताह फिर आयी, तब स्वामी जी ने बालक से कहा, 'बेटा गुड़ खाना ठीक नहीं है, गुड़ मत खाया करो।' बालक मान गया ? माँ को बड़ा आश्चर्य हुआ। अरे ! इस बात को जब मैं पहली बार आई थी तभी आप कह सकते थे। स्वामी जी ने कहा माँ ! तुम्हारा विचार ठीक है, लेकिन जब तुम पहली बार आयीं थीं तब मैं भी गुड़ खाता था पहले मैंने गुड़ को छोड़ा और एक सप्ताह के अन्दर मेरे शरीर में भरे गुड़ के सारे परमाणु निकल गये, और तब मैंने बालक से कहा और वह मान गया।

धर्म क्या है, तथा संस्कृति क्या है ? धर्म की व्याख्या तो बहुत विस्तार से सन्तों एवम् विद्वानों ने की है लेकिन फिर भी संक्षेप में मेरे विचार से धर्म वह है जो मनुष्य में पूर्णता लाये। मनुष्य अंश है और ईश्वर पूर्ण। अंश का धर्म है पूर्ण से मिलना। बरसात की बूंद का धर्म है अपने पूर्ण अर्थात् समुद्र से मिलना। धर्म ध्येय है और संस्कृति राह। बादल से गिरी बूंद समुद्र में मिलने दौड़ पड़ती है। वह नाला बनती है फिर नदी और अन्त में समुद्र में जाकर मिल जाती है। बस समुद्र से मिलना बूंद का धर्म है और मिलने के लिये जो नाला तथा नदी बनकर मार्ग अपनाया वह संस्कृति है। आज धर्म के नाम पर फैले पाखण्ड एवम् सम्प्रदायों को मेरा अन्तर मन स्वीकार नहीं करता। धर्म शब्द का अर्थ बड़ा गम्भीर है। धर्म परिवर्तन-शील नहीं होता। धर्म सनातन होता है। सनातन जो आदि से है अन्त तक रहता है। बूंद का धर्म आज से नहीं है आदिकाल से है सृष्टि के समय से है, और अन्त तक रहेगा। ऐसे ही जीव का अपने पूर्ण से मिलने का धर्म सृष्टि के समय से है और जब तक जीव है उसका धर्म यही रहेगा ? इसमें कोई परिवर्तन नहीं होता। जैसे ईश्वर पूर्ण है जीव भी पूर्ण है 'ॐ पूर्णमिदः पूर्णमिदं पूर्णात्.......' जीव यहाँ अपनी इसी पूर्णता को खोजता रहता है।

धर्म किसी ग्रन्थ में नहीं लिखा। धर्म हर जीव की अन्तर आत्मा में लिखा है। उसकी अन्तर आत्मा हर समय उसे धर्म पर चलने के लिये प्रेरित करती रहती है, लेकिन वह इतना अज्ञान में फँसा है कि उस अज्ञान से निकल नहीं पाता। दुर्योधन भगवान श्रीकृष्ण से कहता है—

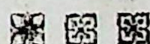
जानामि धर्मम् न च मे प्रवृतिः
जानामि अधर्मम् न च मे निवृतिः।

हे हृषिकेश ! मैं जानता हूँ धर्म क्या है; लेकिन उधर मेरी प्रवृत्ति नहीं होती अर्थात् मैं जानकर भी धर्म पर चल नहीं पाता। मैं जानता हूँ अधर्म क्या है लेकिन उससे निवृति नहीं होती अर्थात् अधर्म को जानते हुये छोड़ नहीं पाता। यह पूर्णतः सत्य है अधर्म इतना बलवान है कि हम इस पर विजय प्राप्त नहीं कर सकते। असुर सदैव से बलवान रहे हैं। महाभारत में अर्जुन सत्य पर खड़ा है और दुर्योधन असत्य पर। अर्जुन असत्य के दाँवपेचों को देखकर भयभीत हो जाता है। असत्य पर बहुत से दाँवपेच होते हैं। वह राम के लिये स्वर्णमृग भी बन जाता है अर्जुन के लिये परिवारीजन। कभी-कभी तो अधर्म ही सत्य जान पड़ता है। महान धीरवीर नरावतार अर्जुन भी इस असत्य व अधर्म से परास्त होकर अपना गाँडीव डाल देता है; और भगवान से कहता है—

'शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्'।

शास्त्रों ने भी ऐसा ही लिखा है कि ऐसी अवस्था में परमात्मा से प्रार्थना करे किसी सन्त की

शरण जाये । अर्जुन भगवान कृष्ण की शरण जाता है । उनसे प्रार्थना करता है कि मुझे अपना शिष्यत्व प्रदान करें । लेकिन शिष्यत्व के लिये श्रद्धा विश्वास की आवश्यकता होती है लेकिन 'आरत के मन रहहि न चेतू' अर्थात् ऐसा मनुष्य अधीर होता है, वह तत्काल ही समाधान चाहता है । लेकिन विश्वास एक आवश्यक कड़ी है समाधान से पहले । गीता में भगवान कृष्ण अर्जुन को अनेक प्रकार से समझाते हैं लेकिन वह और उलझ जाता है । गुरु वास्तव में करुणा का अवतार है । गुरु ही शिष्य के हृदय में श्रद्धा उत्पन्न करता है । और वही श्रद्धा से आगे विश्वास में ले जाता है । 'यह फल साधन ते नहिं होई, तुम्हरी कृपा जानि कोई कोई ।' गुरु ही कृपा कर शिष्य को समाधान के योग्य बनाता है । वही उसके हृदय में प्रवेश कर पूर्ण विश्वास की अवस्था में ले जाकर समर्पण करा लेता है । गीता में भगवान कृष्ण अर्जुन को एक अवस्था में ले जाते हैं जहाँ उसका विश्वास पूर्ण हो जाता है । उसका समर्पण भगवान के प्रति हो जाता है जैसे नदी समुद्र में जहाँ मिलती है वहाँ नदी समुद्र हो जाती है और समुद्र और नदी में भेद नहीं मालूम पड़ता है । जहाँ पूर्णता ही पूर्णता है । जहाँ सन्तुष्टि है, समाधान है । जहाँ पूर्ण से मिलकर पूर्ण हो जाता है । एक शक्ति भर जाती है जिससे अपनी मञ्जिल प्राप्त कर आदर्श हो जाता है । समाज को सही दिशा निर्देश दे सकता है । स्वस्थ समाज का निर्माण कर सकता है ।



❋ मेरी गहिलो बहियाँ ❋

—श्री टेकसिंह

हे गुरु लागूँ मैं पइयाँ ।
मोरी गहिलो बहियाँ ॥

मैं मति मूढ़ नयन को अंधो,
करम धरम कछु नइयाँ ॥ मोरी ……

निसि बासर मोहे अद्भुत लागे,
या जग भूल भुलइयाँ ॥ मोरी……

मन हँसा तजि मानसरोवर,
भटके लाल तलइयाँ ॥ मोरी……

दुरमति साधू गुरु मति होवे,
पावे जो चरनन छइयाँ ॥ मोरी……

प्रवचन पराग

संसार और हम

★

संसार तो एक मार्ग है, लोग आ रहे हैं, जा रहे हैं, तुम यहाँ शान्ति से बैठकर भजन करना या नमाज पढ़ना चाह रहे हो; यह कैसे होगा ? कहीं मार्ग चलते और ऐसी भीड़ में जहाँ एक सेकिण्ड के लिये भी मार्ग बन्द न हो, शान्ति मिल सकती है ? तुम सोचते थे कि एकान्त में भगवान को बुलायेंगे, भला जब भगवान वहाँ आयेंगे तो माया कहाँ जायेगी ?

वह माया तो उनके साथ है, वह तो उनके चरण दाबाती है, कैसे छोड़ दे उन्हें ? ईश्वर जहाँ होगा, माया अवश्य होगी ? ईश्वर नाम ऐश्वर्य वाले का है, माया ही उसका ऐश्वर्य है। जो वस्तु यहाँ मिलेगी, जो दर्शन तुम यहाँ करोगे, माया से खाली नहीं होगा।

इसलिये कहीं भागो मत, पनाह मिलेगी भी नहीं, कहीं एकान्त मत ढूंढ़ो क्योंकि यहाँ एकान्त है ही नहीं। यह दुनिया बहुत बड़ी बस्ती है, कहीं इसका पार नहीं। लाखों मील नित्य भागो और सौ वर्ष भागो, परन्तु पता नहीं लगेगा।

दुनिया में रहना है तो सादे ढंग से रहो यदि वेष बनाया तो समझो कि आ गई आफत।

सन्तजन माया से द्वेष नहीं करते, वह धन, जन तथा माताओं से डरते नहीं। वह माया और ईश्वर को ऐसे ही देखते हैं जैसे माता और पिता। भला माता-पिता में किसको त्यागें, किससे अलग रहें ?

उन्होंने प्रत्यक्ष देख लिया है कि प्रत्येक जीव ईश्वर है और उसका शरीर ही माया है। तुम ईश्वर हो, तुम्हारा शरीर माया है, फिर तुम उससे अलग कहाँ और कैसे रह सकते हो ? जीव का दुःख उनका दुःख, जीव का सुख उनका सुख।

अरे संसार को छोड़कर भागोगे कहाँ ? बाबा संसार तो अपने अन्दर बसा हुआ है। पहले अन्दर का संसार निकालो तभी बाहर का संसार त्याग सकते हो। जब तक मन का संसार न छूटा, इसके त्यागने का कोई लाभ नहीं।

सच्चा आनन्द सन्तों के यहाँ ही मिलेगा। उनके संग से मन द्वन्द्व से परे उठकर उस स्थान पर पहुँचेगा। जो द्वन्द्वातीत कहलाता है, जहाँ सिर्फ आनन्द का स्रोत है, राग-द्वेष का द्वन्द्व नहीं। वहाँ पहुँच कर इसी जगत् में रहते हुए, इन्हीं बच्चों में खेलते हुए वह आनन्द मिलेगा जो एकान्तवासी योगियों को भी दुर्लभ है।

तुम्हारा एक शरीर है और हाथ, पाँव, नेत्र, ऊँगलियाँ अनेक अंग, रोयें मगर जब इनमें एक दुखी

तो सारा शरीर दुखी, एक ऊँगली का दुःख, सारे शरीर का दुःख, एक जीव का दुःख सब जीवों का दुःख।

इसलिये दुखियों का दुःख दूर करो, इस बीमारी को बढ़ने न दो, नहीं तो सबको दुःख देगी। इसमें परोपकार जो है वह तो है ही सच्चा उपकार अपना ही है। अपने को रोग से बचाने के लिये उसका रोग दूर करो।

बुरी आदतें, आपसी द्वेष, परनिन्दा, दूसरों की हानि, काम-क्रोध की अधिकता, यह सब मानसिक रोग हैं। यह सब ऐसे फैलते हैं जैसे कि महामारी या छूत के रोग और उसके कीटाणु।

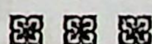
तुमने किसी बुरी आदत को अपने में रखा है और वह तुम्हारे संसर्ग से दूसरों पर पहुँची तो समझो कि तुमने उसका वृक्ष लगा दिया, आगे वह बढ़ेगी और जितने लोग उससे दुखी होंगे सबके पाप के भागी तुम होगे।

यह शरीर जिसे मैं जब तक अपना समझता रहा, किसी ने मेरी ओर देखा भी नहीं, परन्तु जहाँ मैं इसे सबका समझने लगा, तो सब मुझे अपना समझने लगे, सबके हृदय में मेरा दर्द हो गया।

हिन्दुओं को हिन्दुओं का दर्द है, मुसलमानों का नहीं क्योंकि वह उन्हें अपना नहीं समझते। एक अरब का मुसलमान अपना है, सहस्रों वर्षों का पड़ोसी हिन्दू अपना नहीं। इन सम्प्रदायी ढक्कनों ने हमें ऐसा ढक दिया है कि मनुष्यत्व रहा ही नहीं। फिर शान्ति मिले कैसे ?

यह जगत एक शीशा है, इसमें से सब रूप अपने ही हैं, अन्तर है केवल अपने अज्ञान का। यह भेद-भाव सब बाहरी ही हैं, अंतर की देह (जीवात्मा) में कोई अन्तर नहीं। जिसने उसको देखा है, उसी ने उस राम को भी देखा है, फिर राम एक हैं, हम सब भी एक। हमारा सुख भी एक, हमारा दुःख भी एक और इसकी दवा भी एक—सबसे प्रेम।

प्रेषक—श्री लखपति सिंह



छमा याचना

साधन के प्रेमी पाठक जानते हैं कि "साधन" के मुख्य उद्देश्य अध्यात्म व सदाचार की शिक्षा देना है। आप यह भी जानते ही हैं कि यह भगवत् केन्द्रित सभी साधनात्मक पद्धतियों के प्रति पूर्ण उदार व सहिष्णु है। परन्तु सितम्बर '६७ के 'साधन' में प्रकाशित लेख "मनमानी क्यों" के पैराग्राफ चार को पढ़ अपना क्षोभ व्यक्त करते हुए कुछ भाइयों ने पत्र भेजे हैं। लेखक का लक्ष्य 'संन्यासियों' की निन्दा कदापि नहीं था, वरन् पाखण्डी वेशधारियों की ओर एक तीखा आक्षेप अवश्य था। फिर भी हम खुले हृदय से उन सभी भाइयों से क्षमा याचना करते हैं जिनको उन शब्दों ने आहत किया है—पीड़ा पहुंचायी है।

—सम्पादक

हिमालय की गोद में

पीयूष-पथ के कुछ अनुभव

—श्री रुद्र प्रसाद मिश्र

★

हिमालय को किसी ने मात्र पर्वत देखा; किसी ने इसके धवल शिखरों को पर्वतारोहण के नजरिये से देखा, किसी ने इसे इस देश के उन्नत विशाल भाल के रूप में देखा, भूगोलविदों ने कुछ देखा तो आयुर्वेद विज्ञानियों ने कुछ और ही देखा। किसी ने यहाँ फूलों की घाटी से सजी वनस्थली देखी, किसी ने तपस्थली, तो किसी ने इसे देवस्थली के रूप में देखा है। हमारे पौराणिक महर्षियों ने यहाँ के कैलाश में भगवान शिव की लीला देख इसे उन्होंने उनकी लीलास्थली भी कहा है। सन्त श्री तुलसीदास जी ने शक्ति के एक स्वरूप माँ पार्वती के जनक के रूप में भी इन हिमवन्त को देखा है।

अभी-अभी कुछ वर्ष पूर्व पूज्य गुरुदेव में लय हो, प्रकृति की लहरों के पार पहुँच सन्त श्री विरल जी ने हिमालय में विचरते हुए इस हिमालय के दर्शन "शक्तिस्थली" के रूप में किये। जहाँ वह ईश्वरीय शक्ति "मातृशक्ति" के रूप में विचरण कर रही हैं और अनन्त रूपों में अपनी सन्तान मनुष्य, जलचर, थलचर, नभचर व अचर सबका कल्याण कर रही है। उन सन्त ने अपने पास उपस्थित एक साधक से बड़ी ही गम्भीर धीमी ध्वनि से कहा—माँ दुर्गा आदिशक्ति हैं। वही आती हैं गुरु रूप में। साधना ठीक, पर उस माँ की इच्छा ही प्रमुख है। वह चाहे तो बाँधे और चाहे तो छोरे। ब्रह्मा, विष्णु, महेश तो एक-एक विभाग (Branch) के अधिकारी हैं, वह माँ सबके ऊपर है। इसीलिये माँ शिव की छाती पर भी सवार दिखायी जाती है। शुंभ-निशुंभ को कोई मार नहीं सकता सिवाय उस माँ के। परमपूज्य पण्डित जी महाराज ने कितना बढ़िया कहा है—'वह माँ कितनी चतुर है जो चतुर्भुज रूप धरकर सामने आयी।'

❀ ❀ ❀

माँ गंगा के किनारे-किनारे आगे बढ़ते हुए, उन भागीरथी के पवित्र प्रवाह व प्रसार का अवलोकन करते हुए, उसकी कलकल-छलछल कल्लोलिनी लय में विलय हो—उस माँ के हृदय में ही पैठ व फिर बाहर आ एक अमर सी संगीतमय ध्वनि में वे बोल पड़े :—'देखो ! माँ भागी जा रही है—पुत्रों के कल्याण के लिये। × × × कुछ पुत्र भी जा रहे हैं माँ के पास। नेहमयी माँ के करुणा के प्रवाह में भला कोई अपवित्र रह सकता है !' साधक के मन में एक विचार लहरा गया—जीव अपनी ही दुनिया में अपने ही बनाये जाल में उलझा उसी में प्रसन्न है। कई जीवों को गन्दगी ही पसन्द है, कई को रजोगुण के प्रवाह से प्रेरित भाग-दौड़, कोई सन्तान,

सम्पत्ति, सम्मान व सत्ता के लिये पागल है और अपने इस पागलपन में ही प्रसन्न हैं और उस स्नेह-मयी माँ को भूले हुए हैं। और वह भोली माँ तो मात्र पुत्र की प्रसन्नता चाहती है। उस साधक के हृदय में एक पीड़ा भरी प्रार्थना गूँजी—माँ ! अब मेरे मन की प्रसन्नता न देख। हे कल्याणमयी। अपनी करुणा के आँचल में मुझ पगलू को छुपा ले।××× । माँ !!

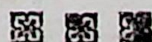
  

आदि स्रोत सागर से बूँद का विलय होना—फिर विभिन्न परिस्थितियों से जूझते हुए उसकी लम्बी यात्रा और अन्ततः सागर से मिलन, परमात्मा से अलग हुयी आत्मा की जीव रूप में विकट यात्रा सो भी प्रकृति के तत्वों व तीनों गुणों में बँधे हुये अपनी मजबूरी की व्यथा और विरह की पीड़ा और अन्ततः वह मोहन दर्शन वह मधुर मिलन की लुकाछिपी का खेल और आगे××× । एक दिन भगवान बद्रीनाथ जी के धाम में ब्रह्ममुहूर्त में सन्त श्री विरल जी उस अवस्था में विराजे हुये थे जहाँ से सब कुछ, सारा ब्रह्माण्ड, हाथ में रखे आँवले के समान साफ-साफ दिखता है। वहाँ कोई भी रहस्य, रहस्य नहीं रह जाता। शक्ति और प्रकृति स्वयं अपनी लम्बी कहानी बिना शब्दों के पल मात्र में कह जाते हैं—दिखा जाते हैं—अनुभव करा जाते हैं। वहाँ से कुछ नीचे उतर के उस साधक से कह पड़े—"अद्भुत है यह संसार। विरह की नजरिया से देखो तो सर्वत्र विरह के ही दृश्य—विरह की ही पीड़ा। मिलन के दृष्टिकोण से निहारो तो सर्वत्र मिलन की ही मिठास। परिवर्तन के भाव में आ सारा पसारा देखो तो सर्वत्र-सतत् प्रतिपल परिवर्तन ही परिवर्तन और अपरिवर्तनशीलता की दृष्टि से देखो तो तत्वतः मूलतः यहाँ कुछ भी तो नहीं बदल रहा।"

उत्तरकाशी। प्रेमियों के चाय की चुस्कियाँ लेते-लेते उन सन्तश्री ने बताया कि हम अपने पूर्वज ऋषियों-महर्षियों से उऋण नहीं हो सकते। प्राचीन काल में, मध्यकाल में उस राजनैतिक व सामाजिक परिवेश में भी उन्होंने इतने सुन्दर और दृढ़ विचार छोड़े हैं जो आज भी—आज के इस माहौल में भी वे विचार सामने आते हैं। वैसे ही जैसे जल की गन्दगी जब नीचे बैठती है तो पवित्र जल ऊपर आ जाता है। इसी प्रकार आज के दूषित विचार जब नीचे बैठते हैं तो ऋषियों के विचार सामने आकर मन को शान्ति, चित्त को मुग्धता, बुद्धि को प्रकाशपूर्ण स्फूर्ति व आत्मा को आनन्दित कर जाते हैं।

हम साधकों को उचित है कि हम इधर भी ध्यान दें व अपने महर्षियों की इस अद्भुत देन के सम्पर्क में आवें।



सिद्धियों के तीन भेद होते हैं—शारीरिक सिद्धियाँ, मानसिक सिद्धियाँ और आत्मिक सिद्धियाँ। शारीरिक सिद्धियाँ औषधि से और मिथ्या आहार विहार त्यागने से आती है। मानसिक सिद्धियाँ तप व एकाग्रता से आती है। और आत्मिक सिद्धियाँ आत्मसाक्षात्कार कर लेने पर प्राप्त होती है।

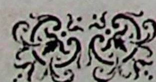
—पूज्य गुरुदेव

हम जाइँ कहाँ पद छाँडि तिहारे

★ ★ ★

श्री सत्यपाल वर्मा 'सनेही'

★ ★ ★



तुभ श्रेय की राह बताइ थके,
पर प्रेय ये आजहुं पांव हमारे।
मनु मस्त गयंद भजै दखिनै,
दिसि उत्तर नेकहु नाँहि निहारे॥
हम हारि गये यहि के बल ते,
अब सौंप रहे प्रभु हाथ तिहारे।
गुरुदेव दयालु दया करिये,
हम जाइं कहाँ पद छाँडि तिहारे॥ १॥

कुबरी - शबरी पर नेहु कियो,
नरसिंह बने पह्लाद उबारे।
गज - गीध - अजामिल औ गणिका,
इन पापिन के नाँहि पाप निहारे॥
यह रीति पुरातन है तब क्यों,
लखि मोहि लियो मुँह मोरि मुरारे।
गुरुदेव दयालु दया करिये,
हम जाइं कहाँ पद छाँडि तिहारे॥ २॥

हम जानि गये सामर्थ्य तेरी,
तुम एक अनेकन के रखवारे।
ब्रह्माण्ड बनै, बिकसै, बिनशै,
दुख - मोचन - लोचन एक इशारे॥
सब मानव - दानव - देव बँधे,
गल, नाँचि रहे चहुँ ओर तिहारे।
गुरुदेव दयालु दया करिये,
हम जाइं कहाँ पद छाँडि तिहारे॥ ३॥

हम रूप - कुरूप भले या बुरे,
प्रभु! जैसे भी हैं तस दास तिहारे।
अब सोवत जागत एक तुम्हीं,
मोंहि ठौरु नहीं कहुँ औरु दुवारे॥
मनभावत दूसर देव नहीं,
अब 'नेहि' नहीं कछु औरु निहारे।
गुरुदेव दयालु दयालु दया करिपे,
हभ जाइं कहाँ पद छाँडि तिहारे॥ ४॥

अवतरण पर्व पर

श्री गुरु महाराज जी की पावन याद में

—श्री रामभरोसे लाल

★

परम कृपालु जीवनाधार, करुणावत्सल, श्री महाराज जी, उनके स्वरूप एवं गुणों के प्रति कुछ कहने लिखने की सामर्थ्य इस पाँवर जीव में कहाँ ? यदि महासागर रूपी दवात में कज्जल गिरि सम स्याही घोलकर भर दी जाय, और कल्प वृक्ष की शाखा की कलम तथा समूची पृथ्वी को कागज बनाकर शारदा निरन्तर उस पर लिखती रहें तो भी उनकी महिमा का वर्णन नहीं हो सकता। फिर भी उनके सानिध्य के क्षणों की अनुभूति के कुछ टूटे फूटे शब्द, उन्हीं के द्वारा प्रदत्त शक्ति से व्यक्त करने की चेष्टा की है।

उनका रूप, स्वरूप कैसा विलक्षण और अलौकिक था कि बस देखते ही ठगे से रह जाएँ। वह मन को मनोरम, नेत्रों को रमणीय, उनके वचन अमृत सदृश, कल्याणकारी कृपा दृष्टि तथा निरन्तर सहज स्थिति ऐसी विशेषता थी जो सभी को आकृष्ट किये बिना नहीं रहती थी। उनका हर समय निजानन्द में मग्न रहना स्वभाव था। उनका गौर वर्ण, उच्च और तेजस्वी ललाट, पलाश आभायुक्त कमल सदृश नेत्र, सहज मुस्कान और भीनी-भीनी आनन्द की फुहारें सभी को बरबस खींचे रहती थीं। तिस पर उनकी प्रेममयी चितबन, अरुणारे नेत्रों का ऊपर नीचे चलन, शान्ति और आनन्द प्रदायक तो होता ही था साथ ही ऐसा भासता था मानो सारा जगत उनके भृकुटि-विलास से अलौकिक हो रहा है। अपनी सुधि-बुधि बिसार कर खो जाना, और लोक-परलोक के सभी भावों से विलग होकर निरन्तर आँखें खुली होते हुए भी उन्हीं के रूप माधुर्य में अटक जाना एक सहज अनुभूति रहती थी।

संसार के पाप ताप से सन्तप्त जीव जब उनके सानिध्य में पहुँचते थे वे अपनी सांसारिक व्यथा को भूलकर, अत्यन्त आनन्द, शान्ति और सन्तोष अनुभव कर किसी अन्य लोक में विचरण करने लगते थे।

सन्त शिरोमणि श्री महाराज जी इस लोक के व्यवहार करते हुए अपनी चिन्मय शक्ति से सार्वभौम ब्रह्म सत्ता से निरन्तर सम्बन्धित अपनी सहज ब्राह्मी स्थिति में हर समय निमग्न रहते थे। उनके स्मरण मात्र से ही हृदय में पवित्र भावों की लहरें उठने लगती हैं तथा मन श्रद्धा और प्रेम से पुलकित हो जाता है। वह कहा करते थे कि हृदय में गुदगुदी पैदा करो इससे मन निर्मल होगा और उसमें पवित्र प्रेम का संचार होगा। वह कहते थे कि जीव संसार में पुरुषार्थ करने आया है। अतएव मानव मात्र का कर्त्तव्य है कि वह इस लोक के

समस्त मर्यादानुकूल व्यवहार करते हुये अपने वर्तमान जीवन में ही परमार्थ पथ पर अग्रसर होकर अध्यात्म की परमोत्कृष्ट उपलब्धि करे ।

वह जीव मात्र पर प्रेम और दया भाव रखते थे । कितने ही असहाय बच्चों को अपनी शरण में रखकर उनका पालन किया । यही नहीं, पशु पक्षी भी उनकी दया के पात्र होते थे । अध्यात्म लाभ के निमित्त जो भी उनकी शरण में आये, सभी को अंगीकार कर बिना किसी भेद-भाव के साधना में लगाया । उनमें उदारता, स्वाधीनता और निरभिमानता एवं सबके प्रति प्रेम का अद्भुत सामञ्जस्य था । उनके लिये सब अपने थे । छोटे बड़े, ऊँच नीच का भेद विभेद नहीं था ।

वह तत्व वेत्ता, तत्व अन्वेषक और महान युग द्रष्टा थे । उन्होंने बताया कि ईश्वर ऐसी अलौकिक शक्ति है जो सर्वत्र है और अपने शरीर में यह मुख्य रूप से हृदय में अवस्थित है तथा इसकी प्राप्ति के लिये किसी तरह के पाखण्ड, आडम्बर और दिखाने की आवश्यकता नहीं ।

उसका दीदार तो केवल शुद्ध हृदय में ही होता है । बस उसके लिये सच्ची जिज्ञासा और लगन होनी चाहिये । फिर भगवान की कृपा बश ऐसा संस्कार, सुयोग प्राप्त होता है कि अध्यात्म प्राप्ति का साधन सत्संग सुलभ हो जाता है । वह ईश्वर के सगुण और निर्गुण दोनों ही रूपों का प्रतिपादन करते थे । उन्होंने बताया कि हम मानवों की स्थिति सगुण है अतएव किसी ब्रह्मलीन सगुण का आधार लेकर तथा उसी के आश्रय होकर साधना में निरन्तर लगे रहने पर उस निर्गुण स्वरूप की अनुभूति होती है जो अनिर्वचनीय है । वह कहते थे कि अध्यात्म जीवन का मुख्य अंग है बिना इसके समावेश के जीवन की उपादेयता ही नहीं रह जाती । अतएव जीवन को अध्यात्म साधना में अपने स्व के तथा लोक, परलोक के कल्याण के लिये, अग्रसर करना परम आवश्यक है । वह कहते थे कि कर्म तो जीवन का अनिवार्य अंग है । संसार में रहते हुए एक क्षण भी इससे मुक्त नहीं है । इसीलिये उन्होंने योग और भक्ति का सामंजस्य करके उपासना पद्धति के अन्तर्गत साधना करने का उपदेश किया जो वर्तमान परिस्थितियों में सभी के लिये अनुकूल और व्यवहार में सुलभ है ।

उनकी साधना मन को साधने और निर्मल बनाने की है । अपने सद्गुरु अथवा इष्ट से भावात्मक और चिन्मय सम्बन्ध स्थापित करते हुये निरन्तर साधना में लगे रहने से सद्विवेक की जाग्रति होती है जो अध्यात्मिक लक्ष्य की उपलब्धि कराने में सहायक होता है । उनके प्रेम और साधना की पतित पावनी गंगा निरन्तर प्रवाहित हो रही है जिससे लाखों लोग कृत कृत्य हो रहे हैं ।

अन्त में उन परम कृपालु श्री सद्गुरु महाराज जी के चरण कमलों में सादर प्रणाम है जिनकी अहैतुकी कृपा का पार नहीं ।



भ्रम में और दर्शन में यह भेद होता है कि भ्रम वाले रूप का आकार क्षण-क्षण में बदलता रहता है और "दर्शन" वाली सूरत जितनी देर आँखों के सम्मुख रहेगी एक जैसी ही रहेगी, उसमें परिवर्तन नहीं होता । इसी से इसकी पहचान की जाती है ।

—पूज्य गुरुदेव

पूज्य गुरुदेव की देन—यह साधना

—श्री लखपति सिंह



[पूज्य गुरुदेव के अवतरण पर्व ३ नवम्बर को किसी ने 'दीप पर्व' कहा तो किसी ने 'प्रकाश पर्व' ! उन्होंने विश्व को एक सरल डगर दिखाई है जिस पर चल सारा समाज जीवन और जगत की हर समस्या का समाधान पा जाता है। यह डगर ही सार्वभौमिक साधना है जो जीवन पथ को सदा प्रकाशित रखती है। उन समर्थ गुरु के जन्म दिवस पर इसी साधना के सम्बन्ध में प्रस्तुत हैं लेखक के कुछ सत्य विचार—सं०]

श्री रामाश्रम सत्संग की साधना आज के युग में एक ऐसी बेमिसाल साधना है जो अपने आप में अनेक विशेषताओं को समेटे हुये जब जीवन के सामाजिक एवं आध्यात्मिक दोनों पक्षों को एक करती हुयी व्यक्ति को जीवन की चरम ऊँचाई और परम लक्ष्य को बिना भेद-भाव सबको मुक्त हस्त लुटा रही है।

एक ऐसी सरल साधना—जिसे स्त्री-पुरुष सभी कर सकें। पढ़े-लिखे ही करें, ऐसी बात नहीं। अनपढ़ और सीधे-सरल स्वभाव वाले व्यक्ति इसे और जल्दी पकड़ पाते हैं और थोड़े ही दिनों में बहुत उन्नति कर जाते हैं।

एक ऐसी साधना—जो एक ही साथ साकार की भी है, निराकार की भी और दोनों से परे की भी। आजतक साकार और निराकार अलग-अलग रहते आये हैं और दोनों में वाद-विवाद, राग-द्वेष, झंझट-झगड़े आदि होते आये हैं। मगर इस नयी साधना ने यह दूरी समाप्त कर दी है। यह साकार से प्रारम्भ होकर, सूक्ष्म निराकार में चलती हुयी उसके पार आतम देश में लय हो जाती है।

एक ऐसी साधना—जो कर्म उपासना और ज्ञान तीनों की एकता स्थापित करती है। कर्म को हल्का-सा स्पर्श करते हुये उपासना की भाव-भूमि से प्रारम्भ होकर ज्ञान में जाकर पूर्णरूपेण समाहित हो जाती है।

एक ऐसा साधना—जो एकदम बिना समय गँवाए प्रथम दिन से ही साधक को अपने रंग में रंगना प्रारम्भ करती है। दो-चार-पाँच दिन करने पर ही साधक इतना आकर्षित हो जाता है कि उसे लगता है कि वह जीवन में एक अद्भुत चीज पा गया है। यह साधना उसके अन्तःकरण को साफ सुथरा करके ईश्वर में उसकी श्रद्धा को गहरी और विश्वास को अटल बनाती है।

एक ऐसी साधना—जिसमें आकर्षण इतना है कि वह साधकों को पकड़ने के लिये आतुर दीखती

है। यह कठिन बोझ-सी मालूम नहीं होती और अल्प काल में ही साधक अपने को किसी और लोक का प्राणी समझने लगता है। उसके अन्दर एक ऐसी ज्योति जल उठती है कि वह अनायास ही गुरु शक्ति से खिंचता हुआ आत्मदेश के राजमार्ग पर बढ़ने लगता है।

एक ऐसी साधना—जो भक्ति और ज्ञान दोनों की पराकाष्ठा है। भक्ति का रंग ऐसा कि जड़-चेतन सभी में अपना प्रियतम ही नजर आता है, दर-दीवार भी दर्पण बन जाते हैं और ज्ञान भी ऐसा कि अपने सिवा कोई नजर नहीं आता, खुदी को समाप्त करके खुदा में पूर्ण लयता, पूर्ण दर्शन, पूर्ण मुक्ति।

एक ऐसी साधना—जो भक्ति और ज्ञान दोनों का समन्वय करती है। भक्त मुक्ति नहीं चाहता, वह द्वैत भाव को बनाए रखना चाहता है मगर यह साधना भक्ति के सरल-सीधे मार्ग से चलती हुयी द्वैत से अद्वैत में लय होती है। दूसरी तरफ ज्ञान मार्ग की कठिन-कठिन क्रियाओं और बीहड़ मार्गों से साधकों को बचाती हुयी ज्ञान का चरम बिन्दु पूर्ण-दर्शन और सोऽहं की उच्चतम भावभूमि में खड़ा कर देती है। इस अर्थ में आज की एक अकेली साधना है जो सामान्य जन समुदाय के अनुकूल है।

एक ऐसी साधना—जिसकी सुगन्धि तत्काल मालूम होती है, इसी जीवन में पूर्ण फल प्रदान करती है। यदि ठीक-ठीक बन गयी तो आपको इसी जन्म में इसी शरीर में रहते हुये मुक्ति का अमर फल खिलाकर तृप्त कर देती है। यह जीवन मुक्त की दशा बस यहीं देखने को मिलती है। जैसे शीशे में अपना चेहरा नजर आता है, आदमी यहाँ अपने आपको मुक्ति के आँगन में विचरता हुआ देखता है।

एक ऐसी साधना—जो अन्तर के मल-विक्षेप और आवरण को धोने के लिये किसी विशेष नियम-निषेध का पालन नहीं करवाती। आप इस साधना की रस्सी को पकड़कर एकाग्रभाव से धीरे-धीरे ही सही ऊपर उठते रहें तो देखेंगे कि मन की सारी मैल एक-एक कर झड़ती-गिरती समाप्त हो रही है और आपके विचार-स्वभाव, कर्म और व्यवहार सभी निर्मल बनते जा रहे हैं, उन पर आध्यात्मिक चमक जगमगाती जा रही है।

एक ऐसी साधना—जिसमें इष्ट या आराध्य का झमेला नहीं है। यह साधना आपको अपनी श्रद्धा और आस्था के अनुसार आराध्य को चुनने की भी छूट देती है। यहाँ गुरु को इष्ट-आराध्य माना जाता है मगर यदि किसी ने अपना आराध्य चुन लिया है तो उसे बदला नहीं जाता। बात यह है कि इष्ट के बदलने पर साधक का मूल्यवान समय उधेड़-बुन में समाप्त हो जाता है। वह सुलझने के बजाय और भी उलझ जाता है।

एक ऐसी साधना—जो किसी मजहब या सम्प्रदाय को जन्म नहीं देती। यह साम्प्रदायिक दीवारों के पार अपना मार्ग बनाती है। किसी भी धर्म या सम्प्रदाय का साधक इस साधना के द्वारा अल्पकाल में ही अपना लक्ष्य प्राप्त कर सकता है। यह अपने ढंग की अकेली साधना है जो हर मजहब और हर सम्प्रदाय के लिए खुली है और सबके लिए समान रूप से फलदायी है।

एक ऐसी साधना—जो आज के विषम और अशान्त युग में सामाजिक एकता, समानता और प्रेम का अद्भुत सन्देश देती है। सभी साधक चाहे वे किसी भी जाति-धर्म या सम्प्रदाय के क्यों न हों एक ही साथ, एक ही समान आसन पर बैठकर साधना करते हैं, भोजन करते हैं और एक परिवार के समान रहते हैं। और हर सेवा करने को सब

तैयार दिखते हैं। यह प्रेम का एक ऐसा नजारा होता है जिसे देखकर ही आदमी—आदमी बन जाता है।

एक ऐसी साधना—जिसमें साधक को एकाग्र-चित होकर देखने के सिवा कोई भी कठिन साधना नहीं करनी पड़ती। इसे द्रष्टा योग भी कहते हैं। गुरु से रिश्ता पुख्ता करने के लिये प्रारम्भ में थोड़ा प्रयास अवश्य करना पड़ता है, मगर जब सम्बन्ध स्थापित हो जाता है तब तो सिर्फ उसकी कृपा को बटोरना ही है, और कुछ करना नहीं।

एक ऐसी साधना—जिसमें लक्ष्य प्राप्ति के पूर्व कहीं रुकना नहीं है, कहीं कुछ पकड़कर बैठना नहीं है न आराध्य या इष्ट को, न साधना को न तो अपने आपको। यह साधना एक यात्रा है, दृश्य आते हैं, जाते हैं और साधक गुरु शक्ति से अनवरत आत्मदेश की ओर खिंचता जाता है।

एक ऐसी साधना—जो अधिकारी-अनाधिकारी सबको लुटाई जाती है। यह भी नहीं देखा जाता कि किसे इसकी प्यास है, किसे नहीं, सबके सामने अमृत भरा यह पात्र रख दिया जाता है। इससे जिन्हें प्यास नहीं, उन्हें भी इसकी प्यास जग जाती है और पीकर जीवन धन्य बन जाता है। यहाँ कान में चुपके से देने को कुछ नहीं, खुले हृदय से हृदय में ही उँड़ेला जाता है।

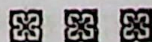
एक ऐसी साधना—जिसे समझाने की भाषा है—परावाणी। यह आत्मानुभूति की मौन वाणी है। इस साधना के समय न गुरु मुख से कुछ बोलता है न साधक। गुरु मौन भाव से अन्तर में शक्ति प्रदान करते हैं।

एक ऐसी साधना—जो सिद्धान्त नहीं, व्यवहार है। व्यवहार के बिना इसका कोई विशेष महत्त्व नहीं। यह रटने, जपने या पाठ करने की चीज एकदम नहीं है। यह तो विद्यार्थी की भाँति एक अध्ययन-अभ्यास है। पूज्य पण्डित जी महाराज ने इसे एक रिसर्च कहा है जहाँ सिद्धान्तों का सत्यापन होता है।

एक ऐसी साधना—जहाँ गुरुडम का पाखण्ड नहीं है। यहाँ गुरु और शिष्य की औपचारिक दूरी भी नहीं, यहाँ तो पिता-पुत्र का-सा प्रेम सम्बन्ध होता है। "उनका" कहना है कि 'तुम मुझे गुरु मत मानो, अपना एक हितैषी मान लो, साथी, मित्र या भाई मान लो, पिता मान लो।' मान लो कि तुम किसी व्यक्ति का नाम जानकर उससे मिलने जा रहे हो। न रास्ता मालूम, न स्थान, न तो उसे पहचानते ही हो। ऐसे में एक ऐसा आदमी मिल जाय जो उसे खूब अच्छी तरह जानता-पहचानता है, कई बार वहाँ आया-गया है, वह वहीं जा भी रहा है, उसका साथ हो गया। कितना अच्छा !

एक ऐसी साधना—जो साधक के अहं और पुरुषार्थ के मिथ्याभिमान को चकनाचूर कर देती है। ईश्वर को प्राप्त कर लेना साधक के बलबूते की चीज नहीं, यह गुरु कृपा पर निर्भर है। यह साधना दोनों के बीच सिर्फ सम्बन्ध बनाने-बढ़ाने का एक माध्यम है।

यह साधना—प्रेम का एक रिश्ता है साधना का काम उसी दिन समाप्त हो जाता है जिस दिन साधक के हृदय में सबके प्रति प्रेम की लहरें उठने लगती हैं। जड़ चेतन सबके भीतर परमात्मा की अद्‌भुत छवि नजर आने लगती है। यह रेगिस्तान के शुष्क मरुस्थल से हरे-भरे प्रेम के मरुद्यान में लाकर खड़ा कर देती है जहाँ बुलबुल की तरह परमात्मा ही चेहकता नजर आता है।



साधना और सत्संग प्रक्रिया

—श्री प्रो० महेन्द्रनाथ राय



'रामाश्रम सत्संग' भारतीय दर्शन और अध्यात्म के व्यावहारिक पक्ष के निदर्शन से जुड़ा ऐसा सत्संग मार्ग है, जिसकी जड़ें अतीत में गहरी हैं और ये जड़ें सांस्कृतिक इतिहास की सूफी साधना और सन्त मत से अपनी खुराक पाती रही हैं और इनका एक लम्बा सिलसिला है। इस सिलसिले के मील के पत्थर हैं—महात्मा रामचन्द्र जी महाराज और उन्हें केन्द्र में रखकर अनेक साधना मार्ग आज भी भारत में क्रियाशील हैं। इस साधना के अनेक घाट हैं किन्तु वे सभी एक ही 'सुरसरि' तक पहुँचाते हैं जिसमें अवगाहन कर साधक दैहिक और मानसिक प्रक्षालन करते हुए कृतकृत्य हो रहे हैं। महात्मा रामचन्द्र जी के योग्यतम शिष्यों में थे—परमपूज्य डॉ० चतुर्भुज सहाय जी जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन अपने यशस्वी गुरु के मिशन के लिये न्यौछावर कर 'साधन के अनुभव' जैसे ग्रन्थ का सात खण्डों में प्रणयन किया, साथ ही अध्यात्म पथ के पथिक के लिये बहुत सारे दूसरे-साधनात्मक अभिप्राय वाले ग्रन्थ-सुलभ कराये। इनकी गौरवमयी परम्परा का यथेष्ठ विकास परम पूज्य पंडित जी (पं० मिहीलाल जी शर्मा) के साधु व्यक्तित्व द्वारा हुआ। 'रामाश्रम सत्संग' विरागियों के लिये नहीं, बल्कि गृहस्थों के लिये शील और सदाचार की राह से आत्मिक-अध्यात्मिक उत्थान का निर्देश करने वाला ऐसा आध्यात्मिक संस्थान है जिससे जुड़कर आज के आपाधापी वाले युग में बहुत सारे भाग्यशाली कृतार्थ हो रहे हैं। पूज्य गुरुदेव के बाद गुरुमाता जिया माँ की स्नेहिल छाया में बड़े भैय्या डॉ० बृजेन्द्र कुमार एवं परम पूज्य पण्डित जी महाराज ने इस 'रामाश्रम सत्संग' को न केवल अखिल भारतीय स्तर पर बल्कि वैश्विक स्तर पर फूलने-फलने का मार्ग प्रशस्त किया। बड़े भैय्या और पूज्य पण्डित जी के धीर-गम्भीर और परम कारुणिक व्यक्तित्व के आश्रय में इस सत्संग परिवार को वह सब कुछ मिला जो आत्मिक उत्थान के लिये अपेक्षित होता है। इनके व्यक्तित्व के सान्निध्य में जो भी आये उनके सारे शाप-ताप मिटे, इन्हें देखकर ही उनके सारे पाप कटे और स्मरण कर गंगा स्नान की पावनता और पवित्रता की अनुभूति हुई। बड़े भैय्या और पूज्य पण्डित जी का सम्पूर्ण जीवन, उनकी रहनी-सहनी, चिन्तन-आचरण अपने गुरु और उसके मिशन को समर्पित एक आदर्श शिष्य-धर्म का अद्वितीय प्रतिमान सिद्ध हुआ। इन्हें देखकर, इनसे जुड़कर, इनके व्यक्तित्व की सुगन्ध से मुग्ध होकर अनेक अभिशप्त—सन्तप्त जन रामाश्रम सत्संग की शरण आये और जगत के भय-शूल, दुख-दाह, दम्भ-दूषण से सदा-सदा के लिये उपराम हो गये।

रामाश्रम सत्संग की साधना पद्धति बड़ी अनौखी है, बड़ी सरल और सुगम है। इसमें गुरु कृपा, प्रकाश स्वरूप गुरु का स्मरण और गुरु के प्रकाश को अपने अन्तर में धारण करने, उन्हें अपना आपा सौंपकर कुछ क्षणों के लिये फूल से भी हल्के हो

जाने की अनुभूति होती है। आज विश्वमानवता आस्था और विश्वास के संकट का अनुभव प्रतिपल कर रही है, लोग तनाव और द्वन्द्व की जिन्दगी जीते हुए भीतर से क्षत-विक्षत हो चुके हैं, उनके भीतरी व्रणों पर स्नेह और दुलार की मरहम-पट्टी लगाने और उन्हें जीवन के संघर्ष में आश्वस्थ करने वाला कोई नहीं है। जप तो चलता है किन्तु ध्यान का बल उनके पास नहीं है। देहवादी, उपभोगवादी मानसिकता में जीता हुआ आज का समाज अपने आत्मिक चैतन्य स्वरूप का विस्मरण कर चुका है। पश्चिम के लोग डॉलरों से आत्मिक शान्ति नहीं खरीद सके, इसलिये पूरब की ओर टकटकी लगाये हुये प्रेम और शान्ति का पाठ पढ़ने के लिये विकल-चित्त हैं, और एक हम हैं कि उनके जूठन को ही पाने में गर्व का अनुभव करते हुए अपने बाप-दादों की आर्ष परम्परा से जुड़ी आत्म विद्या की महिमा को ही भुला बैठे हैं। आज बड़े-बड़े मनोचिकित्सक और शरीर विज्ञानी यह स्वीकारने लगे हैं कि हमारे ७०% रोग मानसिक हैं। ध्यान प्रक्रिया के जरिये मन को कुछ क्षणों के लिये निर्विचार स्थिति में लाना—तनाव और द्वन्द्व का एकमात्र उपचार है। विडम्बना यह है कि रामाश्रम सत्संग में निर्धारित साधना पद्धति को हम जहाँ उपासना और पूजा के स्तर पर ही बहुत दिनों से लेते रहे हैं, आज उसकी अपरिहार्यता चिन्तक और विचारक, समय के दबाव में स्वतः निर्दिष्ट करने लगे हैं। ध्यान स्वतः एक ऐसी प्रविधि है जो हमें शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य प्रदान करने का अनिवार्य माध्यम है। पशु ध्यान नहीं करते, यह सर्जनात्मक क्षमता मात्र मनुष्य के पास है। ध्यान मनुष्य का परमात्मा पर कोई अनुग्रह नहीं है बल्कि इसे सम्पादित करने में सफल मनोरथ हो पाना—परमात्मा की—जीव पर, दया का ही परिणाम है। ध्यान जब आध्यात्मिक एवं परमार्थिक स्तर का दर्जा पा लेता है, जब आस्था और विश्वास के साथ, भक्तिभाव से सम्पादित होता है और जब ध्यान का केन्द्र कोई समर्थ सद्गुरु होते हैं तब उसमें रसमयता आ जाती है, तन-मन को एक विचित्र मस्ती प्रदान करने की क्षमता आ जाती है। महर्षि पातंजलि ने जो-जो इस प्रक्रिया के सन्दर्भ में निर्दिष्ट किया है और समर्थ गुरु ब्रह्मलीन परम पूज्य डॉक्टर साहब ने अपने 'साधना के अनुभव' में इस साधन प्रक्रिया के विलक्षण रहस्यों को अनुभूतिक एवं साधनात्मक तरीके से जैसे-जैसे खोला है—उसका महत्व तो वही समझेगा जो गुरु दरबार से अन्योन्याश्रित भाव से सम्बद्ध होगा।

'रामाश्रम सत्संग' की साधना पद्धति गृहस्थों के लिये सदाचरण के व्यावहारिक एवं पारमार्थिक मानक प्रदान करती है। यह जीवन संघर्ष में अनुकूल पथ का निर्देश करती है, थके और हारे को संजीवनी शक्ति प्रदान करती है, जीने और बर्ताव करने की सही दिशा देती है, यह व्यक्ति को विरागी नहीं, अनुरागी बनाती है। इसकी जीवन दृष्टि है कि सारा संसार परमात्मा का है, सारे लोग उसी के हैं—इसलिये सबसे ऐसा ही व्यवहार करो—जिसमें वह राजी रहे, जो उसे अच्छा लगे। जीवन में जो कुछ मिला है, उसे उसका प्रसाद और कृपा समझ कर उपयोग में लाओ, उसे अपने श्रम और पुरुषार्थ का पारिश्रमिक समझने का भ्रम मत पालो। 'साधन' के यशस्वी सम्पादक परमपूज्य स्वर्गीय ओमप्रकाश विरल जी ने भी इस दिशा में विशिष्ट महत्व के अनेक उद्गार व्यक्त किये। इस तरह 'रामाश्रम सत्संग' के विपुल आध्यात्मिक सत्साहित्य का अक्षुण्ण महत्व है। आज भी नयी पीढ़ी, विद्यालयों, महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों से जुड़े आचार्यों और शिष्य मण्डली के लिये—इन ग्रन्थों का अध्ययन-मनन निश्चित रूप से उनकी स्वस्थ

मानसिकता के संस्कार के लिये बहुत उपादेय होगा।

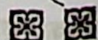
'रामाश्रम सत्संग' भगवत केन्द्रित सभी साधनात्मक पद्धतियों के प्रति पूर्ण उदार एवं सहिष्णु संस्थान है। सन्त मत की आचरण संहिता में उसका पूर्ण समादर रहा है। महात्मा रामचन्द्र जी महाराज के समय से ही सत्संगियों के लिये कुछ जीवनादर्श एवम् दिनचर्या के कार्यक्रम निर्धारित किये गये हैं। यथासम्भव सत्संगी आज भी उस निर्धारण का अनुगमन करते हैं। इस सत्संग में लोक व्यवहार, दूसरों से वर्ताव, आत्मविश्लेषण की समीचीनता एवं शील-सदाचार पर बहुत बल दिया गया है। 'सबहिं मानप्रद आप अमानी' यहाँ के सत्संगियों का बीजमन्त्र रहा है। परिश्रम की कमाई से प्राप्त अन्न को समर्पित भाव से ग्रहण करने, अपनी कमाई का सुनिश्चित अंश परोपकार एवं परमार्थ के कार्यों के लिये निकालने, सबकी सेवा करने और दूसरों की सेवा से बचने, जीवन में मेहमान जन के रहने के आदर्श यहाँ प्रतिष्ठित रहे हैं। सन्तत्व की महिमा के जो पाठ हम ग्रन्थों में पढ़ते रहे हैं, यहाँ के कुछ पुराने सत्संगियों में हम उसे मूर्तिमान पा सकते हैं। इस सत्संग से जुड़े साधकों और आचार्यों ने लोक धर्म और लोक-व्यवहार के निमित्त आचरण के आदर्श प्रतिमान गढ़े हैं। राष्ट्रीय और वैश्विक स्तर पर विश्व-मानवता के समक्ष उपस्थित समस्याओं का समाधान ढूंढ़ा है। दुआ, प्रार्थना एवम् सद्भाव में अन्तर्निहित शक्ति की विलक्षणता की प्रतीति—यहाँ के सत्संगी अपने जीवन में प्रतिपल करते रहते हैं।

'रामाश्रम सत्संग' में सम्मिलित होकर यहाँ की सत्संग-सुधा से अपने को सराबोर करने की छूट सभी को है, सभी खुदा के बन्दों को है। किसी का प्रवेश यहाँ प्रतिबन्धित नहीं है। यहाँ के होकर, जो भी गुरु के प्रकाश को अपने भीतर धारण करते हैं, उनकी रहनी-सहनी में आमूल परिवर्तन घटित होता है। शर्त सिर्फ यही है कि प्रतिदिन सुबह-शाम, बिना नागा १०-१५ मिनट की बैठक में कोई ब्याघात न आये। गुरु के समक्ष यहाँ अपना निजत्व समर्पित करना होता है और मनमुखी आचरण छोड़कर गुरुमुखी बनना होता है। गुरुमुखी बनना सरल नहीं—यह एकान्त रूप से गुरु-कृपा पर अवलम्बित होता है। ईश्वर के प्रकाश में हम उसके द्वारा बनाये संसार को देखते हैं लेकिन गुरु के प्रकाश में हम जगतनियन्ता को ही देखने-समझने में सफल-मनोरथ होते हैं। गोस्वामी तुलसीदास ने अपने 'रामचरितमानस' के बालकाण्ड में गुरु बन्दना के प्रसंग में लिखा है—

श्री गुरु पद नख मनिगन जोती।
सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती॥
दलन मोहतम सो सुप्रकासू।
बड़े भाग उर आवहिं जासू॥

बड़भागी हैं वे, जिनका मानस गुरु चरणों के दिव्य प्रकाश को धारण करने में कृतार्थ हुआ है। इस संसार में विचलित करने के लिए अनेक प्रलोभन हैं, आकर्षण हैं लेकिन जो इन प्रलोभनों और आकर्षणों से अविचलित रहते हुये गुरु चरणों में अपने को दत्तचित्त बनाये रहते हैं—उनसे बड़ा सौभाग्यशाली इस संसार में कोई दूसरा नहीं। ऐसे लोगों का व्यवहार और परमार्थ—दोनों समुचित तरीके से सम्पन्न हो जाता है। बस, ध्यान यही रखना है कि अपने केन्द्र से विपथगामी न बनें। यहाँ साधक के योग-क्षेम की समुचित सुरक्षा का प्रबन्ध होता है। श्रद्धाभाव से, भक्तिभाव से यहाँ जो एकबार आ जाते हैं, बस यहीं के होकर रह ही जाते हैं क्योंकि—

दोनों यहाँ कठिन हैं, रुकना और ठहर जाना।
कुछ मार ही ऐसी है, कुछ प्यार ही ऐसा है॥



सन्तों का स्वरूप लक्षण—'करुणा'

—श्री नन्दकिशोर शर्मा



प्रोफेसर रानाडे ने अपनी पुस्तक 'ईश्वर प्राप्ति का मार्ग (Path way to god)' में लिखा है कि आध्यात्मिक अनुभूतियाँ कभी विफल नहीं जातीं। प्रत्येक आध्यात्मिक अनुभव अपने साथ ईश्वरीय गुण लेकर आता है तथा धीरे-धीरे उन सभी ईश्वरीय गुणों का उत्कर्ष साधक में होता जाता है तथा अपने चरम उत्कर्ष में वह ईश्वरीय गुणों वाला हो भगवत् स्वरूप में प्रतिष्ठित होता जाता है। एक दृष्टि से—कोई व्यक्ति आध्यात्मिक दृष्टि से कितना महान तथा उच्च है इसका अनुमान इस बात से भी लगाया जा सकता है कि उसमें ईश्वरीय दिव्य गुणों का प्रादुर्भाव किस कोटि का तथा कितना पाया जाता है। अनेक सन्तों में इन ईश्वरीय दिव्य भावों के उत्कर्ष की चर्चा उनके जीवन गाथा लिखने वालों ने की है। उदाहरणार्थ श्री रामकृष्ण परमहंस में किस प्रकार ये दिव्य गुण अपने चरम उत्कर्ष को प्राप्त हुए थे इसका परिचय हमें 'श्री रामकृष्ण लीला प्रसंग' आदि ग्रन्थों के अध्ययन से प्राप्त हो सकता है।

इन ईश्वरीय गुणों में एक मुख्य गुण है 'करुणा'। इसी गुण के कारण ईश्वर को करुणामय, करुणा सागर आदि नामों से सम्बोधित किया जाता है। कहते हैं भगवान बुद्ध को जब बोधित्व प्राप्त हुआ तथा वे मुक्त स्वरूप को प्राप्त हुये तो एक बार उनके मन में समस्त संसार से विरक्त होने की इच्छा हुई। किन्तु जब उन्होंने देखा कि समस्त संसार घोर दुखों से पीड़ित है तब उन्होंने अपनी विरक्ति भावना छोड़ दी। वे जन कल्याण में लग गये। फलस्वरूप उन्हें और भी उच्च आध्यात्मिक स्थिति प्राप्त हुई। उस समय उनका नाम बोधि-सत्व हुआ जो साधारण मुक्त पुरुष 'अर्हत्' से उच्च स्थिति मानी जाती है।

कहते हैं बोधि-सत्व में महाकरुणा का उदय होता है। यह करुणा भाव सामान्य करुणा से महानतर है। महाकरुणा अहेतुकी होती है तथा बोधि-सत्व के स्वरूप से स्वतः ही बिना प्रयास प्रवाहित होती रहती है। उसका प्रभाव यह होता है कि जो भी व्यक्ति उनके सम्मुख आता है उस महाकरुणा के प्रकाश में प्लावित हो आनन्द में लीन हो जाता है तथा कल्याण के मार्ग की ओर उन्मुख होता है। जब अंगुलीमाल भगवान बुद्ध के सम्मुख हुआ तो स्वतः ही इस करुणा के प्रभाव से अपने समस्त तामसिक-क्रूर भावों से मुक्त हो आनन्द स्वरूप को प्राप्त हुआ तथा अन्ततः अत्यन्त उच्चकोटि की आध्यात्मिक स्थिति को प्राप्त हुआ।

इसी प्रकार की एक कथा वैष्णव आचार्य श्री विट्ठलनाथ जी के बारे में भी प्रचलित है। कहते हैं विट्ठलनाथ जी एक बार किसी यात्रा को जा रहे थे साथ में उनका पूरा समुदाय था—भक्त सेवक परिवारजन आदि तथा अनेक छकड़ों में अनेक प्रकार की सामग्री भी थी। अचानक एक डाकुओं

के गिरोह ने उनको देखा—सोचा, इतना बड़ा समुदाय है, अवश्य ही धनी होंगे। डाकुओं के सरदार ने अपने साथियों को आज्ञा दी—तुम अन्य छकड़ों को लूटो—मैं इनके मुखिया को देखता हूँ। ज्यों ही सरदार भगवत् स्वरूप श्री विट्ठलनाथ जी के सम्मुख हुआ—अचानक उसका हृदय बदल गया। उनके चरणों में पड़ गया वह। कहने लगा, भगवन्! "क्या मुझ जैसे पापी का भी उद्धार हो सकता है—जिसने पापों के अलावा जीवन में कुछ किया ही न हो।" श्री विट्ठलनाथ जी ने उसे उठाया। ढाढस बँधाया—बोले, 'ईश्वर तो अत्यन्त करुणामय हैं। मनुष्य इतने पाप कर ही नहीं सकता जितने भगवान की एक कृपा दृष्टि से ही समाप्त हो हो जाते हैं।' गुरु कृपा से उस डाकू ने उसी समय से अपना कुकर्म छोड़ दिया तथा शीघ्र ही उच्च आध्यात्मिक स्थिति को प्राप्त हुआ।

जो-जो व्यक्ति सम्पर्क में आये—जानते हैं कि इसी प्रकार का करुणा भाव परम पूज्य श्री गुरु महाराज, पूज्य जिया माँ, बड़े भैया एवं पण्डित जी महाराज में अपने चरम उत्कर्ष को प्राप्त हुआ था। उनका स्वरूप ही करुणामय हो गया था। कोई भी आ जावे—असत्संगी, धनी, निर्धन, पापी, पुण्यात्मा, सुखी, दुखी—सभी के प्रति उनका करुणा भाव उनके कल्याण के लिये स्वतः प्रकट होता था। कहते हैं गुरु महाराज की कृपा आचरण की दृष्टि से हीन व्यक्तियों पर विशेष होती थी।—वे कहते थे :—'पुण्यात्मा तो अपने पुण्य के बल से आगे बढ़ेंगे बेचारे इन पापियों का कौन उद्धार करेगा ?' इस करुणा भाव के फलस्वरूप ही जो भी उनके सम्मुख गया—एकदम स्तब्ध, आनन्दमय हो गया तथा कल्याण मार्ग की ओर उसका प्रवाह स्वतः हो गया। जिस प्रकार भगवान बुद्ध के आगमन पर उनकी करुणा से सिंचित होने हेतु अपारजन समूह बिना प्रयास के स्वतः ही एकत्रित हो जाता था ठीक वही दृश्य हमने इन महानुभावों के सत्संगों में देखा है। पागल की तरह लोग इनकी ओर खिंचे चले जाते थे—इसके लिए वे न रात देखते थे न दिन—न सर्दी न गर्मी या वर्षा। बस उनकी एक झलक के लिए अनेकों कष्ट सहकर वे एकत्रित होते हैं।

पूज्य पण्डित जी महाराज के कुछ प्रसंगों की चर्चा यहाँ अप्रासंगिक नहीं होगी। कुछ सत्संगी भाई गुरु महाराज के दर्शन हेतु आते हैं। गुरु महाराज पण्डित जी महाराज से उन्हें ध्यान कराने को कहते हैं। ध्यान के तुरन्त बाद उनके मन में माँस मदिरा त्यागने का भाव जागृत होता है तथा वे उसे सदैव के लिए त्याग देते हैं। बिना किसी के कुछ कहे इस प्रकार का भाव उस महाकरुणा का ही प्रभाव है जो सदैव जन कल्याण करती रहती है।

एक अन्य उदाहरण—एक अध्यापक महोदय—गलत संगति के कारण ही सही—अत्यन्त तामसिक भाव में स्थित हो गये थे। सदैव बन्दूक साथ, सभी लोग आतंकित। स्कूल कभी जाना नहीं। वेतन घर पहुँच जाता था। एक हाथ बिलकुल बेकार किन्तु तब भी बन्दूक का निशाना अचूक। आगये एक-बार उस करुणा सागर के सम्मुख। पूज्य पण्डित जी महाराज ने प्रेमपूर्वक बात की—ध्यान कराया—करुणा की, —कि क्या हो गई— । होती ही रहती है वह तो सदैव सभी के प्रति। वही व्यक्ति आज बिलकुल बदला हुआ—दूसरा ही कुछ हो गया। पूज्य पण्डित जी महाराज के प्रति भाव ऐसा—मानो वे तो बस अपने ही—एकदम खास हों। क्या हम सब लोग उनको अपना एकदम खास, अत्यन्त प्रिय, सबसे निकट नहीं समझते थे ?

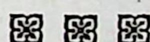
ये प्रसंग तो उदाहरण हेतु हैं। वास्तव में उनके

करुणा प्रसंगों का विस्तार तो इतना है कि यदि उन्हें एकत्रित किया जाय तो एक बृहद् ग्रन्थ ही बन जावे। उनके सम्मुख हुए हर व्यक्ति के पास उनकी इस करुणा स्वरूप की अनुभूति का कुछ न कुछ प्रसंग अवश्य है।

यह करुणा भाव व्यक्ति निष्ट नहीं होता, सार्वभौमिक होता है। सृष्टि के समस्त प्राणियों के प्रति स्वतः होता है। जब प्रेम स्वरूपा करुणामयी पूज्य जिया माँ ने टूण्डला के सत्संग भवन का उद्घाटन किया था तो पूज्य पण्डित जी महाराज ने उन पशुओं के भी कल्याण करने की प्रार्थना पूज्य जिया माँ से की थी, जो उस भवन के निर्माण में किसी न किसी प्रकार निमित्त हुये थे।

हमारे पूज्य गुरुजनों में यह करुणा भाव पूर्ण रूप से सभी प्राणियों के प्रति स्वतः था। इसीलिए सभी लोग उससे प्लावित हो उनसे प्रेम करते थे। पूर्णता में श्रेणियाँ नहीं होती। इसीलिये उनके प्रेम तथा करुणा में भी न्यूनाधिकता नहीं होती थी।

हमारे महाप्रभु, बोधिसत्व स्वरूप गुरुजनों का यही महाकरुणामय भाव आज भी हमें प्लावित कर कल्याण-मार्ग की ओर स्वतः प्रेरित कर रहा है—यह हम सभी लोगों का स्पष्ट अनुभव है।



रामाश्रम सत्संग, मथुरा के उपकेन्द्रों के सत्संग कार्यक्रम

मुगलसराय (भण्डारा) — **दिनांक २४, २५ एवं २७ दिस० १९९७**
सम्पर्क सूत्र—श्री फौजदार सिंह
न्यू महल, पटेल नगर
मुगलसराय

गया (भण्डारा) — **दिनांक २७, २८ एवं २९ दिस० १९९७**
सम्पर्क सूत्र—ऋषि कुमार
ह्वाइट हाउस कम्पाउन्ड
गया

आसनसोल — **दिनांक २९, ३० एवं ३१ दिस० १९९७**
सम्पर्क सूत्र—जगदीश प्रसाद बेडिया
जानकी एण्ड सन्स
मुन्शी बाजार, आसनसोल

बेचारे अज्ञानी हैं

—कु० अंजु श्रीवास्तव

★

श्री हरिदास जी यवन थे। बंगाल में उन दिनों मुसलमान शासकों का प्रभुत्व था। आये दिन उनके अत्याचार होते रहते थे।

एक मुसलमान काफिर हो जाय—हिन्दुओं के भगवान का नाम जपे, यह कट्टर काजियों को सहन नहीं हो सकता था। एक काजी ने स्थानीय शासक के यहाँ हरिदास जी की शिकायत की। हरिदास जी दरबार में बुलाये गये। काजी की सम्मति से शासक ने निर्णय किया—"हरिदास या तो क्रुफ छोड़ दें या बाजार में बेंत मारते हुए उन्हें घुमाया जाय। बेंत मारते-मारते उनके प्राण लिये जायँ।"

हरिदास जी बाँध दिये गये। उनकी पीठ पर सड़ासड़ बेंत पड़ने लगे। जल्लाद बेंत मारते हुए उन्हें बाजार में घुमा रहे थे। हरिदास जी की पीठ की चमड़ी स्थान-स्थान से फट गयी। रक्त बहने लगा। जल्लाद बेंत मारता और कहता—'हरिनाम छोड़ दे।'

हरिदास जी कहते—'एक बेंत और मारो, पर एक बार और हरि का नाम लो।'

बेंतों की मार से जब वे मूर्छित हो गये, उन्हें मृत समझ कर गंगा जी में फिकवा दिया वहाँ के शासक ने। हरिदास जी मरे तो थे नहीं। वे भगवती भागीरथी की कृपा से किनारे लगे। चेतना आने पर भगवान् से उन्होंने पहिली प्रार्थना की—'काजी, शासक और बेंत मारने वालों को क्षमा करना नाथ! **बेचारे अज्ञानी प्राणी हैं वे।'**



अविस्मरणीय मंजुल क्षण

—श्री शिव प्रसाद शर्मा



परम पूज्या जिया माँ की वृद्धावस्था एवं स्वास्थ्य परन्तु परम पूज्य पं० जी महाराज की अनुनय विनय ने उन्हें श्री द्वारकापुरी चलने के लिये तैयार कर ही लिया। पूज्य पं० जी की इच्छा देख परम श्रद्धेय बड़ भैया डा० श्री बृजेन्द्र कुमार जी ने भी जाने की अनुमति दे दी।

वह यात्रा क्या थी; उसकी स्मृति; आज भी अनायास ही नेत्र बन्द कर दिव्य आनन्द के आकर्षण में बरबस मौन तथा महामौन हो जाने की सक्षम प्रेरक बन जाती है। फिर भी उनकी कृपा जो भी अभिव्यक्त करा सके उसी के कुछ उपादेय अंश नीचे उद्धृत कर स्वान्तः सुखाय लिपि बद्ध करने का प्रयास है।

परम पूज्य पं० जी महाराज ने जिया माँ की प्रसन्नता तथा उनकी समुचित सुख सुविधा का ध्यान रखने के लिये पूज्यपाद श्री विरल जी की माँ से भी इस यात्रा में चलने का आग्रह किया तथा पूज्य भाई साहब श्री प्रभुदयाल जी से भी साथ चलने को कहा।

अब तो इस चलते फिरते तीर्थराज की छवि का क्या वर्णन किया जाय। श्री गोस्वामी जी महाराज के अनुसार—

मुद मंगलमय संत समाजू।
जो जग जंगम तीरथ राजू॥

राम भक्ति जहँ सुरसरि धारा।
सरसइ ब्रह्म बिचार प्रचारा॥

बसंत की बासंती छटा पर बड़ौदा भण्डारा हुआ करता था। उसी के पश्चात् आगे श्री द्वारका जी जाने का कार्यक्रम निर्धारित हुआ। मथुरा से बड़ौदा के बीच के सभी बड़े-बड़े स्टेशनों पर जिया माँ के दर्शन की अकुलाहट लिये कितने ही प्रेमीजन श्रद्धा-सुमन निवेदित करने के लिये आते रहे।

पूज्य पं० जी महाराज तो जिया माँ की इस भव्य स्वागत की झाँकी से आह्लादित अपने नेत्र सरस एवं सजल ही किये रहे। भक्त और भगवान की इस मंजुल मनोहारी भावमयी छटा ने पूरे शयन-यान को तीर्थयान ही बना दिया था।

सभी यात्री प्रसाद ग्रहण कर नेत्रों में जिज्ञासा संजोये एक सच्चा समाधान चाह रहे थे—हम सबको बड़भागी बनाने वाले ये कौन महापुरुष यात्रा कर रहे हैं जिनके इस कोच में विराजमान होने से ही उसे साक्षात् स्वर्ग रूप में परिणित कर दिया है।

बड़ौदा से वीरमगाम के आगे उन दिनों मीटर गेज से यात्रा करनी पड़ती थी। वीरमगाम एक मुसलमान भक्त भाई श्री यीरू भाई तथा एक अच्छे महात्मा जो मद्रासी बाबा के नाम से वहाँ प्रसिद्ध थे अपने अनेक प्रेमियों के साथ जिया माँ के दर्शन के

लिये फूलमाला तथा जलपान आदि लिये आ गये। हम सभी यह दृश्य देख-देख कर अवाक् थे। धन्य थी मेरी जिया माँ जिनकी स्नेहिल कृपा कटाक्ष ने पलभर में ही उन सबको अपनी दिव्यता की झलक से विह्वल कर दिया।

भावनगर, राजकोट तथा जामनगर आदि स्टेशनों पर ऐसे स्वागत के दृश्य देखते-देखते कीर्ति एक्सप्रेस नाम की गाड़ी मूर्त्त रूप कीर्ति होती हुई आखिर द्वारका स्टेशन पहुँच गयी।

वहाँ पहुँचकर कुछ विश्राम के उपरान्त मुख्य-मुख्य मन्दिरों में जाकर दर्शन किया गया। आश्चर्य ! जिया माँ अत्यन्त प्रसन्न थीं कहीं थकान का लेश भी नहीं।

दूसरे दिन सायंकाल मुख्य मन्दिर के भव्य आरती वन्दन के समय सभी लोग उपस्थित हो गये थे। पूज्य पं० जी महाराज ने साथ में गये एक-एक सत्संगी भाई को भगवान के समक्ष उपस्थित किया तथा पुजारी जी से आशीर्वाद की याचना की। उस समय उनकी क्या स्थिति थी यह मुझ सरीखा अबोध क्या अनुमान कर पाता। परन्तु भगवान के श्री विग्रह के समक्ष परदुख कातरता की विनम्रता की गिड़गिड़ाहट उनमें मूर्त्तरूप भास रही थी।

इसी बीच पूज्य पं० जी से वहाँ के पुजारी जी ने कहा कि आप लोगों के नाम तथा गोत्र क्या है ? सरल शब्दों में परमपूज्य का उत्तर था—हम सभी एक ही परिवार के हैं तथा हम सबका गोत्र है—कुलश्रेष्ठ ! सच्ची परमगुरु की भक्ति तथा समर्पण का भाव सतत् हम सभी के लिये एक दिशा बोध है।

इसी प्रकार ओरवा जाकर भेट द्वारका का दर्शन भी अपने आप में अनूठा रहा। जिया माँ रेलवे स्टेशन से समुद्र तट काफी दूर होने के बावजूद भी पैदल ही गयीं और वापस आयीं पर उनकी प्रसन्नता उत्तरोत्तर बढ़ती ही गयी।

यह दिव्य यात्रा पुनः वापसी के लिये प्रारम्भ हुई। अहमदाबाद प्रातःकाल पहुँचे। उस समय अहमदाबाद में ज्यादा सत्संगी भाई नहीं थे। भाई श्री शिवपूजन गुप्ता ने ही सभी का यथेष्ट सत्कार कर सत्संग करवाया तथा सायं पाँच बजे अहमदाबाद से चलने वाली गाड़ी से विदाई की। रात दस बजे आबूरोड में प्रेमी भाई भोजन लेकर आये। यह गाड़ी अगली प्रातः लगभग दस बजे जयपुर पहुँची।

जिया माँ के दर्शनार्थ जयपुर में तो काफी भीड़ ही आ गयी। जिया माँ तो साक्षात् पवित्रता की मूर्ति ही थीं। अतः उनकी ट्रेन की यात्रा के नियम भी बड़े कठिन थे। उनका पालन तो वे समर्थ ही कर सकती थीं औरों के लिये तो वह दुःसाध्य नहीं अपितु असाध्य थे। अतः जयपुर के प्रेमी भाई जिया माँ से वहीं उतर जाने की अनुनय विनय करने लगे। उन सबकी उत्कट अभिलाषा ने एक अभूतपूर्व ही दृश्य उपस्थित कर दिया।

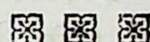
सभी को एक बलवती आशा थी कि परमपूज्य छोटे भाईसाहब डा० श्री नरेन्द्र कुमार जी के आग्रह पर तो मान ही जायेंगी। परन्तु धन्य है परमपूज्य जिन्होंने माँ से मुखर रूप से कुछ भी नहीं कहा; केवल माँ की इच्छा ही देखते रहे।

सत्संगी भाइयों ने अब पूज्य प० जी महाराज

से प्रार्थना किया कि आप जब तक नहीं कहेंगे; माँ रुकेंगी नहीं। लम्बी यात्रा की थकान है। इस समय जो हुआ वह साधकों के लिये सतत् चिन्तनीय है।

सभी की विनय से द्रवित हो पूज्य पं० जी महाराज ने जिया माँ की ओर हाथ जोड़कर कहा—जिया माँ जैसा आदेश करें। जिया माँ ने पूज्य पं० जी से ब्रज की सरस भाषा में कहा—पंडित जीहू मेरे ऊपर छोड़ रहे हैं, वृजेन्द्र ने कहा था सफर लम्बा है सीधे आजाइयेगा।

पूज्य पं० जी बड़े विनीत भाव से हाथ जोड़कर खड़े हो गये—बोले माँ ! मुझ से भूल हो गयी। क्षमा कर दीजिये। सबके बीच भक्त और भगवान की महिमा मुखर हो उठी। जिया माँ सीधे मथुरा पधारीं। यहाँ दोनों भाई आगमन की बाट जोहते ही मिले। स्मृति पटल पर इस पावन संस्मरण की प्रेरक जगत्जननी हम सब पर कृपा करें।



★ वाणी कल्याणी ★

जब तक शरीर रहता है, साधना में तीन अवस्थाएँ बराबर आती रहती हैं—कभी स्थिरता और आनन्द कभी चंचलता और कभी मूढ़ता व आलस्य। यह तीन गुण सत, रज और तम के प्रभाव से होता है। ऊँची अवस्था में ये तीनों सूक्ष्म रूप से सम्मुख आते हैं और निचली या प्राकृतिक अवस्था में स्थूल रूप से इनका हमला होता है अभ्यासी जितना आगे बढ़ता जाता है उतनी ही गुणों की स्थूलता कम होती जाती है।

—पूज्य गुरुदेव

❀ भगवत् कृपा से प्राप्त साधन सामग्री उपलब्ध है तभी शीघ्र से शीघ्र परमात्मा को जान लिया जाय तो सब प्रकार से कुशल है और मानव जीवन की परम सार्थकता है। यदि यह अवसर हाथ से निकल गया तो महान् विनाश हो जायगा। बार-बार मृत्यु रूप संसार के प्रवाह में बहना पड़ेगा। फिर रो-रोकर पश्चाताप करने के अतिरिक्त कुछ नहीं रह जाता।

❀ जिस प्रकार श्रद्धा और विश्वास को मन में लाने की आवश्यकता है उसी प्रकार राग और द्वेष को मन से निकालने की भी आवश्यकता है। जब हम राग और द्वेष से ऊपर उठते हैं तभी हमें उनके सच्चे स्वरूप के दर्शन होते हैं। वहीं पर हमें पूर्ण श्रद्धा और विश्वास का दर्शन होता है।

—पूज्य पण्डित जी

श्री महात्मा जी महाराज के पीयूष उपदेश

★

[पूज्य श्री गुरुदेव ने साधन के सन् १९३३ के दिसम्बर अंक में ब्रह्मलीन समर्थ सन्त श्री रामचन्द्र जी महाराज के तीन उपदेश (तीन प्रवचन) प्रकाशित किये थे। उन्हीं अमृत वचनों से कुछ पीयूष बिन्दु प्रेमी पाठकों की सेवा में समर्पित हैं। हम सभी साधकों के लिये ये प्रकाश दीप हैं। —रुद्र]

[१]

ईश्वर के लिये तड़प होना तथा आत्मिक उन्नति की चाहना रखना अधिकारी का लक्षण है।

[२]

मैं सत्संगी उसको समझता हूँ जो सत् के ग्रहण और असत् के त्याग के लिये गुरुमत से काम करें।

[३]

'गुरुमत' उस शिष्य को कहते हैं जो मन वचन और कर्म से गुरु की आज्ञा में ही चले। मनमत न बने।

[४]

निष्कामता के साथ अभ्यास करो और सबकी सेवा करने को हर समय उद्धृत रहो। मनुष्य मात्र की सेवा करना ही ईश्वर की पूजा है।

[५]

सन्तों से प्रेम करने के लिये सन्तों के गुण सीखने चाहिये।

[६]

सरलता और साधुता स्वभाव में आ जाना ही महान पद कहलाता है।

[७]

अपने दिल की किताब को पढ़ना सीखो। अंतःकरण ही सच्चा पथ प्रदर्शक है। परन्तु तुमने उसको इतना कुचल दिया है कि निर्बलता के कारण जोर से बोल भी नहीं सकता। इसीलिये तुम चोट पर चोट खाते हो और दुःख उठाते हो।

यहाँ की साधना से तुम्हारा अंतःकरण और तुम्हारा आत्मा बलवान बनेगा। इसके द्वारा ही तुम विजय प्राप्त कर सकोगे। उस समय तुम्हें

आसुरी वृत्तियाँ छोड़कर भाग जायेंगी और तुम आनन्द की निद्रा ले सकोगे।

[८]

विवेक शक्ति—हमको सत् असत् की तमीज सिखाती है।

—चैतन्य और अचैतन्य को बताती है।

—माया और ब्रह्म के रूप को समझाती है। विवेक के पश्चात् फौरन वैराग्य प्रारम्भ हो जाता है।

[९]

याद रहे—सन्त मत के अनुसार विवेक और वैराग्य कोई साधन नहीं हैं। यह दूसरे साधनों के नतीजे (परिणाम) हैं। जब तक अंतःकरण निर्मल नहीं बनेगा, जब तक मन, बुद्धि, चित् माँज नहीं दिया जायेगा, जब तक अहंकार की सात्विकी शक्ति को उभारा नहीं जायेगा तब तक न विवेक की पूरी फुरना होगी और न पूर्ण रूप से वैराग्य आवेगा। क्योंकि विवेक—अहंकार और बुद्धि तत्व में रहकर ही अपना कार्य करता है।

[१०]

याद रहे—वैराग्य भी साधन ही है। अन्तिम लक्ष्य नहीं। जब तक दिल में त्यागने अथवा वैराग्य प्राप्त होने का ख्याल मौजूद है तब तक समझ लो कि अहंकार देव ने हमारा पीछा नहीं छोड़ा और न अभी माया से हम मुक्त हो पाये। इसलिये धीरे-धीरे त्याग के ख्याल को कम करना शुरू करो। यहाँ तक कि जो कुछ तुम हो वही रह जाओ—

"तर्क दुनिया, तर्क उक़बा,
तर्क मौला, तर्क - तर्क"

[११]

याद रहे—यदि आप लोगों ने समाधि की अवस्थाओं को ही सब कुछ समझ रखा है और यदि तुम अन्तरीय शब्द और अन्तरीय रूप पर ही मोहित हुए बैठे हो तो मैं कहूँगा की अभी तुम पिछड़े हो, तुमको बहुत सा रास्ता तय करना अभी बाकी है। जब तक विवेक द्वारा अपने दोषों को देखने और दूर करने में कामयाब न हो जाओगे और जब तक सदाचारी और यथार्थज्ञानी नहीं बन जाओगे तब तक भवसागर में ही गोते खाते रहोगे, मुक्ति तुम्हें नहीं मिल सकेगी। ओम् शम्।

चयन—श्री डी० एस० तोमर

रामाश्रम सत्संग, मथुरा के उपकेन्द्र

बलिया का सत्संग कार्यक्रम

दिनांक २१ दिसम्बर '६७	—	सायं ७ से ९ बजे तक
दिनांक २२ दिसम्बर '६७	—	प्रातः ८॥ से १०॥ बजे तक
	—	सायं ७ से ९ बजे तक
दिनांक २३ दिसम्बर '६७	—	प्रातः ८॥ से १०॥ बजे तक

स्थान—श्री मुरली मनोहर, महाविद्यालय, बलिया

सम्पर्क सूत्र—श्री उमा शंकर, प्रोफेसर्स कालोनी, बलिया

समाचार इधर-उधर के



रामबाण औषधि : करेला

करेला यूँ तो खाने में कड़वा लगता है पर इसके कई औषधीय गुण हैं। यह हमारे शरीर के लिये बड़ा ही फायदेमन्द है। करेले में विटामिन 'ए' होता है, विटामिन सी, लोहा और फास्फोरस भी कम मात्रा में पाया जाता है। करेला निम्न रोगों में सहायक होकर उपचार करता है।

—गठिया के रोगी को करेले का भर्ता बनाकर खाने से गठिया की सूजन कम होती है।

—बवासीर के रोगी को एक चम्मच करेले के रस में एक चम्मच शक्कर मिलाकर खिलाने से खूनी बवासीर में लाभ होता है।

—एलर्जी सम्बन्धी त्वचा रोग होने पर इसे घिसकर लेप को नियमित लगाने से त्वचा रोग कम होते हैं।

—उल्टी-दस्त होने पर बच्चों को ३ बीज करेले के और ३ बीज काली मिर्च के पानी के साथ घिसकर देने सेउल्टी-दस्त बन्द हो जाते हैं।

—जलोदर के रोगी को ताजा करेले का रस पिलाने से लाभ होता है।

—मधुमेह के रोगी के लिये करेला बड़ी उपयोगी दवा है। करेले के टुकड़ों को सुखाकर, पीसकर चूर्ण तैयार कर इस चूर्ण को ५-६ ग्राम की मात्रा में पानी के साथ लेने से लाभ होता है।

—पेट के कीड़ों का शत्रु करेला है। पेट में कीड़े होने पर इसके रस का नियमित सेवन करने पर पेट में कीड़े मर जाते हैं।

—यकृत के रोगी के लिये करेला रामबाण औषधि है। करेले का सेवन करने एवं इसका पानी निकालकर पीने से यकृत सम्बन्धी बीमारियाँ दूर होती हैं।

—करेला कब्ज को दूर करता है, भूख बढ़ाकर पाचन शक्ति बढ़ाने में सहायक होता है। खाँसी, प्रमेह, बुखार को भी कम करता है।

जब कान में दर्द हो तो इन्हें अजमाएँ

हमारा शरीर प्रकृति की अमूल्य देन है। शरीर के एक-एक अंग का अपना महत्व है। विज्ञान ने आज हर क्षेत्र में बहुत उन्नति कर ली है, लेकिन प्रकृति पर वह विजय नहीं पा सका है। जो कमी शरीर के अंग में हो जाए उसे पूरा करने में वह

बात नहीं आ पाती जो प्रकृति द्वारा स्वयं हो जाया करती है। आँख, कान, नाक, हाथ, पैर सभी अपना-अपना कार्य सुचारू रूप से करते हैं, पर इनमें से एक के शिथिल या निष्क्रिय पड़ जाने पर पूरा शरीर प्रभावित होता है। मसलन कान की छोटी तकलीफ को हम प्रायः नजरअन्दाज कर देते हैं, इसका परिणाम फिर भयंकर होता है। जैसे— कान में दर्द, कान बहना, कान में कीड़े आदि। सावधानी बरतते हुए हम घर में आसानी से इलाज कर सकते हैं। बार-बार अस्पताल जाने और खर्चीले इलाज से बच सकते हैं। इन उपायों को आप भी आजमा कर देखिये।

—गाय के आधा किलो दूध में २० ग्राम घी डाल कर तीन दिन लगातार पीने से दर्द मिट जाता है।

—बकरी के दूध में जरा सा सेंधा नमक मिलाकर और गर्म करके कानों में डालने से दर्द जल्द ही खतम हो जाता है।

—भाँग के हरे पत्तों का रस जरा-सा गर्म करके २-३ बूँद कान में टपकायें फायदा करेगा।

—दस ग्राम घी में १० ग्राम कपूर पकायें जब पक जाये तब उतार कर शीशी में भर लें। जब आवश्यकता हो तब थोड़ा गर्म करके २-२ बूँद कान में डालें। दर्द जाता रहेगा।

—प्याज का रस तनिक सा गर्म करके कान में डालने से कान का दर्द तुरन्त ठीक हो जाता है।

यदि कान बहने लगे तो

—एक ग्राम हरताल बारीक पीसकर ५० ग्राम सरसों के तेल में इतना पकाएँ कि तेल से धुआँ निकलने लगे फिर आग से उतार कर छान लें। इस तेल की ४-५ बूँद कान में डालने से पुराने से पुराना कान बहना दो-तीन दिन में बन्द हो जायेगा।

—पीली कौड़ी की भस्म बनाकर एक ग्रेन (आधी रत्ती) कान में डालें। ऊपर से ५-७ बूँद नींबू का रस टपका दें। कान से मवाद बहना बन्द होगा और कान दर्द भी जाता रहेगा।

—बैंगन को जलाकर कान में धूनी देने से कान के कीड़े बाहर आ जाते हैं फिर पैदा नहीं होते।

—तारपीन का तेल २-२ बूँद कानों में डालते रहने से कान के कीड़े बाहर आ जाते हैं।

६० ग्राम सरसों के तेल को किसी बर्तन में डालकर गर्म करें, इसमें ४ ग्राम मोम डाल दें। जब मोम पिघल जाये तो आँच पर से उतार लें फिर उसमें ८ ग्राम पिसी फिटकरी मिला दें—बस दवा तैयार है। जब सैकड़ों दवायें व्यर्थ हो चुकी हों और कान बहना बन्द न हो तो इस दवा का चमत्कार देखिये। ३-४ बूँद दिन में दो बार डालें। कान को रुई से साफ करें।

[धीर साप्ताहिक से साभार]

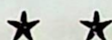
शोक समाचार

अत्यन्त दुःख के साथ सूचित किया जाता है कि--

साधन प्रेस, मथुरा के श्री मुन्ने खाँ का ६ अक्टूबर को, आरा के डा० बच्चन शरण वर्मा जी के भाई के पुत्र का १८ अक्टूबर को, दरभंगा के श्री बलभद्र चौधरी जी का २१ अक्टूबर को, बागदुल्हन के श्री श्याम नन्दन प्रसाद जी के भाई का २ जुलाई को, सिवान के श्री पवन मिश्र जी के साला का ५ सितम्बर को, डुमरी के श्री दुर्गा प्रसाद जी के बड़े भाई का १६ सितम्बर को, जाखल के श्री रामराम चौधरी जी का १८ सितम्बर को, पटना के श्री ईश्वरी प्रसाद जी का १२ सितम्बर को, रामनगर थाने के श्री सिद्धेश्वर प्रसाद द्विवेदी जी की माँ का १६ सितम्बर को, खानपुर के श्री मोतीलाल जी का १८ सितम्बर को, अहमदाबाद के श्री जानकी प्रसाद जी का २ अक्टूबर को, पहाड़पुर के मंगर चौधरी जी का २ अक्टूबर को, नागीपुर के शेष प्रसाद तिवारी जी की धर्मपत्नी का २३ अगस्त को, धुरकुण्डा के श्री शिवप्रसाद शर्मा जी का ७ सितम्बर को, ललितपुर के चिन्तामणि जी की माता जी का १६ अक्टूबर को, रामपुर के श्री नवलकिशोरजी का २६ अगस्त को, राजेन्द्र प्रसाद शर्मा जी के जीजाजी का २५ सितम्बर को, देवनगर सोनीपत के पृथ्वी सिंह जी के ताऊजी का १० अक्टूबर को, बिरमीतापुर के श्री वेलागोप जी के पिताजी का एवं उमाजी की माताजी का अक्टूबर में, सारस्वा के लक्ष्मी नारायण जी का ६ अगस्त को, जाखल के श्री भरतसिंह जी का २६ अगस्त को, नीमोदा के श्री पन्नालाल जी शर्मा का ३० अगस्त को, पटना के श्री लक्ष्मीकान्त पाण्डे जी के लड़के का २० अगस्त को, ग्राम कुमरई के श्री हरप्रसाद विश्वकर्मा का १ अगस्त को, धनडीहाँ भोजपुर के श्री गौरीशंकर सिंह जी के पुत्र का २० अगस्त को, भागलपुर के वासुकीनाथ गुप्ता जी का ८ सितम्बर को, गंगतुआ के श्री नागेश्वर पाण्डे जी की लड़की का ७ सितम्बर को, वीरमित्रापुर के श्री गंगवा गोप जी का ३ सितम्बर को, भिलाई के मिसेज कपूर का २७ सितम्बर को, मुजफ्फरपुर बिहार के श्री प्रेमचन्द्र लाल जी के पिताजी का ११ अगस्त को, गंडई के श्रीचन्द जी की पूज्या माताजी का २७ अक्टूबर को, शिवराजपुर के श्री गंगासिंह जी का ११ अगस्त को, वाराणसी के श्री हरिहा प्रसाद जी के पुत्र का ७ सितम्बर को, पटना के श्री मोहन मुरारी प्रसाद सिन्हा जी की माताजी का ८ अगस्त को, जनतानगर कानपुर के श्री पारसनाथ जी की माताजी का १४ सितम्बर को, आसनसोल के श्री आर. एस. पण्डित जी के भतीजे का ६ सितम्बर को, धनबाद के श्री नन्दकिशोर जी के भाई का १८ अक्टूबर को, झाँसी के श्री हरदयाल श्रीवास्तव जी के पुत्र का १३ अक्टूबर को, पचमढ़ी के अमृतलाल जी की पूज्या माताजी का १४ अक्टूबर को, पूर्णिया के श्री सीताराम रजक जी की दादी का २ सितम्बर को, मेजर आर. के. राय जी की पुत्री का १२ अक्टूबर को, प्रयाग के श्री रमेशचन्द्र जी की पूज्या माताजी का ११ अक्टूबर को स्वर्गवास हो गया।

परम पूज्य गुरु महाराज जी से प्रार्थना है कि दिवंगत आत्माओं को शान्ति एवं शोक सन्तप्त परिवारीजनों को धैर्य प्रदान करें।

राजस्थान तथा बिहार सरकार द्वारा स्वीकृत

 साधन के नियम

★ ★

१. गूढ़ तथा अनुभवी गुप्त रहस्यों को सरल भाषा द्वारा जनता तक पहुँचाना तथा सदाचार की शिक्षा देना "साधन" का मुख्योद्देश्य है।

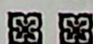
२. **साधन प्रत्येक मास की २०-२१ तारीख को प्रकाशित होता है। जिन ग्राहकों को पत्रिका ३० तारीख तक न मिले, उन्हें डाकखाने तथा कार्यालय से तलाश करना उचित है। अंक न मिलने पर एक माह के अन्दर सूचित करने पर अंक दोबारा भेज दिया जायेगा।**

३. साधन में आध्यात्मिक, सामाजिक तथा शारीरिक उन्नति के लेख ही छापे जायेंगे। राजनैतिक तथा अश्लील लेख भेजने का कोई भी सज्जन कष्ट न करें।

४. लेखों को घटाने बढ़ाने और छापने न छापने का अधिकार सम्पादक को रहेगा, परन्तु लेख प्रकाशित नहीं होने पर सम्पादक उत्तरदायी न होगा। लेख सरल भाषा में कागज के एक ओर ही स्वच्छ लिखे हों।

५. ग्राहकों को पता व ग्राहक नम्बर स्वच्छतापूर्वक लिखना चाहिए। उत्तर के लिए टिकिट भेजना उचित है। बिना ग्राहक नम्बर के विलम्ब हो सकता है।

६. साधन का वार्षिक मूल्य रु० ६०/– है। एक प्रति का मूल्य रु० ५.०० है। केवल अगस्त १९९७ विशेषांक का मूल्य १२.०० है। एक वर्ष से कम के ग्राहक नहीं बनाये जायेंगे।



Reg. No. of R. No. 2959/57 Postal Regd No. MTR - HO - 12

Licence No. 001/ 97 to Post without prepayment



प्रबन्ध सम्पादक : आलोक कुमार, साधन हिन्दी मन्थली कार्यालय, मथुरा.
प्रकाशक : हेमेन्द्र कुमार, साधन हिन्दी मन्थली कार्यालय, डैम्पियर, नगर, मथुरा
मुद्रक : हेमेन्द्र कुमार, साधन प्रेस, डैम्पियर नगर, मथुरा.

तार का पता - साधन प्रेस • टेलीफोन - 404545, 404066

दिसम्बर १९९७

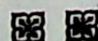
साधन

संस्थापक -
समर्थ गुरू परम सन्त डा. चतुर्भुज सहाय जी

ॐ

रामाश्रम सत्संग, मथुरा

इस अंक में





पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसो धिया ।
पुनन्तु विश्वा भूतानि पवमानः पुनातु मा ॥
पवमानः पुनातु मा क्रत्वे दक्षाय जीवसे ।
अथो अरिष्टतातये ॥ —अथर्व० ६-१९

—दिव्य जन मुझे पवित्र करें । मननशील ज्ञानी लोग अपने मन से और बुद्धि से मुझे पवित्र बनावें । सब भूत मुझे पवित्र करें । पवित्र आचरण वाला मुझे पवित्र करे । कर्म, बल और दीर्घआयु के लिए पवित्र आचरण करने वाला ज्ञानी मुझे पवित्र करे । इस कल्याण का विस्तार हो ।

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

वर्ष : ६५
अंक : ५

दिसम्बर १९९७

वार्षिक मूल्य : रु० ६०.००
इस अंक का : रु० ५.००

卐 विनय 卐

ऐसी कीजै साहब ! दाया ।
कृपा कटाक्ष होय जन ऊपर, छूट जाय मन माया ।
सोवत मोह निशा में निसदिन, तुम हो कृपाल जगाया ॥ १ ॥
जन्मत मरत अनेक बार प्रभु, तुम गुरु होय लखाया ।
"भीखा" केवल एक रूप हरि, व्यापक त्रिभुवन राया ॥ २ ॥

—सन्त श्री भीखा साहब

अमृत-बिन्दु

वैराग्य की सीढ़ियाँ

—परम पूज्य श्री गुरुदेव



[जिस प्रकार भक्ति की पराकाष्ठा "अनुराग" है उसी तरह वैराग्य की पराकाष्ठा का नाम त्याग है। वैराग्य और त्याग कुछ ऐसे मिले-जुले शब्द हैं कि साधारण बुद्धि इनके अन्तर का नहीं पकड़ सकती। दोनों आपस में बहुत ही भेद रखते हैं। श्री गुरुदेव के इस लेख में त्याग के इस रूप को समझें।]

महापुरुषों ने त्याग को चार भागों में बाँटा है, वह साधकों पर क्रमशः एक दूसरे के बाद आते हैं। जिज्ञासु जब सबसे प्रथम साधना में प्रवेश करता है तो उस समय बड़ी-बड़ी आशाओं को लेकर आता है। वह न तो अपने संस्कारों को देखता है और न अपने कर्मों के फल की ओर दृष्टि डालता है। वह ऐसा मान लेता है कि आज से ही कोई संकट उस पर नहीं आयेगा। उसकी बुद्धि यह बात नहीं समझ पाती कि जो अच्छे या बुरे कर्म अब से पहले इस जन्म में या पूर्व जन्मों में कर आया हूँ उनके फल तो सुख व दुःख के रूप में भोगने ही होंगे। संस्कार बिना भोगे क्षय नहीं होता। बड़ी-बड़ी महान आत्मायें भी कर्मों के भोग भोगती हैं। यह जो कर्म उसने आरम्भ किया है, उसका भी भोग आवेगा पर उसमें समय लगेगा। यह सब "मूढ़ भक्त" हैं। शास्त्रों ने ऐसे जिज्ञासु का नाम—"अर्थार्थीभक्त" रक्खा है। जिसके अर्थ हैं—मतलबी, अपना कार्य सिद्ध करने की इच्छा वाला भक्त। मतलबी आदमी को सच्चा प्रेम नहीं होता, इनकी भक्ति व साधना में स्थायीपन नहीं होता। ऐसे लोग भजन और भक्ति करने नहीं आते बल्कि भगवान या गुरु को अपना ठेका देने आते हैं।

दूसरा :—इस प्रथम त्याग के पूरे हो जाने पर द्वितीय, त्याग का नम्बर आता है। यह अभ्यास की द्वितीयावस्था कहलाती है जिसमें यहाँ की इच्छायें तो मिट जाती हैं परन्तु परलोक की कामनायें शेष रहती हैं। मृत्यु के पश्चात् शुभ गति मिले, सुख के लोकों में पहुँच नरक की यातना से किसी प्रकार बच जायें, अच्छे कुलों में जन्म हो—इत्यादि। इस प्रकार की कामनायें भी कामनायें ही हैं। यह द्वितीय श्रेणी का साधक अपना प्रत्येक कर्म परलोक की लालसा से करता है। इसे भी त्याग निष्कामता का व्रत लेना होगा तब कल्याण होगा।

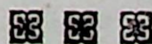
तृतीय :—भजन, सत्संग और शुभ कर्म उसे फिर एक धक्का देते हैं और उनके फलस्वरूप उसके अन्तःकरण से एक और आवरण हटता है। वह दूसरी सीढ़ी से उचक के तीसरी पर जा पहुँचता है। अभी तक वह "चन्द्रलोक" में था अब सूर्यलोक में प्रवेश हो गया। चन्द्रलोक में भी मनुष्य को प्रकाश मिलता है, कुछ ज्ञान भी उसे प्राप्त होता है परन्तु वह अन्धकार को पूर्ण रूप से नहीं हटा सकता, यथार्थ रूप का ज्ञान नहीं करा सकता।

"चन्द्रमण्डल" से ऊपर का स्थान "सूर्यमण्डल" बोला जाता है। वास्तव में वहाँ कोई विशेष सूर्य नहीं है, इसी को "विज्ञानमयकोश" कहा जाता है। साधक देखता है कि जगत के जिन पदार्थों के मोह में वह अब तक फँसा था, जिनको स्थायी और अपना समझ रहा था, जिनकी प्राप्ति की चाहना में हृदय हर समय तड़पता रहता था, जिनके पाने के लिये मन तरंगें लेता रहता था, जिनके भोगों को इन्द्रियाँ बेलगाम घोड़े की तरह दौड़ती थीं; वह सब ही माया के बने हुये नाशवान व अस्थाई हैं। असत् है, धोखा है, इनमें न शान्ति है न स्थायी आनन्द है। ऐसी समझ आते ही वह इधर से, लोक और परलोक से अपना मुँह मोड़ लेता है, वह एकदम सच्चे हृदय इन सबको त्याग ईश्वर व आत्मा की ओर बढ़ जाता है और केवल उसी के साक्षात्कार की, उसी के दर्शन और मिलाप की इच्छा उसके अन्दर उदय हो जाती है। वह इधर से वैराग्य ले, सब कुछ दिल से त्याग **"ईश्वर-अनुरागी"** बन जाता है। "ज्ञानी भक्त" या "निष्काम भक्त" का दर्जा प्राप्त कर लेता है। यह त्याग की तीसरी अवस्था है।

प्रेमयोग और साक्षात्कार

अनुराग जब अपनी परिपक्व अवस्था में पहुँचता है तब वहाँ ईश्वर की इच्छा के अतिरिक्त कोई कामना उसके हृदय में नहीं रहती। वह उस प्यारे के लिए छटपटाता है, तड़पता है, जान पर खेल के उससे मिलना चाहता है। प्रभु के लिये सब कुछ निछावर करने को तैयार हो जाता है, अपने को भूल जाता है, अपनी खुदी को, अपने अहं को उसके चरणों पर बलि देने को खड़ा हो जाता है। अपने सुख-दुःख की परवाह उसे नहीं रहती, लोक-परलोक की इच्छा उसे नहीं रहती, मुक्ति की भी चाहना उसके दिल से मिट जाती है, वह ईश्वर को चाहता है, केवल ईश्वर को।

प्रेम में आकर्षण है, प्रेम में अद्भुत आनन्द है, प्रेम में रस है। और प्रेम देश की भी कैसी अनोखी छटा है जहाँ चारों ओर मस्ती ही मस्ती बिखरी नजर आती है। आनन्द की तरंगें लहराती हुई दृष्टिगोचर होती हैं। उसका दिल किसी दिलवर के हाथ की कठपुतली बन जाता है, किसी प्यारे के प्रेम में खो जाता है। यह प्रेम लोक की लीला लाखों साधकों में से एक दो के भाग्य में आती है, अपने उद्योग से नहीं—केवल समर्थगुरु की दया ही उसे नीचे से उठाके वहाँ पहुँचाती है और आगे प्रभु के सम्मुख ले जाके खड़ा कर देती है।



गुरु वास्तव में विद्युत का सेन्टर होता है, जब हम इनसे कनैक्शन जोड़ लेते हैं तो हमारा हृदय रूपी बल्ब प्रकाशित हो उठता है और हमारे अङ्ग-अङ्ग को रोशन कर देता है।

—पूज्य गुरुदेव

सम्पादकीय

आत्म जागरण

*

एक कनाडा के भाई ने बड़ा सुन्दर प्रश्न किया था। भारत में ईश्वर के सभी अवतार प्रकट हुए। अनेक विद्वानों का आगमन हुआ। आज भी विश्व में सबसे अधिक महात्मा, चिन्तक, धर्माचारी तथा सामाजिक कार्यकर्ता हैं तब भी भारत में अधिक भ्रष्टाचार, सामाजिक दुष्कर्म तथा अनैतिक कार्य होते हैं, क्या कारण है? यदि हम इसका उचित कारण देखें तो वह है भारत की एक बहुत लम्बी गुलामी। इस लम्बी गुलामी में हम अपनी संस्कृति, अपना धर्म, अपनी भाषा और अपने को बिल्कुल भूल गये। हमें स्वतंत्रता तो मिली लेकिन अपनी संस्कृति नहीं मिली, अपनी शिक्षा पद्धति, अपना धर्म नहीं मिला। हमने पश्चिम की ही संस्कृति तथा शिक्षा पद्धति को अपनाया, परिणाम बगुला चला हंस की चाल अपनी चाल भी भूल गया। हम न तो पश्चिम की संस्कृति अपना पाये न अपनी। बल्कि हमने पश्चिम की संस्कृति की अच्छाइयों को छोड़ कर बुराइयाँ ले लीं। अपनी बुराइयाँ तो थी हीं अब पश्चिमी संस्कृति की बुराइयाँ भी आ गईं। आज हम अपनी तथा पश्चिम की संस्कृति की बुराइयों को ढो रहे हैं।

हमें महात्मा गाँधी तथा अन्य महापुरुषों के त्याग एवं बलिदान से आजादी मिली। महात्मा गाँधी ने इस दिशा विहीन समाज को दिशा देने का प्रयास भी किया। उन्होंने सत्य एवं अहिंसा पर आधारित एक विचार धारा समाज के सम्मुख रखी। गाँधी दर्शन आज के समाज के उत्थान एवं परिवर्तन के लिये उत्तम विचार धारा है। समाज का मार्गदर्शन सदैव से ही राजनीति से नहीं बल्कि अध्यात्म से होता आया है। समाज के उद्धारक सदैव से सन्त ही रहे हैं। महात्मा गाँधी भी पूर्ण सन्त थे, सत्य और अहिंसा के पुजारी थे। उन्होंने सत्य और अहिंसा को अपने दैनिक जीवन में उतार लिया था। उन्होंने लिखा है गीता मैंने पढ़ी ही नहीं बल्कि अपने जीवन में उतार ली। महात्मा गाँधी ने जन साधारण के सामने सत्य और अहिंसा को हृदय में उतारने की कोई साधना नहीं दी। हम अपने जीवन में सत्य अहिंसा को कैसे उतारें? हमारा जीवन सत्य पर आधारित कैसे हो? इसके लिये गाँधी दर्शन ने कोई साधना या प्रक्रिया नहीं रखी। अतः जन साधारण इसे अपना नहीं सका। गुरु महाराज ने पूरे समाज के अर्न्तमन को लिया। यदि अर्न्तमन पवित्र हो जाये तो मनुष्य धर्म को जान सकेगा। अपनी मञ्जिल पहचान सकेगा।

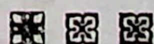
आज धार्मिकता बहुत है। आज धर्म के नाम पर आडम्बर है, झूठा प्रदर्शन है। लेकिन आचरण में बिल्कुल नहीं। आज धर्म के नाम पर धार्मिकता तो बहुत है लेकिन धर्म बिल्कुल नहीं। आज धर्मा-

चार्य जन साधारण की धार्मिक भावनाओं को उभार कर धार्मिक उन्माद उत्पन्न कर रहे हैं । यह धार्मिक उन्माद समाज में निर्माण का नहीं बल्कि विध्वंस का ही कारण बनेगा । आज धर्म के नाम पर दिखावा बहुत है । हमारे पास दूसरों को उपदेश देने के लिये तो बहुत है परन्तु अपने लिये कुछ नहीं । परमपूज्य पण्डित जी महाराज कहा करते थे—केवल बनो मत, अपने में उतारो । तुम्हारे बनने से, केवल उपदेश करने से कुछ नहीं मिलेगा, लेकिन यदि तुमने अपने में उतार लिया तो बहुतों का कल्याण होगा । गुरु महाराज ने जनमानस की भावुकता को नहीं भुनाया भावुकता श्रेयस का मार्ग नहीं हो सकती । श्रेयस का मार्ग शान्ति है । आज समाज को उत्तेजक औषधि (Steroids) की आवश्यकता नहीं बल्कि उसे परिचर्या (Nursing) की आवश्यकता है । रोते हुए बालक को मार्फिया के इन्जैक्शन से शान्ति नहीं मिलेगी बल्कि शान्ति अपनी माँ की ही गोद में मिलेगी । माँ की मीठी थपकी उसेनिद्रा में लेजायेगी । श्री विनोवा भावे ने कहा था कि पूरे समाज के जागरण के लिये आवश्यक है कि वह समाधि में जाये, शान्ति में जाये । गीता का अर्जुन सत्रह अध्याय सुनने के बाद भी शान्त नहीं होता । लेकिन जब वह अपने शरीर, मन, बुद्धि, अहं को भगवान के चरणों में सौंप देता है उसी क्षण शान्त हो जाता है, उसका मोह नष्ट हो जाता है—

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव ।।

—गीता १८।७३

जैसे थके हारे दुखी बालक को माँ की गोद में जाते ही शान्ति मिलती है, जैसे थकित पथिक किसी महान वृक्ष की छाया में बैठ जाता है शान्त हो जाता है थकान उतर जाती है । ऐसे ही अर्जन एक शान्ति में जाता है । शान्ति में ही समाधान है । अतः शान्ति में गया समाधान हो गया, मोह नष्ट हो गया मञ्जिल का पता मिल गया । इसी प्रकार समाधान हर व्यक्ति के अन्तर में है अतः हर व्यक्ति को भी शान्ति में जाना होगा वहाँ उसका समाधान स्वतः ही हो जायेगा । आज के सारे कल्मश धुल जायेंगे । आज के विकृत समाज के सुधार के लिये केवल मात्र यही एक मार्ग है । गुरु महाराज ने इस महा कठिन मार्ग को अत्यन्त सरल और सहज कर दिया । जैसे कोई राजा भीषण नदी पर पुल बनवा दे तो चींटी भी उस पर होकर नदी पार कर जाती है । इसी प्रकार गुरु महाराज की विचारधारा एक सेतु है जिस पर चलकर साधारण से साधारण व्यक्ति भी शान्ति पा सकता है, समाधान पा सकता है । शान्ति की अवस्था में उसमें एक आत्म जागरण होगा । जो आत्मा वर्षों से अन्धकार में थी प्रकाश प्राप्त कर अपना मार्ग निर्धारण कर सकेगी । अतः वह विध्वंस की ओर न चलकर रचनात्मक होगा । आज की सारी विकृतियाँ धुल जायेंगी । नव निर्माण होगा । जहाँ दूसरों के प्रति विश्वासघात न होगा । जहाँ अपने में पूर्ण सन्तुष्टि होगी ।



इस विश्व में एक विद्युत शक्ति का भण्डार है जहां से हर समय एक करेण्ट प्रवाहित होती रहती है । चैतन्य और जड़ जितने भी पदार्थ इस जगत में देखने को मिलते हैं उन्हें वही विद्युत धारा चलाती है । इस संचालन शक्ति का नाम ही "ईश्वर" है इसको ही "गुरुतत्व" कहते हैं । —पूज्य गुरुदेव

प्रवचन पराग

संसार और उसका त्याग

—परम भागवत पूज्य पण्डित जी



इस संसार को अनेकानेक लोगों ने मिथ्या कहकर त्यागने का उपदेश दिया है। मगर हम सब देखते हैं कि 'हम' या 'मैं' का सम्पूर्ण जीवन इसी संसार की गोद में व्यतीत होता है। हम इसी संसार में जन्म लेते हैं, पलते हैं, बढ़ते हैं और जीवन के सारे व्यवहार करते हुये इसी के साथ चलते रहते हैं और जैसे आये थे, वैसे ही यहाँ से विदा हो जाते हैं, मानो हमने कुछ दिनों के लिये आबोहवा बदलने के लिये एक पड़ाव बनाया था। लोग ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों पर चढ़ते हैं, बीच-बीच में पड़ाव डालते हैं और थाह-थाह कर आगे बढ़ते जाते हैं। इसी प्रकार जीवन, जीव की एक यात्रा है, सम्पूर्ण संसार उसका क्षेत्र है और अलग-अलग योनियाँ उसके पड़ाव। मानव शरीर उसका सबसे अच्छा पड़ाव है। जीव ने अपनी यात्रा में न जाने कितने पड़ाव बनाये और आगे वह कितने बनायेगा, मगर इतना तय है कि अपने शाश्वत घर तक पहुँचने तक उसकी यह यात्रा चलती रहेगी—अनवरत चलती रहेगी।

हम यहाँ जितनी भी चीजें देखते हैं, सुनते हैं, अनुभव या कल्पना करते हैं, उनकी तीन स्थितियाँ हैं—स्थूल, सूक्ष्म और कारण।—एक महाविशाल वृक्ष है तो दूसरा उसका अंकुर और तीसरा उसका बीज और उसकी शक्ति। एक कर्म, दूसरा विचार और फिर वृत्ति—हमारा यह शरीर, उसके भीतर मन और फिर कारण रूप आत्मा का जहाँ निवास है वह कारण—लोक, मन और बुद्धि का सूक्ष्म लोक और जहाँ स्थूल शरीर स्थित है—वह स्थूल संसार का लोक है। यह स्थूल शरीर पञ्च-तत्वों का बना एक जड़ मन्दिर है जिसमें आत्मा ही निवास करती है। जब जीव कारण लोक में होता है तो वह अपने मूल रूप में होता है, जैसे गंगोत्तरी का गंगाजल, उसकी संज्ञा आत्मा होती है, मगर सूक्ष्म जगत में आते ही वह विकारों का शिकार हो जाता है और जीव संज्ञा हो जाती है। गंगा के प्रवाह में अनेकानेक प्रवाह अपने विकारों को लिये आ मिलते हैं और गंगाजल का मूल रूप नहीं रह पाता। जीव का स्थूल रूप मूढ़ता-वश शरीर भी समझा जाने लगता है। गंगोत्तरी के जल और गंगासागर के जल में जमीन-आसमान का अन्तर हो जाता है। जीव को अपने मूल रूप की प्राप्ति के लिए इन विकारों से रहित होना पड़ेगा। नाना प्रकार के विचार और वृत्तियाँ ही ये विकार हैं। जिस समय जीव समस्त विचारों से रहित हो जायेगा, निर्विचार की स्थिति प्राप्त कर लेगा, यह संसार उससे अपने

आप छूट जायेगा और वह अपने कारण लोक आत्मलोक में होगा।

संसार को छोड़ने का अर्थ लोगों ने गलत लगा लिया और वे घर-द्वार, बाल-बच्चों को छोड़ बैठे, घर-गृहस्थी उजाड़ डाली, बाल-बच्चों को बे-सहारा कर दिया और लंगोटी लगाकर, कमण्डल धारण कर जंगल की राह ले ली। कन्दराओं में आश्रय ले लिया। सोचा—हमने संसार छोड़ दिया, मगर मन के भीतर का विशाल संसार ज्यों का त्यों बना रहा। हम सोचें क्या यही संसार का छोड़ना है ? क्या कन्दरा संसार नहीं ? क्या लंगोटी और कमण्डल संसार नहीं ? खाया जाने वाला अन्न-फल और जल संसार नहीं ? यह हवा जिसके बिना एक पल भी जी नहीं सकते—संसार नहीं ? यह अग्नि, यह आकाश ये सब संसार नहीं ? क्या यह शरीर स्वयं संसार नहीं है जो पाँच तत्त्वों—मिट्टी, पानी, आग, हवा और आकाश का एक संगठन है ? हमारा मन, हमारी बुद्धि यहाँ तक कि हमारा अहं भी संसार ही है। जो इन आठ तत्त्वों से परे है, उसी को आत्मा कहा गया है। इन आठ तत्त्वों तक संसार का ही पसारा है। इस शरीर में—इस जड़ शरीर में उसी आत्मा का ही निवास है जो सदा तुम्हारे पास है। सबका कर्त्ता और भोक्ता वही है। 'तुम' कहीं भी नहीं हो। यह 'तुम' ही मिथ्या है। अपना अहं छोड़ दो तो इसी क्षण संसार तुम से अलग हो जाये। संसार तभी तक है, जब तक तुम्हारा अहं है। यह अहं भाव चाहे घर में रहकर छोड़ो या जंगल में जाकर छोड़ो। बात एक ही है। संसार को स्थूल ही नहीं, सूक्ष्म रूप में भी देखो, पदार्थ रूप ही नहीं, विचार रूप से भी परखो।

यह अहं क्या है ? यह अहं है—अपने पन का भान, अपने होने, रहने या बने रहने का भान। 'मेरे समान कोई नहीं है'—यह अहं का स्थूल रूप है, 'मैं किसी से कम नहीं हूँ'—यह उसका सूक्ष्म भाव है और 'मैं हूँ'—यह अहं का कारण भाव है। इस कारण रूप अहं की अनुभूति भी न रहना, कारण लोक में स्थिति की स्थिति है। यह सुषुप्ति की दशा है, जब अपना भी भान नहीं रहता कि मैं कौन हूँ, कहाँ हूँ ? इस स्थिति के पूर्व आप हजार बार कहें—कहते रहें—"ब्रह्म सत्यं जगन्नमिथ्या," "अहं ब्रह्मास्मि" यह सब व्यर्थ है, मिथ्या है, ढोंग है। सुषुप्ति में जाने वाला कभी बोलता नहीं, कभी सोचता नहीं। जब तक घड़ा आवाज देता रहे, जानिये वह खाली है। जब तक किसी का शरीर, मन, बुद्धि जागते रहें, समझिये अभी वह इसी जगत् में है। उसका अहं जागता रहे, समझिये वह माया की सीमा के ही भीतर है। वह स्थूल में नहीं तो सूक्ष्म लोकों में उलझकर रह गया है।

"ब्रह्म सत्यम् जगन्नमिथ्या"—यह कथन उसी के लिये सत्य है जो उस 'ब्रह्म सत्यम्' में समा चुका है। यह कथन या सूत्र जाप करने के लिये नहीं, यह अति उच्च स्थिति अनुभव करने की है। स्थूल जगत् में निवास करने वाले प्राणियों के लिए तो यह जगत् सत्य ही है। ऊँचे उपदेशों को सिर्फ सुनकर ही इस जगत् की उपेक्षा करना जीवन को तबाह करना है, अपनी जिम्मेवारियों से भागना है, वास्तविकता से पलायन है। यह संसार भी और कुछ नहीं उस परमपिता परमात्मा की अभिव्यक्ति है। उसी का यह व्यक्त रूप है। इस संसार के कण-कण में परमात्मा का ही नूर छिटक रहा है। दूध में चीनी की तरह परमात्मा इस संसार में सर्वत्र सना हुआ है, सर्वत्र व्याप्त है। 'ईशा बास्यमिदं सर्वं यत्किञ्चजगत्यां जगत्'—यहाँ जो कुछ भी देख-सुन रहे हैं, अनुभव कर रहे हैं, सब परमात्मा

ही है। उसी ने अपनी शक्ति को, अपने वैभव को व्यक्त रूप में हमारे सामने बिखेर दिया है। इसके अनेकों नाम हैं—प्रकृति, माया, लक्ष्मी, जगत्, संसार, माँ आदि। यही माँ है जिसकी गोद में हम आते हैं, पलते हैं, बढ़ते हैं। हम इससे घृणा करें, इसकी उपेक्षा करें, यह काम कपूत का है। सपूत ऐसा कभी नहीं कर सकते। हमें इसकी पूजा करनी चाहिये, इसका आशीर्वाद लेना चाहिए, तभी, सिर्फ तभी हम पिता का प्यार पा सकते हैं। इसे त्यागने का अर्थ इतना ही हो सकता है कि हम अभिमान-वश इस पर अपना अधिकार न जमाएँ, सिर्फ अपना ही न समझें, बल्कि उसकी सभी सन्तानों को अपना सहोदर समझकर सबको प्यार करें—क्या मनुष्य, क्या पशु, क्या पक्षी और जीव-जन्तु। वह परमात्मा प्रेम है, सभी जीव उसकी सन्तान, प्रकृति उसकी माँ। इन सबकी एकता अध्यात्म का मूल है। यह विश्व एक मन्दिर है—आत्मा उसकी प्रतिमा।

साधकों और जिज्ञासुओं को अध्यात्म के मार्ग पर चलने के लिये बड़ी सावधानी की आवश्यकता है। जब एकबार सद्गुरु का दामन थाम लिया तो इधर-उधर किसी के बहकावे में नहीं पड़ना चाहिये। इस मार्ग में कुछ लोग अपनी जमात बढ़ाने के लिये जिज्ञासुओं की खरीद-फरोख्त का धन्धा भीं करते रहते हैं। इसलिये आज—खासकर आज के जमाने में किसी का दामन थामने के पूर्व उसके विषय में अच्छी तरह पता कर लेना अति आवश्यक है कि—उस महान व्यक्ति का व्यक्तिगत जीवन कैसा है? आचरण और व्यवहार कैसे हैं? उसके विषय में लोगों के विचार क्या हैं? उनके समीप बैठने से शान्ति और आनन्द की धारायें उमड़ती हैं या नहीं? गुरु के ज्ञान की परीक्षा तो बालक जैसा अबोध जिज्ञासु नहीं ले सकता, मगर जहाँ सर्वस्व समर्पण का सवाल है, उसके आचरण और व्यवहार को परखे बिना कदापि यह भूल नहीं करनी चाहिये।

साधकों को चाहिए कि वह भी थोड़ा अपनी बुद्धि से काम लें। वह मनुष्य की साधना न करें, ईश्वर की साधना करें।········कोई-कोई बड़े गुणवान भी हानि-कर सिद्ध होते हैं। मणिधारी सर्प मणि रखता हुआ औरों से अधिक विषैला देखा गया है।········जहाँ आचार्य अधूरे होते हैं और शिष्य भावुक और आज्ञाकारी मिल जाता है, वहाँ तो बस ऐसे ही समझो कि एक मालदर मनुष्य लुटेरों के हाथ पड़ गया। वह उसे शास्त्र के प्रमाणों द्वारा ऐसा कर देते हैं कि वह कहीं भी अपने गुरु से बाहर नहीं जा सकता।········एक वैद्य से यदि रोगी अच्छा न हो तो वह कहीं जाय ही नहीं, यह कोई न्याय संगत बात नहीं।

प्रेषक—श्री लखपति सिंह

जिस समय हम चिन्तन करने लगते हैं तो हमारी सुरति की धार गुरु से जुड़ जाती है और उनकी अपने गुरु से, इस तरह यह हमारी धार सबसे प्रथम गुरु परमात्मा तक पहुँचती है। और उनके भण्डार से सीधी अमृत वर्षा हमारे ऊपर होने लगती है।

—पूज्य गुरुदेव

समर्पण

[अपने परम कृपालु भैया पं० मिहीलाल जी के पावन चरणों में]



["भक्त और भगवान को, सीता और राम को, राधा और कृष्ण को अलग-अलग वही देखेगा जिसे ज्ञान नहीं है, जिसने ठीक नहीं समझा है वैसे ही पूज्य पण्डित जी और गुरु महाराज को जो अलग से देखते हैं, वे अँधेरे में हैं। जैसे माँ बच्चे को प्राणों से सींचती, पोषित करती है वैसे ही गुरु शिष्य को अपने प्राणों से सींचता है, आत्म-शक्ति से ऊपर खींचता है। शिष्य में अपना कुछ है ही कहाँ ?

यह तो दूसरे लोग हैं जो उनसे मिलते तो हैं पर उनमें कभी मिले नहीं। एक बार भी मिल लेते तो समझ जाते कि वह कौन थे और यह कौन हैं। मिले श्री शिव प्रसाद सेठ जिन्होंने प्रत्यक्ष दर्शन किया कि दोनों एक ही हैं।"

ऊपरलिखित ये शब्द हैं प० पू० श्री विरल जी के और निम्नलिखित समर्पण भी उन्हीं का है। पुराने भाई जानते हैं कि श्री विरल जी पन्द्रह वर्षों तक पूज्य गुरुदेव के संग रहे—उनके प्रिय रहे। भविष्य द्रष्टा समर्थ गुरु नें इन्हें पूज्य पण्डित जी महाराज से अपने जीवनकाल में ही जोड़ दिया था। गुरु कृपा से इन्होंने दोनों महापुरुषों में एकत्व के दर्शन किये। कभी इन दोनों को द्वैत की दृष्टि से देखने वालों की बातें सुन वह व्यथित हो एकान्त में कहते "अरे, इनमें भी द्वैत का दर्शन करने वालो इस विश्व को फिर अद्वैत की दृष्टि से कब और कैसे देखोगे ?" पाठकों के समक्ष इसी प्रकाश में आनन्द लेने हेतु प्रस्तुत हैं यह भाव गीत—रुद्र प्रसाद मिश्र]

प्रेममय भैया के पदतल में।
हुआ कुछ ऐसा मातृ - विधान
बने भैया मणिरत्न निधान
अरे जिनका मंगलमय ध्यान
सदा आता रहता निर्बाध, वेदना ग्रस्त हताश हृदय में।
सहन कर सका न जीवन भार
गया जब विरस द्वन्द्व से हार
उन्होंने ही तब दया विचार
भर दिया सहसा प्रेम पराग, दिए 'मां' के नव भाव सुमन में।
अश्रुमय साधना - संगीत
इसे कविता कह लो या गीत
कहो या पश्चाताप अतीत
समर्पित है सविनय सद्भाव सहित 'मां' की सुधि के शुभ दिन में।
प्रेममय भैया के पदतल में ॥

—सन्त श्री विरल जी

योग कैसे हो

—श्री प्रभुदयाल शर्मा जी



प्रभु का वियोग ही सबसे बड़ा रोग है और प्रत्येक में प्रभु दर्शन करना ही इसकी औषधि है। हम सब उस परमात्मा में ही हैं परन्तु उसको जानते नहीं हैं जैसे मछली पानी में ही जन्म लेती है पानी ही उसका—जीवन है, फिर भी प्यासी है, अध्यात्म उपनिषद् में बड़ा सुन्दर वर्णन है 'अन्तः शरीरे निहतो गुहायामज एको नित्यमस्य' अर्थात् इस शरीर रूपी गुहा में एक अजन्मा नित्य रहती है, परन्तु मनुष्य उसे जानता नहीं है। मछली की तरह से अतृप्त है प्यासा है उसमें रहते हुये भी, (यथा 'जल बिच मीन पियासी मोहि सुनि-सुनि आवे हाँसी'—कबीर) अर्थात् यह एक आश्चर्य ही है। हम सबके समक्ष यही प्रश्न है कि यह प्यास कैसे शान्त हो, कैसे बुझे ? अपनी प्यास बुझाने को मछली को अपनी वृत्तियों को उल्टा करना पड़ता है अर्थात् जब वह उलट जाती है तभी जल प्राप्त कर पाती है। हमें भी यही करना है। अपनी वृत्तियों को उलटना है। उसके लिए उस परमात्मा से योग करना होगा, मिलना होगा उसे जानना होगा। वह कैसे हो, वैसे तो जीव का उस परमात्मा से योग हो ही रहा है क्योंकि वह तो उसी का अंश है गीता यही तो बतलाती है·········'ममैवांशो जीवलोके जीवभूत सनातनः' अर्थात् इस जीवलोक में यह सनातन जीव मेरा ही तो अंश है। (ईश्वर अंश जीव अविनाशी, चेतन अमल सहज सुख राशी—रामचरित मानस) जीव उसी परमात्मा में ही है। जीव का परमात्मा के साथ सम्बन्ध है वही तो योग है यथा—'प्रभुणा सह सम्बन्धो जीवानां योग उच्यते, प्रकृत्या कृत सम्बन्धः प्राणिनां भोग इष्यते ॥'

अर्थात् जीव का परमात्मा के साथ जो सम्बन्ध है जो—स्वतः सिद्ध है वही योग है और वस्तु, व्यक्ति, पदार्थ, घटना आदि के साथ अथवा प्रकृति के साथ जो माना हुआ सम्बन्ध है—वस्तुतः है ही नहीं—वह भोग है। योग नित्य हो ही रहा है। शाश्वतः है। और भोग अनित्य है नाशवान है। संसार के त्याग से योग तथा संसार में राग से भोग—होता है, परमात्मा से योग तो स्वतः सिद्ध है एवम् वियोग भी संसार से स्वतः सिद्ध है। हम अपने शरीर की ओर ही देखें बाल्यावस्था, किशोरावस्था, युवावस्था एवम् वृद्धावस्था आती रहीं, स्थितियाँ बदलती रहीं, परन्तु हम न जान सके। संसार से वियोग तो हर समय ही हो रहा है परिवर्तन अपने स्थान पर हैं और हो रहा है, हर क्षण हो रहा है।

अब हमें यही ज्ञान प्राप्त करना है कि जीव और ईश्वर का योग तो हो रहा है परन्तु जीव अन्धकार में है, अज्ञान में है अतः उसे जान नहीं पा

रहा है। कैसा—अज्ञान उसे घेरे हुए है जरा देखें रामचरित मानस में—

'माया ईश न आप कहँ जान कहिय सो जीव।
बंध मोच्छ प्रद सर्ब पर माया प्रेरक-सीव' ॥

अर्थात् यह जीव अज्ञानवश न अपने को जानता है न माया को और न उस ईश्वर को, उस ईश्वर के ही अंश की यह स्थिति उस अन्धकार अथवा अज्ञान के कारण है जो उसे घेरे हुये है। यह अँधेरा अथवा अज्ञान तो वह शिव (गुरु) ही हटा सकते हैं। वह शिव अर्थात् गुरु ही इस माया या बन्धन से मुक्त करा सकते हैं। इसके लिये हमें मन को सर्व प्रथम गुरु के चरणों में—अर्पण करना होगा क्योंकि मन ही बन्धन और मोक्ष का कारण है (मन एव मनुष्यानां कारणं बन्धमोक्षयोः)। हमारा यह मन ही जब इन्द्रियों की लघु खिड़कियों से बाह्यजगत के साथ सम्बन्ध जोड़ता है तब संकल्प-विकल्प रूपी तरंगों की चहल-पहल मच जाती है और मन उन्हीं में रम जाता है क्योंकि मन तो रसिक है। इन इन्द्रियों से वह रस लेता रहता है रस का लोभी जो ठहरा, मन केन्द्रित हो जाय उसकी हलचल शान्त हो जाये तब तो योग हो ही रहा है। एक महापुरुष कहा करते थे कि ईश्वर तो महान सागर के समान है, परन्तु मनुष्य तो उससे अपनी प्यास नहीं बुझा सकता है, उसके लिये तो एक गिलास शुद्ध जल चाहिये। सन्तजन उसी समुद्र के जल से सुन्दर मेघ बनकर शीतल जल पिलाकर मनुष्यों की प्यास बुझा देते हैं। परमात्मा तो सच्चिदानन्द है। वह सत् चित् (ज्ञान) तथा आनन्द हैं ऐसे परमात्मा को प्राप्त करने के लिये एवं सत् ज्ञान तथा उसके आनन्द को प्राप्त करने के लिए सन्त ही माध्यम हैं, सन्त तो एक बहती हुई पवित्र धारा के समान हैं गंगा हैं तथा साधक (हम) एक गन्दे नाले के सदृश्य हैं जब साधक ऐसे सन्तों में मिलते हैं तो उसकी अपवित्रता धुल जाती है, सन्त का संग सब कुछ करा सकता है, मनुष्य सब अच्छे हैं कोई बुरा नहीं बस संग ही उसे अच्छा या बुरा बना देता है।

एक बार महर्षि वशिष्ठ से भगवान राम ने पूछा भगवन्! यह मन बड़ा चंचल है अशान्त है एवं दुस्साहसिक है, यह कैसे शान्त हो? महर्षि कहते हैं—कि हे राम! 'विषस्य विषमौषधम् तथा कंटकेन कंटकोद्धारः' विष की औषधि विष ही है तथा काँटे के द्वारा ही काँटा निकाला जाता है। अर्थात् मन का निग्रह मन से ही सम्भव है, मन में ही कोलाहल हो रहा है मन में ही वह अशान्ति है मन ही परमात्मा से योग में बाधक है। अभी हम मन के ऊपरी तल पर हैं जरा गहराई में जायें तो पता लगेगा कि वहाँ शान्ति है हलचल नहीं है जैसे कि समुद्र में उठने वाले ज्वार से उसका धरातल अप्रभावित रहता है, अतः मन को हमें द्रष्टा बनाना पड़ेगा जैसे कि एक सपेरा अपनी निक्षेप दृष्टि से साँप को वश में कर लेता है।

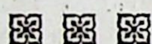
महर्षि पतञ्जलि से पूछा गया भगवन् योग कैसे हो? उत्तर था 'चित्त वृत्ति निरोधः' अर्थात् चित्त की वृत्तियों को शान्त करो योग हो जायेगा। चित्त सरोवर की तरह है। जैसे प्रातःकाल किसी सरोवर के किनारे जाते हैं देखते हैं शान्त है उसके किनारे के वृक्ष पर्वत आदि अन्य सुन्दर दृश्य सब उसकी तलहटी में दिखाई दे रहे हैं यदि उसमें कङ्कड़ी डाल दें तो लहरें बन जायेंगीं और दृश्य अदृश्य हो जायेंगे, उन दृश्यों को फिर से देखने के लिये हमें प्रतीक्षा करनी होगी सरोवर का जल शान्त हो जायेगा फिर वही दृश्य सामने होंगे, ऐसे ही चित्त में ही तो वह परमात्मा है वहाँ पर

विचार रूपी लहरें अथवा वृत्तियों के कारण ही वह परमात्मा अदृश्य हो गया है चित्त शान्त हो जाये तो फिर वह सामने ही तो है, जैसे कि परम पूज्य गुरुदेव कहा करते थे—

'दीदार तो हो जाता कोई बात न थी ।
अपने ही विचार दीवाल बन गये' ।।

वास्तविकता यही है । मन अथवा चित्त कैसे शान्त हो उसके लिये महर्षि पतञ्जलि कहते हैं 'अभ्यास ।वैराग्याभ्यास तन्निरोध:' उन लहरों अथवा वृत्तियों को शान्त करने के लिये किसी सन्त की शरण लेनी पड़ेगी, और उनके द्वारा प्रदत्त साधना का अभ्यास करना होगा इसी गृहस्थी में रहते हुये, रामाश्रम सत्संग—मथुरा की साधना हमें उसी ओर ले जाती है और उस परमात्मा से हमारा योग करा देती है जिसे हम भूले हुये हैं ।

[मारीशश में रेडियो वार्ता के आधार पर]



श्री गुरु महाराज जी के शब्द

※ विघ्न ※

उपासना के कुछ विघ्न भी होते हैं । धक्के दिये जाते हैं, किसी दूसरी वस्तु का लालच देके जाने को कहा जाता है, परेशान किया जाता है, दूसरे अवसर पर आने के लिये बहकाया जाता है इत्यादि पर जो भिखारी इनकी ओर न देखते हुये अपनी धारणा का पक्का होता है, जिसे अपनी इज्जत और तकलीफ का ख्याल नहीं, वही कामयाव (सफल) होता है ।

सोचो तो ! भिक्षा माँगने वाले का आदर और सम्मान किसने किया है, उसे तो दुत्कार ही मिलती है जहां जाता है फटकारा ही जाता है । कभी-कभी ढकेल के दूर हटा दिया जाता है, कभी कोई दूसरी चीज देकर पीछा छुड़ाया जाता है इत्यादि यह सब तुम्हें भी पेश आयेंगी—पर उनकी परवाह मत करना और न वहां से हटना, जबतक तुम्हारी इच्छित वस्तु न मिल जाय तब तक सत्याग्रह करते ही रहना, अपनी रटन लगाये ही चले जाना, चाहे कुछ भी क्यों न हो, यही दर्शन मिलने की कुञ्जी है ।

प्रेषक :—ललित कुमार

स्नेह गंगा के स्वर

—श्री रुद्र प्रसाद मिश्र



अभी कुछ ही वर्ष पूर्व की बात है—सन्त श्री विरल जी हिमालय में विचरण कर रहे थे। एक दिन वे समुद्र तल से चौंतीस सौ मीटर की ऊँचाई पर थे। चारों तरफ बर्फ से लदी पर्वत की चोटियों को देख वे बहुत ही प्रसन्न थे। पास खड़े एक साधक से बोले—"देख रहे हो हिमालय की इन बर्फीली धवल चोटियों को। यही शीतलता दे रही हैं। इनमें और हिम में अद्‌भुत एकत्व हो रहा है। इसी से यह स्वयं शीतल हो गयी हैं और जो भी इनके सानिध्य में आयेगा बिना किसी प्रयास के शीतलता पायेगा। प्रयास इतना ही है कि इनके पास पहुँचे। ऐसे ही सन्तों के पास से एक ऐसी शीतलता मिलती है जो तन को, मन को, बुद्धि को, अहं को और जली-तपी आत्मा को भी शान्ति व शीतलता प्रदान करती है।" इतना कह वे शिशुवत् भगवान श्री बद्रीनाथ के मन्दिर नर-नारायण में ××× ।

जोशीमठ में उन्होंने बताया कि बुद्धि की तीन शक्तियाँ शास्त्रों ने बतायी हैं—स्मृति, विवेक व निर्णय। स्मृतियाँ जितनी तीव्र व ज्यादा होंगी निर्णय उतना ही ठीक रहेगा। पर एक बात समझने की यह है कि स्मृतियाँ भी दो तरह की होती हैं। पहिली सांसारिक बातों की, घटनाओं की, संसार के व्यवहार की। इन स्मृतियों से एक पीड़ा, एक तनाव, एक वेदना मिलती है। जिनसे पीड़ित होने पर निर्णय अधिकतर गलत ही होते हैं।

एक स्मृति होती है सन्तों के साथ की, गुरु के साथ की। जब निर्णय का क्षण आता है तो यह स्मृति बताती है कि पूज्य गुरुदेव ने या उन सन्त ने ऐसी ही परिस्थिति पर यह निर्णय लिया था। बस, बुद्धि को निर्णय लेने में सरलता हो जाती है।

अस्तु ! आवश्यक है कि हम ज्यादा से ज्यादा सन्तों के सानिध्य में पहुँचें व संसार के संग से दूर ही रहें। फिर भी रहना तो संसार में ही है। इसके लिये सत्संग है जो एक प्रकाश देता है जिससे हम संसार के अन्धकार से बचे रहते हैं।

बात रुद्रप्रयाग की। बातों ही बातों में, बातों के सम्बन्ध में यह बात वे बता गये कि "जसे हर मनुष्य का एक ओरा होता है वैसे ही शब्दों का भी एक ओरा होता है। कैसेटों में शब्द हैं पर ओरा नहीं। तार है पर विद्युत नहीं। एक ही बात दो

मनुष्य बोलें, एक की बात दिल को छू जायेगी—हृदय को बदल देगी और दूसरे की बात हवा में उड़ जायेगी।"

❀ ❀ ❀

माँ दुर्गा ही इस ब्रह्माण्ड की अधीश्वरी है। वह शक्ति व स्नेह का केन्द्र हैं। जो भी उनसे मातृभाव ले जुड़ेगा वह भी शक्ति व स्नेह से लबालब भर जायेगा। परमपूज्य गुरुदेव यद्यपि उस माँ के ही स्वरूप थे फिर भी अवसर विशेष में वे माँ में लय हो शक्ति व स्नेह के स्वरूप ही बन जाते थे। यह बात सबके लिये एक सन्देश देती है। "साधना के अनुभव" परमपूज्य गुरुदेव ने व सर्वगुह्यतम गीता का सन्देश भगवान श्रीकृष्ण ने इसी शक्ति व स्नेह की अवस्था विशेष में लिखा व दिया। अवसर विशेष में उन्होंने इन माँ की याद में खोये-खोये माँ में ही खो कुछ बातें बतायीं। यहाँ तीन बातें जो मानीटरों, उपदेशकों व अध्यात्म शिक्षकों से सम्बन्ध रखती हैं, प्रस्तुत हैं :—

[१]

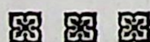
"उनसे" जुड़ो तब पूजा का उपदेश दो। ज्ञान के, शान्ति के, प्रकाश के परमाणु तभी सबको मिलेंगे। अन्यथा तुम लुट जाओगे व साधकों को भी पूरा लाभ न मिलेगा। साथ ही साधकों के अन्धकार के परमाणु तुम पर छा जायेंगे।

[२]

चरण स्पर्श मत कराओ। दुनिया वालों की बात छोड़ो। वे मन व भावना से चरण स्पर्श न कर मशीनवत् करते हैं। तुम्हारे ऊपर कालौंछ व संस्कार उस साधक के आ जायेंगे।

[३]

साधक जब अपने संसारिक व अध्यात्मिक कष्टों की कहानी सुनाये तो गुरु महाराज से ही विनती कर दे। अपनी आत्म-शक्ति का प्रयोग हानि ही करायेगा।



सत्य का प्रकाश

सत्य का प्रकाश ठीक ऐसा ही है जैसा सूर्य का प्रकाश। अन्तर इतना ही है कि सूर्य का प्रकाश बाहर है, सत्य का अन्दर। इस प्रकाश में इन्द्रियां काम करती हैं, उसमें मन और बुद्धि। जहां बुद्धि को सत्य का उजाला नहीं मिलता वहीं वह अनुचित कार्य कर जाती है ये कार्य दूसरों के दुःख का कारण बनते हैं। परन्तु सत्य के प्रकाश में मनुष्य अपना नहीं—पराया सुख चाहता है। सच कहता हूँ—पराये सुख में जो सुख मिलता है, वह बड़ा विचित्र है। इस वास्ते, जीवन में इस प्रकाश की बड़ी आवश्यकता है।

—परम भागवत पं० मिहीलाल जी

अनुपम सुख का मूल भक्ति

—श्री बैजनाथ पारीक



भगति तात अनुपम सुख मूला ।
मिलइ जो सन्त होइ अनुकूला ।।

वास्तव में साधना रूपी कल्पवृक्ष भक्तिरूपी प्राणशक्ति से सिंचित व सुशोभित होकर साधक के लिये मोक्ष का हेतु बनता है । भक्तिरहित साधना साधक के चित्त को साधना मार्ग में अग्रसर नहीं कर सकती । समुद्र गामिनी गंगाजी की अविरल पवित्र धारा की भाँति साधक के मन चित्त की जो कामना अपने आराध्य के प्रति श्रद्धा व अविचल विश्वास के साथ अबाध गति धारण करती है, वही श्रेष्ठ भक्ति कहलाती है । ऐसी भक्ति का लक्षण दरसाते हुए देवर्षि नारद जी कहते हैं :—

"सा तस्मिन्परम प्रेम रूपा अमृत स्वरूपा च "

अपने आराध्य में परम प्रेम होने की स्थिति को ही सच्ची भक्ति का जाग्रत स्वरूप माना जाता है । आराध्य के प्रेम में अपने को विस्मृत करना, उनके सुख हेतु अपने समस्त सुखों का परित्याग करना ही सच्चे प्रेम राज्य में प्रवेश करने का मूल मन्त्र है । अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि ऐसी सच्ची भक्ति का आन्तरिक निरूपण कैसे हो ? उसी के निरूपण हेतु गोस्वामी तुलसीदास जीं ने रामायण में संकेत दिया है कि ऐसी सच्ची भक्ति का आधार सन्त ही हैं । अतः किसी सन्त महापुरुष की पावन चरणरज से मनरूपी दर्पण को निर्मल कराते हुए उनकी अनुकूलता को प्राप्त कर सकने पर ही भक्ति के सच्चे स्वरूप को अन्तर में व्यवस्थित किया जा सकता है । ऐसी सच्ची भक्ति को प्राप्त करने का अधिकार प्रत्येक जिज्ञासु साधक को है । कर्म और ज्ञान के मार्ग पर चलने हेतु पात्रता की अपेक्षा रहती है, जबकि सच्ची भक्ति के आन्तरिक निरूपण हेतु कोई अवरोध नहीं है । इसे प्राप्त करने हेतु जाति, वर्ण, वर्ग लिंग, विद्वता का कोई बन्धन नहीं है । भक्तिमती माता शबरी का आदर्श चरित्र किसी से छिपा नहीं है । वह शूद्र जाति की गरीब घराने की बालिका थी । मन में जन्मजात शुभ संस्कारों के फलस्वरूप वह सदैव सेवा भाव से ओत-प्रोत रहती थी । अन्तर में वैराग्य जागा । पहुँच गई ऋषि मतंग के आश्रम पर । बिना दिखावा किये आश्रम व आश्रम के आस-पास नित्य-प्रति ब्रह्म-बेला में सफाई कार्य करने हेतु तन मन से लग गई । आश्रमवासी आश्चर्यचकित रह गये कि नित्य प्रति ऐसी श्रेष्ठ सफाई कौन करने लगा है ! गुरु मतंग ऋषि अन्तर्यामी थे, सब जानते थे । अन्तर से पुलकित होकर कृपा करते रहे । हार्दिक आशीर्वाद देते रहे । एक दिन अपने आशीर्वचन से निष्कपट बालिका को सम्मुख बुलाकर सम्बोधन करते हुये वरदानस्वरूप पूर्ण आश्वासन के साथ द्रवित होकर कहा कि बिटिया में तुम्हारी सेवा-भक्ति से अत्यधिक प्रसन्न हूँ । एक दिन भगवान श्री राम अपने अनुज लक्ष्मण सहित तुम्हारी कुटिया पर आवेंगे, तुम्हें दर्शन देंगे, तुम्हारे हाथ का प्रसाद ग्रहण करेंगे

और तुम्हें जीवनमुक्त कर देंगे। अबोध भोली बालिका शबरी ने पूर्ण विश्वास के साथ गुरु वचनों को हृदय में धारण कर लिया। जहाँ पूर्ण श्रद्धा व विश्वास अडिग होता है वहाँ धैर्यपूर्वक निश्चलता के साथ समय व्यतीत होने लगता है। यही बात शबरी के साथ घटित हुई। दीर्घ समय तक पूर्ण श्रद्धा व विश्वास के साथ की गई प्रतीक्षा की घड़ियाँ सहज भाव में श्री राम के दर्शनों की अभिलाषा में व्यतीत होती चली गईं। एक दिन ऐसा भी आ गया कि गुरु वचनों को सत्य साकार रूप में परिणित होते देखा कि भगवान श्री राम लक्ष्मण को संग लिये आ पधारे हैं। सर्व प्रथम गुरु का स्मरण कृतज्ञता प्रकट कर किंकर्तव्यविमूढ़ स्थिति में उन्हें अपनी कुटिया में देखकर निहाल हो गई। साष्टांग प्रणाम किया और प्रेमपूर्वक दोनों भाइयों को बिठाया और जुट गई तन मन से सेवा में। दौड़ी गई, अन्दर से उठा लाई बेरों की डलिया, जिसमें उसने चख-चख कर मीठे बेर रखे थे। उसे रख दिया भगवान श्री राम के सम्मुख। विनय की खाने हेतु, भगवान श्री राम ने झूठे बेर खाये। स्वाद का वर्णन करते नहीं अघाये। लक्ष्मण को भी देते रहे बेर। ऐसे स्वादिष्ट बेरों को खाने की स्मृति श्री राम के मानस पटल पर अङ्कित हो गई। भगवान श्री राम ने वनवास से लौटने पर अयोध्या में माता कौशल्या को बेरों के स्वाद के बारे में बतलाने में कोई हिचकिचाहट नहीं की। भगवान श्री राम ने माता शबरी की भक्ति, श्रद्धा और विश्वास की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते हुये अपने भाव प्रकट कर कहा में तुम्हारे में निश्चल प्रेम व नवधा भक्ति के समस्त लक्षणों को देखकर अत्यधिक प्रसन्न हूँ।

श्रवणं, कीर्तनं विष्णो, स्मरणं, पाद सेवनं।
नर्चनं, वदनं, दास्यं सख्यमात्म निवेदनम्॥

भक्ति की इन समस्त विद्याओं का कारण भी मैं देख रहा हूँ कि तुमने यह आन्तरिक स्थिति तथा दशा गुरु के आशीर्वाद एवम् कृपा के फलस्वरूप ही प्राप्त की है। उसी के प्रताप से आज मैं अनेक ऋषियों की कुटियाओं को छोड़कर तुम्हारी कुटिया में तुम्हारे सम्मुख हूँ। मेरे वास्तविक स्वरूप के दर्शन का फल अमोघ है जिसे तुमने प्राप्त कर लिया है—

मम दर्शन फल परम अनूपा।
जीव पाव निज सहज स्वरूपा॥

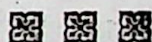
अब मुझे दिखाई दे रहा है कि तुमने अपने 'निज सहज स्वरूप में स्थिति की दशा प्राप्त कर ली है। अब मुझे भी तुमसे जानकी जी के बारे में कुछ जानकारी चाहिए। माता शबरी अविलम्ब बोल उठी कि 'प्रभु आप सब जानते हैं फिर भी मैं निवेदन कर रही हूँ यहाँ से जब आप आगे पधारेंगे तो आपकी भेंट हनुमान भक्त से होगी। उसी के माध्यम से आपकी मित्रता सुग्रीव से होगी' तथा आगे का भी समस्त विवरण बन्द आँखों कह सुनाया। प्रेम भाव में निमग्न दासी शबरी तत्क्षण भगवान का अपलक दर्शन करती हुई ध्यान की गहनतम स्थिति में योगाग्नि से देह का तादात्मय कर परमतत्व में समाहित हो गयीं मुक्त हो गई। इससे बढ़कर सन्त की कृपा तथा अनुकूलता को प्राप्त करने का उदाहरण कहाँ मिलेगा। धन्य हो माँ शबरी तुम वास्तव में बड़भागिन सिद्ध हुई। हे प्रभु यह दशा आप कृपा कर अपने भक्तों को प्रदान करने की अनुकम्पा करते रहें।

वर्तमान में हम नजर उठाकर देखते हैं तो पता चलता है कि इस संसार में प्रायः अधिकतर लोग किसी न किसी प्रकार की मनोकामनाओं की पूर्ति-हेतु भक्तिभाव से जुड़े हुए तो दिखाई दे रहे हैं। हाँ

चाहे प्रारम्भ में वो इहलौकिक सुखों की प्राप्ति में लगे हों अथवा शरीर व शरीर से सम्बन्धित इच्छाओं, आशाओं की पूर्ति करवाने हेतु अनेक देवी देवताओं, महात्माओं, सन्तों, फकीरों, पादरियों, मौलवियों, सिद्धों के पास मन्दिरों, मस्जिदों, गिरजाघरों, गुरुद्वारों, आश्रमों, तीर्थों में विचरण करते देखने में आते हों, लेकिन एक समय प्रत्येक जीव के लिये ऐसा अवश्य आता है कि जब वह किसी जन्म में सन्त के सम्मुख होकर वास्तविक बोध प्राप्त कर पलटा खा जाता है यह स्थिति सन्त की कृपा पर ही प्राप्त होती है फिर तो वही प्राणी कह उठता है—

अब मैं नाच्यो बहुत…………

वास्तविक रूप में इस धारा पर जब-जब भी धर्म पर ग्लानि छा जाती है तो परमात्म शक्ति संत के रूप में अवतरित हो भूले-भटके पथिकों को उचित मार्ग-दर्शन प्रदान कर निज स्वरूप का बोध कराने हेतु उनकी वृतियों को अन्तर्मुखी कर आत्मा से आत्मा का तार जोड़ देते हैं। रामाश्रम सत्संग मथुरा के प्रवर्तक ब्रह्मलीन परमसन्त डॉ० चतुर्भुज सहाय जी ने इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु आन्तरिक ध्यान की व्यवस्था वाले पथ को जन-सामान्य के लिये प्रशस्त किया जिसको अपनाकर आज भी सम्पूर्ण भारत में ही नहीं अपितु सुदूर देशों में भी साधक आत्म लाभ प्राप्त कर रहे हैं। प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं, चाहे तो इसे आजमायिश करके कोई भी देख ले।



—: रज-कण :—

❀ माता-पिता और गुरु जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्था के परिचायक हैं और ये ही हिरण्यगर्भ विराट् और अव्याकृत के भी द्योतक हैं।

❀ जब शिष्य और गुरु के भावों में एकरूपता आ जावे तो शिष्य द्वारा ही अपने पाँवों को स्पर्श करना अपने गुरु के श्रीचरणों के स्पर्श करने के समान फलदायी होता है।

❀ असली गुरु तो वह है जिसके नाम लेते ही सहायता मिल जाय जैसे असली विष तो वह है जिसके पान करते ही मृत्यु हो जाय। असली अमृत वह है जिसको पीने से अमर हो जायें और असली कृपा वह है जिसके होते ही इस भव-सिन्धु से पार हो जायें।

❀ गुरु-दर्शन हेतु की गई यात्रा का एक-एक पग महान् यज्ञ के समान फलदायी होता है।

❀ शिष्य और गुरु के भाव (विचार) में जब तक अन्तर रहेगा, तब तक शिष्य-शिष्य नहीं है।

घर-घर दीपक बरै

—श्री कृष्ण मुरारी पाण्डेय



हर देह में परमात्मा की दिव्य ज्योति जल रही है, पर उसे देखें कैसे ? कबीर ने उसे देखा है। उसे देखने की विधि बता दी, कि देखते-देखते ही वह दिखायी देने लगता है। कबीर बोधि पुरुष हैं। आँखिन देखी बात कहते हैं। ऐसा कुछ अकथ एवं अनूठा कहते हैं कि उसकी कोई तुलना नहीं। कबीर बिना पढ़े लिखे थे। "मसि कागज छूयो नहीं, कलम गही नहीं हाथ।" परन्तु उन्होंने सत्य को, परमात्मा को जीया था, अनुभव किया था और उसी में अपने को विसर्जित कर दिया था। इसी लिये वह "लिखा-लिखी की है नहीं देखा-देखी की बात" कहते हैं। कबीर आम जन के लिये प्रेरणा के स्रोत हैं। उनके पीछे बुद्ध या महावीर की तरह कोई वंश, शिक्षा, वैभव, सम्मान, प्रतिष्ठा की परम्परा नहीं थी। माता-पिता का पता नहीं, त्याज्य सन्तान के रूप में दूसरे धर्म वाले माता-पिता ने पाला पोसा। रहने का ठिकाना नहीं, कोई विद्यालयीय शिक्षण नहीं। गुरु रामानन्द ने बड़ी मुशकिल से संयोग रूप में राम नाम की दीक्षा दी। ऐसे कबीर यदि परमात्मा को उपलब्ध हो सकते हैं तो सामान्य से सामान्य व्यक्ति को भी इससे आशा बँधती है कि सत्य की उपलब्धि में वंश, परम्परा, वैभव, शिक्षा, भाषा, बुद्धि या किसी प्रकार का उपादान कोई कारण नहीं है। वह तो मिला हुआ है। हम स्वयं उसके मिलने में बाधा हैं। पाना, छोड़ने की शर्त के साथ नहीं है।

कबीर ने न घर छोड़ा, न स्त्री छोड़ी, न धन्धा छोड़ा परन्तु सब कुछ पा लिया, जो पाया जा सकता है। कबीर की जब कुछ अधिक प्रसिद्धि हो गयी तो उनके प्रेमियों ने उनसे कहा कि आप इतने बड़े सन्त होकर ताना-बाना करते हैं कपड़ा बुनते हैं। बन्द करिये धन्धा। इससे आपकी प्रतिष्ठा कम हो रही है। कबीर ने कहा परमात्मा परम जुलाहा है, वह रोज नित नूतन सृजन कर रहा है, वह नहीं थकता और न अपना धन्धा बन्द करता है तो मैं कौन हूँ बन्द करने वाला। कबीर रामनाम रस भीनी चदरिया बुनते थे। वह राम के लिये बुनते थे। उनका ग्राहक उनके लिये राम था। देर हो जाती तो कहते राम जी इन्तजार कर रहे होंगे, जल्दी चलो। ग्राहक से कहते राम जी आपके लिये बुनी है, बहुत चलेगी। कोई मोल भाव नहीं। परिवार के लिये जो आवश्यक होता खरीदते जो बाकी बचता वह दान कर देते। दिन भर गृहस्थ रहते रात को संन्यासी हो जाते।

कबीर के पदों के पीछे अध्यात्म की परम अनुभूतियाँ हैं। उनकी भाषा ग्रामीण है परन्तु उसमें परम ताजगी है ओस कणों जैसी। वर्तमान काल में जब कि सम्प्रदाय वाद का विष पूरे समाज में व्याप्त है, देशवासियों की आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियाँ शोषण व लूट की आपाधापी में बहुत विषम हो गयी हैं, कबीर निर्विवाद रूप से आशा की एक किरण हैं एवं प्रेरणा के स्रोत हैं। इनका स्मरण ध्रुव तारे की भाँति हमारा पथ प्रदर्शन कर सकता है और हमें जीवन

एवं अध्याम में प्रतिष्ठित कर सकता है। आमन्त्रण है, कबीर के वचनों में डूबें।

**"घर घर दीपक बरै, लखै नहिं अंध है।
लखत लखत लखि परै, कटै जम फंद है॥"**

कबीर कह रहे हैं घर घर में, प्रत्येक घट में, शरीर में उसी का दिया जल रहा है। उसी का नूर है। शरीर-शरीर उसी की ज्योति जल रही है। फिर भी बड़े मजे की बात है तुम्हें दिखायी नहीं पड़ती। कैसे अन्धे हो। एक आँख बाहर को होती है जो दूसरों को देखती है और पदार्थ देखती है। एक आँख भीतर की होती है जो अपने को देखती है और प्रकाश (अध्यात्म) को देखती है। भीतर की आँख से अभिप्राय है होश की क्षमता, चैतन्यता से। वह तो सभी में है वही भीतर की आँख है।

भीतर ही जल रही है रोशनी। परमात्मा प्रकाश स्वरूप है। प्रकाश ही पदार्थ का जनक है। पदार्थ प्रकाश में परिवर्तनीय है। वही मूल सत्ता है। जब तक हमें अपने भीतर की रोशनी दिखायी न पड़े तब तक हम अन्य के भीतर की रोशनी को कैसे देख सकेंगे। तब तक हम अपने को शरीर मानेंगे दूसरे भी हमें शरीर जैसे ही दिखायी देंगे। जिस दिन हमें भक्ति का जलता हुआ प्रकाश दिखायी पड़ेगा उसी क्षण हमें सभी घरों में दीये दिखायी पड़ जायेंगे। ऐसा नहीं कि केवल मनुष्यों में ही वह नूर दिखायी पड़ेगा। अपितु पशु पक्षी, तरु लता गुल्म में भी वही नूर दिखायी देगा। सब रोशन है, सारा जगत रोशन है। प्रत्येक चीज रोशनी से बनी है। रोशनी मूल आधार है। यहाँ रोशनी के सिवाय कुछ है ही नहीं।

हम बड़े अद्‌भुत अन्धे हैं कि घर-घर जो दीया जल रहा है, दूसरों के घरों की कौन कहे हमारे घर में भी जल रहा है वह भी हमें नहीं दिखायी पड़ता। यह अध्यात्मिक अन्धता है। अगर एक आदमी वर्षों तक अन्धेरे में आँखों को बन्द कर बैठा रहे तो आँखें फिर रोशनी में देखने में समर्थ नहीं रह जाती हैं। क्योंकि प्रत्येक चीज सक्रिय रहने से सतेज रहती है और निष्क्रिय होने से क्षमता खो देती है। इसी तरह हमारे भीतर देखने की क्षमता को जंग खा गया है। हम ने उसका उपयोग ही नहीं किया। इसीलिये हम अन्धे जैसे मालूम पड़ रहे हैं। अन्धे हम हैं नहीं, अन्धे हम हो नहीं सकते। क्योंकि भीतर की आँख के जाने का कोई सवाल ही नहीं, क्योंकि वह हमारे चैतन्य से जुड़ी हुई है।

आँख के खोलने की पहली शर्त है श्रद्धा। श्रद्धा दो प्रकार की है। शुरू में परिकल्पित होगी, बाद में अड़िग हो जायेगी। श्रद्धा के बिना यात्रा शुरू नहीं होती। श्रद्धा का अर्थ है जिसे मानने के लिये तर्क के पास कोई कारण न हो। जिसे मानना बिल्कुल असम्भव मालुम पड़े, उसे मान लेना। जो दिखायी न पड़ता हो, जिसका स्पर्श न होता हो, जिसकी गन्ध न आती हो और जिसके मानने का कोई भी आधार नहीं—उसे मान लेने का नाम है श्रद्धा। कोई भी परिकल्पना परमात्मा के बारे में कभी सही सिद्ध नहीं होती। उसे सोचा था दीया, मिला महा सूर्य के रूप में। परिकल्पित श्रद्धा से साहस मिलता है खोज शुरू होती है। सम्यक् श्रद्धा तो ज्ञान से घटित होती है। पहली श्रद्धा हमारे जीवन चिन्तन का ढंग बदलेगी, शैली बदलेगी। जिसने तय कर लिया अब देखेंगे। अब आँख चाहिये, अब दर्शन चाहिये वह पहली श्रद्धा को उपलब्ध हुआ।

लखत लखत लखि परै कटै जम फंद रे।

और जैसे वह दिखायी पड़ जाता है वैसे ही मृत्यु का पाश कट जाता है। फिर मरने वाला नहीं

बचता। जिसने परमात्मा की एक झलक भी पा ली है उसने अमृत का अनुभव कर लिया। परमात्मा यानी अमृत, तुम यानि मृत्यु। तुम जब तक समझते हो कि तुम ही हो परमात्मा नहीं, तब तक तुम मृत्यु के फन्दे में हो। जिस दिन तुमने पाया कि मैं नहीं हूँ, परमात्मा है; उसी क्षण 'कटै जम फन्द है।'

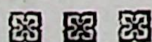
यहूदियों की बड़ी पुरानी कथा है कि हजरत मूसा सिनाई पर्वत पर गये तो अचानक उन्हें आकाशवाणी सुनाई दी कि जूते उतार दे पवित्र भूमि है। वे जूते उतार दिये। आगे बढ़े तो एक झाड़ी में आग को जलते देखा। वे हैरान हो गये। यह चमत्कारी अनुभव था। आग जल रही थी परन्तु झाड़ी नहीं जल रही थी। आग से लपटें निकल रही थीं परन्तु झाड़ी हरी की हरी थी। यहूदियों को इसका मतलब समझने में कठिनाई हुई। यह किसी बाहरी आग की कथा नहीं है इसका मतलब भीतर की आग से है जो जलती है जलाती नहीं। एक बड़ी ठण्डी रोशनी बरफ जैसी शीतल और आग जैसी उज्जवल। बाहर की रोशनी से इस रोशनी का गुण धर्म अलग है। इसलिये इसे देखने के लिये नई आँख चाहिये। तुम्हें अपनी आँखों को धीरे-धीरे समायोजित करना होगा।

"लखत लखत लखि परै कटै जम फंद है।"

ध्यान है मौन हो जाना। ध्यान है बाहर का पट बन्द होकर भीतर का पट खुलना। कबीर ने सुरति शब्द का प्रयोग बार-बार किया है। सुरति का अर्थ है होश—'चेतना का केन्द्रीकरण'। पनघट की कथा प्रसिद्ध है आज भी राजस्थान में ग्रामीण इलाकों में होता है। औरतें समूह में कुएँ से पानी भरती हैं कई घड़े सिर पर रख लेती हैं। साथ में चलती हैं, बात भी करती हैं। हास परिहास भी करती हैं। घड़ों को हाथ से पकड़े नहीं रहतीं। परन्तु घड़े गिरते नहीं हैं। वे अपनी सुरति से उन्हें सम्हाले रहती हैं। अब ऐसे दृश्य कम होते जा रहे हैं। पनघट का स्थान नलघट लेता जा रहा है। जहाँ खोखली बाल्टियों की खड़खड़ाहट है। कबीर कहते हैं कि याद को होश में मिला दे। मुख से कुछ न बोल। मौन हो जा बाहर से और भीतर से। क्योंकि मौन ही है भाषा परमात्मा की। जब तू मौन हो जाता है तो परमात्मा के नजदीक हो जाता है। "और यदि तू मौन होकर कुछ कह देता है तो वह प्रार्थना बन जाता है और परमात्मा केवल ऐसी ही प्रार्थना सुनता है।" तू बाहर का कपाट बन्द कर भीतर का कपाट खोल। यही अन्तर्यात्मा है। मन दसों दिशाओं में दौड़ता है। भीतर नहीं जाता है। भीतर की दिशा ही ग्यारहवीं दिशा है, यही सही दिशा है और यहीं पर होता है परमात्मा से मिलन।

"सुमिरन सुरत मिलाय के, मुख से कछू न बोल।
बाहर का पट देइके, अन्दर का पट खोल॥"

—श्री कबीर



समय पाय तरुवर फले

—प्रो० श्री रवीन्द्र प्रसाद वर्मा



मनुष्य नहीं जानता कि जीवन के किस मोड़ पर कौन-सी घटना उसके जीवन में परिवर्तन ला दे। परिवर्तन का कारण और समय नहीं जानने के कारण हम उसे चमत्कार मान लेते हैं। विषय-वासनाओं में आकंठ डूबे युवराज का, अबोध पुत्र तथा समर्पित पत्नी को सोते छोड़कर सत्य की खोज में घर से निकल पड़ना और बुद्धत्व को प्राप्त करना, क्रूर दस्यु का वाल्मीकि बनकर 'रामायण' जैसे सर्वकालिक महत्व के महाकाव्य की रचना करना आदि ऐसी ही चमत्कारिक घटनायें मानी जाती हैं। पर यदि गहराई से विचार करें तो ईश्वर की इस सृष्टि में कुछ भी चमत्कारिक या अप्रत्याशित नहीं होता। घटनाओं का पूर्व ज्ञान नहीं होने के कारण भले ही वह अप्रत्याशित या चमत्कारिक ढंग से हुआ जान पड़े, पर सच्चाई यह है कि उनके बीज पहले से मौजूद होते हैं और नियत समय पर फलते-फूलते हैं। जो हुआ अथवा हो रहा है वह सब कुछ पूर्व निर्धारित है तथा उसे होना ही है।

यह सम्पूर्ण सृष्टि कार्य-कारण नियमों में बँधी है। हमारे कर्म ही आगत का कारण बनते हैं। दीपक जलाया तो प्रकाश फैलेगा ही। प्रकाश का फैलना न तो अप्रत्याशित है और न इसमें कोई चमत्कार जैसी बात ही है। इस कर्म प्रधान संसार में कर्म ही कर्म बरतते हैं। एक कर्म दूसरे कर्म को जन्म देता है। बीज डाल दिया तो वह अंकुरित होगा ही।

शास्त्रों में तीन प्रकार के कर्म बताये गये हैं—संचित, प्रारब्ध एवं क्रियमान। मनुष्य अपने विभिन्न जन्मों में जो कुछ भी करता है वे उसके संचित कर्म बन जाते हैं। जिन पूर्व कर्मों का वह फल भोगता है, वे उसके प्रारब्ध कर्म हैं तथा जो कुछ वह नये सिरे से करता है वे क्रियमान कर्म होते हैं। क्रियमान कर्म ही संचित कर्म बन जाते हैं और जब उनका भोग करता है तो वे प्रारब्ध कहे जाते हैं। शास्त्रों का अभिमत है कि क्रियमान कर्म के द्वारा संचित कर्म को तो निष्फल किया जा सकता है, पर प्रारब्ध को भोगना ही पड़ता है।

कर्म का बन्धन आत्मा के एक शरीर से दूसरे शरीर में संक्रमित होने पर भी बना रहता। मृत्यु में स्थूल शरीर तो नष्ट होता है लेकिन पुनर्जन्म में आत्मा के साथ सूक्ष्म या भाव शरीर का भी एक से दूसरे शरीर में संक्रमण का सिलसिला बना रहता। फलतः नया जन्म पाकर भी जीव प्रारब्ध कर्म के संस्कार से बँधा होता है।

प्रारब्ध कर्म शुभ और अशुभ दोनों होते हैं तथा

समय पाकर फलित होते हैं। जब शुभ कर्म फलित होते हैं तब कोई 'सिद्धार्थ' 'बुद्ध' बन जाता है, ठीक वैसे ही जैसे राख के हट जाने पर उसमें दबी चिनगारी प्रज्वलित हो जाती है। तब एक छोटी सी घटना, एक छोटी सी फटकार जीवन का प्रवाह ही बदल देती है।

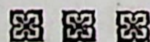
ऐसा ही कुछ घटित हुआ था 'विल्वमंगल' के जीवन में। एक भक्त ब्राह्मण रामदास के घर उनका जन्म हुआ था। पिता ने यथासाध्य धर्मशास्त्रों की शिक्षा दी थी। शिक्षा तथा संगति से वह शिष्ट, शान्त तथा श्रद्धावान बालक बन गया। पर माता-पिता की मृत्यु के बाद पूर्व संस्कारों ने ऐसा घेरा कि वे पथ-भ्रष्ट हो गये। चिन्तामणि नामक एक वेश्या के प्रेम जाल में फँसकर वे पिता द्वारा विरासत में मिली प्रतिष्ठा तथा धन-सम्पदा लुटाने लगे।

उनके सोये शुभ संस्कारों को जगाया चिन्तामणि की फटकार ने। एक रात जब आँधी-तूफान के साथ मूसलाधार वर्षा हो रही थी तो नदी पार करने का कोई अन्य साधन न पाकर कामातुर विल्वमंगल एक बहती लाश के सहारे उस पार चिन्तामणि से मिलने चले गये। चिन्तामणि ने सब कुछ जानकर उनको फटकार लगायी। उसने धिक्कारते हुये कहा—'जिस हाड़-माँस से बने शरीर की सुन्दरता पर मोहित हो उसकी परिणति तो एक दिन सड़े मुर्दे में होगी। ऐसा ही प्रेम श्रीकृष्ण से करते तो तुम्हारा कल्याण हो जाता।'

वैश्या की ज्ञान से भरी सीख विल्वमंगल को लग गयी। उसका दबा पड़ा संस्कार जग गया। सब कुछ छोड़-छाड़कर श्रीकृष्ण का नाम जप करते निकल पड़े। कहते हैं कि पुनः एक सुन्दरी को देख जब उनका मन विचलित हुआ तो दृष्टि का दोष मानकर अपनी दोनों आँखें फोड़ लीं और बन गये 'सूरदास'।

उनकी भक्ति ने जगन्नियन्ता श्रीकृष्ण को बाल रूप धरकर उनके साथ-साथ रहने को विवश कर दिया था। भक्त ने अपनी निश्छल भक्ति से भगवान को बाँध लिया था। वे हाथ छुड़ाकर भाग भी नहीं सके क्योंकि भक्त ने चुनौती दी थी कि—

हाथ छुड़ाये जात हो, निबल जानिकै मोहि।
हृदयते जब जाहुगे, सबल बदौंगो तोहि॥



पूरे घट बोलते भी नहीं—छलकते भी नहीं। ऐसे ही पूर्णता प्राप्त कर साधक शान्त हो जाता है। वह "अहं ब्रह्मास्मि" "तत्वमसि" आदि शब्द भी भूल जाता है जब मैं ही ब्रह्म हूँ, तब कहता किससे हूँ? जब तू ही तू है, तो यह कहने वाला कौन है? जो कहता है, समझो अभी कुछ कमी है। उसने पूर्णता में विलीन होने का साधन नहीं जाना।

—परम भागवत पं० मिहीलाल जी

साधना तथा सद्व्यवहार

—श्री शिव प्रसाद शर्मा



सम्यक् भाव से भगवत् आराधन के फल प्राप्ति रूप, शील सम्पन्न मृदुल सद्व्यवहार तथा सोम्य वचनादि गुणों से सम्पन्न साधक सभी के आकर्षण का विषय बन जाता है। ऐसे सुशील साधक का सम्पर्क ही दूसरे लोगों के अन्तःकरण में एक जिज्ञासा का जागरण कराता है—"वह दिव्य साकार नरहरि रूप सद्गुरु कौन है जिनकी स्नेहिल चितवन ने इस व्यक्ति की रहनी-सहनी को इतना दिव्य तथा रसमय बना दिया है" ?

जीवन को बोधमय बनाने की वह सत्संग शैली क्या है जिसके मृदुल आत्मसात से तेजः कान्ति; सरस भक्ति सम्पन्न श्री और सुबुद्धि की उपलब्धि होती है।

श्री गुरु महाराज जी ने जिस सरलतम ज्ञान-प्रदान की सत्संग सुरसरि का प्रवाह किया उसमें यत् किंचित अवगाहन से ही साधक आन्तरिक शौच की दिव्यता की झलक प्राप्त कर एक मौन आकर्षण में अभिभूत होने लगता है ? जीव तमोगुण के संसर्ग जो अधोगति, रजोगुण से मध्यमगति तक ही सीमित रह रहा था वह स्वतः सतोगुण की दिव्यता से ऊर्ध्वगति वाला होने लगता है।

श्री गुरु महाराज जी ने सभी को सचेत करते हुए बतलाया है कि ज्ञान अनन्त है शास्त्र भी अनन्त है। परन्तु आयु अल्प और जीवन विघ्न बाधाओं से भरा हुआ है अतः अपने अन्दर शान्ति देने वाले सारभूत ज्ञान की खोज करो ? सम्पत्तियाँ भी अपार हैं शान्ति देने वाली दैवी सम्पदाओं से अपने को सम्पन्न करो।

अपने अध्यात्मिक ऊर्जा सम्पन्न सत्साहित्य के माध्यम से उन्होंने स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण तीनों शरीरों की सम्यक् पूर्णता पर प्रकाश डाला है। उचित आहार विहार, स्वस्थ चिन्तन तथा पूर्ण स्थिरता तीनों को सशक्त तथा जीवनोपयोगी बनायेगा।

मनुष्य कितना ही ज्ञान व वैभव सम्पन्न क्यों न हो जाये वह मात्र कागज का एक दिखावटी फूल ही बनकर रह जायेगा अगर उसके अन्दर व्यवहार की सुगन्धि और सौरभ प्रकट न हों।

इसके मूल पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने चित्त-शुद्धि की आवश्यकता पर सबसे अधिक बल दिया। जिस प्रकार यदि पानी की टङ्की का जल ही मलिन हो तो वहाँ से प्रवाहित किया जल भी मलिन ही आयेगा। नल की टोंटी को कितना ही चमकाकर रखा जाय, मूल स्रोत में ही जल के मलिन होने के कारण जल मलिन ही प्राप्त होगा।

श्री गुरु महाराज जी ने चित्त का अभिप्राय केवल मन बुद्धि या अहं से न लेकर बल्कि तीनों के सम्यक् समावेश से लिया है तथा प्रत्येक क्रिया का मूल उद्‌गम स्थल चित्त को ही बतलाया है आगे वाह्य तथा अन्तःकरण सभी को उसी के धर्म को पूरा करने का मन्त्र बतलाया है।

अतः हमारी चित्त बुद्धि तथा प्रभु की प्रीति की उत्तरोत्तर विकसित गति हमारे जीवन में पग-पग पर शरीर वाणी तथा मन के स्तर पर छलकने वाले दोषों को धीरे-धीरे रूपान्तरित करने में सहायक होती जायेगी साधना में सफलता तथा व्यवहार को सुन्दर बनाने के लिये निम्नलिखित दोषों से बचने तथा गुणों को अपनाने के लिये संयत एवम् जागरूक रहने की भी आवश्यकता पर बल दिया है।

शारीरिक स्तर के दोष—

(१) चोरी, (२) हिंसा, (३) व्यभिचार, (४) सेवा लेने की प्रवृत्ति।

ारीरिक सत्कर्म—

(१) तप, (२) दान, (३) ब्रह्मचर्य, (४) सेवा।

वाणी स्तर के दोष—

(१) असत्य भाषण, (२) निन्दा, (३) गाली, (४) आत्म-प्रशंसा।

वाणी स्तर की पवित्रता—

(१) सत्य भाषण, (२) प्रार्थना, (३) प्रिय भाषण, (४) सत्‌चर्चा या उपदेश।

मन स्तर के दोष—

(१) क्रोध, (२) ईर्ष्या, (३) मान, (४) छल।

मन स्तर की पवित्रता—

(१) क्षमा, (२) प्रेम, (३) विनम्रता, (४) सरलता।

श्री गुरु महाराज जी की निर्दिष्ट शक्ति अभियन्त्रित यह सरल साधना एक सहज रूपान्तरण करती उत्तरोत्तर दिशाबोध करती चलती है तथा मानव जीवन के परम लक्ष्य तक पहुँचने की फलदायिनी है।

श्री गुरु महाराज जी की इस सरस साधना शैली का मूल उद्देश्य आध्यात्मिक जीवन में मिठास एवम् सरसता लाना है। जीवन की परम्परागत शुष्कता को दिव्यसौन्दर्य, माधुरी एवम् ऐश्वर्य में परिणित करना है जो इसकी सच्ची माँग है।

इसीलिये परम प्रभु ने कुछ त्यागने पर ज्यादा बल नहीं दिया कारण परमात्मा द्वारा प्रदत्त तो सभी कुछ सुन्दर है केवल वह जिस मौलिक रूप में प्राप्त हुआ है वह हमारे जीवन के लिये कैसे उपयोगी हो सकेगा इसके लिये दोष दूर करना, गुणों का समावेश तथा अब भी जो कमी रहे उसे अलंकृत करना।

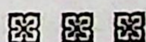
उदाहरणार्थ :—खान से निकाला सोना उसे कूटना, पीटना, काटना तथा गलानादि प्रक्रियाओं द्वारा दमकता स्वरूप प्रदान करना पुनः उसे छेदकर हीरा मोती जड़कर अपने लायक उपयोगी बनाना।

मन बुद्धि अहं सभी सुन्दर हैं इनमें समावेशित

कल्याणकारी अंश को जाग्रत करना ही साधक का श्रेय मार्ग है। परम पूज्य पण्डित जी महाराज के एक दृष्टान्त से पता चलता है कि शरीर रहते व्यवहारिक रूप से आपको हर चीज की आवश्यकता रहती है केवल साधना से वह हमारे लिये उपयोगी सिद्ध होने लगती हैं तथा हम उनसे संचालित न होकर उन्हें अपने पवित्र उद्देश्य की पूर्ति में सहायक बना लेते हैं।

एक महात्मा जी के आश्रम में बाहर से एक गाय आकर वहाँ खूँदने लगी तथा कुछ चरने लगी। उन्होंने अपने शिष्य से कहा—जा। गाय को भगा आ। शिष्य गया परन्तु गाय ने हुँकार मारी जिससे वह डरकर भाग आया। कहा—महाराज ! वह तो मुझे ही मारने दौड़ी। महात्मा जी ने कहा—अरे ! डण्डा लेकर जा; मार एक डण्डा ! शिष्य डण्डा लेकर गया और डण्डा देखते ही गाय भाग गयी। ऐसे ही क्रोध एक दिखावामात्र रह गया मूल में क्रोध का पवित्र उद्देश्य बौद्धिक स्तर भेद से प्रबोधन मात्र रह गया।

श्री गुरु महाराज जी से अनुनय विनय है कि हम सबके सम्यक् विकास के लिये दया बनाये रहें जिससे श्रद्धा का दीप जलाकर हम उन्हें पग-पग पर अपने हृदय मन्दिर में अंग संग पा दर्शन पाते रहकर जीवन को दिव्य तथा ऊर्ध्वमुखी बनाते चलें।



★ अहमदाबाद भण्डारा ★

दिनांक १२, १३ एवं १४ जनवरी १९९८

स्थान—श्री राणी शक्ति सेवा समिति
शाहीबाग अण्डर ब्रीज के पास
शाहीबाग, अहमदाबाद- ३८०००४

सम्पर्क सूत्र—श्री राजाराम पाण्डे
श्री मुरारीलाल बागला
बी/४ अलकनन्दा सोसाइटी
सिविल हास्पीटल के पीछे शाहीबाग
अहमदाबाद–३८०००४

फोन : ३७३३८१

मथुरा भण्डारा, मथुरा केन्द्र



श्री रामाश्रम सत्संग, मथुरा का वार्षिक भण्डारा दिनांक २३, २४ एवं २५ फरवरी '६८ शिवरात्रि पर सोमवार, मंगलवार एवं बुधवार को साधन प्रेस के समीप डैम्पियर नगर, मथुरा में होना निश्चित हुआ है। प्रेमीजन पधार कर आध्यात्मिक लाभ प्राप्त करेंगे ऐसी आशा है। साथ ही निवेदन है कि अपने निकट के भाइयों को भी सूचित कर दें। कृपया निम्नलिखित बातों पर विशेष ध्यान दें—

१. यह केन्द्र (श्री गुरु महाराज के स्थान पर) का आध्यात्मिक उत्सव (भण्डारा) आपका अपना है, इसी भावना को लेकर कृपया आएँ। इसी तरह छोटे-मोटे कष्टों का आभास भी आपको नहीं होगा और सेवा की प्रवृत्ति भी अन्तर में पैदा होगी।

२. जहाँ तक सम्भव हो ऐसे साथियों को जिनको सत्संग तथा गुरु महाराज की शैली में कोई रुचि न हो तथा अधिक वृद्ध, बीमार, छोटे बच्चे तथा बच्चे वाली माताओं को न लायें। उनको भी कष्ट होगा और ध्यान के समय, आवास तथा खाने के समय इनसे अन्य को भी असुविधा होना स्वाभाविक है।

३. गतवर्षों की भाँति इस वर्ष भी भाइयों के आवास एवं भोजन का प्रबन्ध सत्संग की ओर से रहेगा। परन्तु संख्या अधिक बढ़ जाने के कारण प्रबन्धक बहुत से आये हुए भाई-बहिनों का उनकी इच्छानुसार प्रबन्ध नहीं कर पाते। अतः निवेदन है जो आने वाले भाई अपना ठहरने या भोजन का प्रबन्ध स्वयं करना चाहें तो वे ऐसा करने के लिये स्वतन्त्र हैं। हमारी इच्छा तो यही है कि किसी को कोई असुविधा न हो और वे इस तरह के व्यय को भण्डारा फण्ड में कटौती करके कर सकते हैं।

४. ठहरने का स्थान गतवर्ष की भाँति अग्रवाल धर्मशाला, बंगाली घाट और आर्य समाज रोड पर सभी धर्मशालाएँ उपलब्ध हैं। जो ठहरने वाले हों वे सीधे जाकर स्थान ले लें तत्पश्चात् प्रबन्धक से आज्ञापत्र लेकर वहाँ पर दे दें।

५. सबको चाहिये कि सेवा भाव से आएँ। विशेष तौर से शिक्षक तथा उपदेशकों से निवेदन है कि वे सभी भाइयों की सुविधा का ध्यान रखें तथा अलग-अलग पूरे पण्डाल में बैठें जैसा कि श्री गुरु महाराज के समय में होता था। उनकी मौजूदगी से आस-पास बैठे हुए नये पुराने भाई गुरु-कृपा को अधिक अनुभव करेंगे।

६. ध्यान करते समय वोलेन्टियर्स आँख खोलकर सब पर निगरानी रखे
नहीं हो रहा और उसका समाधान करें। प्रबन्धकों, कार्यकर्ताओं,
में आये हुए भाई-बहिनों से निवेदन है कि सेवा व मधुरवाणी से वा
है साथ ही पास बैठने वालों को आराम मिल सकता है। इन बात

७. खाने के समय पहले स्त्रियों, बच्चों तथा वृद्धों को खाने का अ
सुविधाजनक तरीके से आप स्वयं जाएँ।

८. अपने रुपये और सामान की सुरक्षा का पूरा ध्यान रखें। कोई भी
आभूषण तथा आवश्यकता से अधिक धनराशि साथ न लायें। ट्रैवल
रुपये ला सकते हैं। ठहरने के स्थान पर बारी-बारी से एक या दो
सामान की निगरानी के लिये नियत कर दें। वे वहीं बैठकर ध्य
हैं। पण्डाल में भी ध्यान करते समय कुछ भाई आँख खोलकर बा
कोई गलत आदमी या औरत कुचेष्टा तो नहीं कर रहा है। साथ
पूरा ध्यान रखें। आपकी जरासी सावधानी आगे होने वाली हा
जिसका लाभ सभी को होगा।

९. एक विशेष प्रार्थना यह है कि पण्डाल ध्यान करने के लिये तथा प्र
से बनाया जाता है इसलिये उसमें ठहरने के बजाय दूसरे स्थानों में
से आये हुए भाई उस स्थान पर बैठ सकेंगे और उन पर आपका
पण्डाल में रहना निषिद्ध है। अतः पुराने साधकों से विशेष ख
पण्डाल में ठहरने की जिद्द न करें।

१०. एक विशेष निवेदन है कि आचार्यगण और गुरुजनों के दिन में
करें। शेष जब इच्छा हो उनको मानसिक प्रणाम कर सकते हैं
आराम मिल जायेगा जिसका हमें ध्यान देना चाहिये।

११. निवेदन यह भी है कि अन्तिम दिन प्रसाद अर्पण करने के पश्च
होकर करें यह सुविधाजनक भी होगा और समय की बचत भी
होगा कि कोई बाहरी तत्व सक्रिय नहीं हो पायेगा।

१२. भण्डारा समाप्ति के बाद धर्मशाला व ठहरने के स्थान खाली कर
हो तो व्यवस्थापक भण्डारा से अनुमति लेकर जहाँ वो कहें ठहरे
करें। भण्डारे के दौरान धर्मशालाओं में कोई भुगतान न करें।

शान्ति का रहस्य

—समर्थगुरु श्री डा० चतुर्भुज सहाय जी



अब तक जो कुछ भी हमने जाना है वह यह है—कि शान्ति प्राप्त करने के लिये पहली और मुख्य बात यह है कि हम इसको पूर्ण रूप से जान जायें कि इस भौतिक जगत में हमारा कौन सा स्थान है और इससे (सृष्टि) से हमारा क्या सम्बन्ध है। इसके प्रत्यक्ष होने पर एक हीं विचार हमारे सन्मुख रह जाता है कि हम इस ब्रह्माण्ड के ही नहीं बल्कि उसके संचालन करने वाली शक्ति के एक अंश हैं। जिस प्रकार हमारे शरीर का एक कण भी हमारे से जुदा नहीं है उसकी हानि-लाभ से हमको दुःख और सुख होता है उसी तरह संसार की प्रत्येक वस्तु तथा प्रत्येक प्राणी हमारा ही है। हम सब मिलकर एक अंग बनाते हैं जिसको ब्रह्माण्ड कहते हैं।

जब तक यह भ्रम हमारे अन्दर रहता है कि हम अलग हैं और अन्य सब जीव अलग हैं तब तक हमको दुःख रहता है और हम राग-द्वेष में फँस कर उनसे लड़ा करते हैं और अपने व दूसरों के लिए अशान्ति का आवाहन किया करते हैं। हम अशान्त रहते हैं और दूसरों को भी रखते हैं। जिस समय हमको ऐसा ज्ञान हो जाता है कि सब हमारे हैं और हम सबके हैं यह सब हमारे ही शरीर के एक भाग हैं तभी शान्ति हमारे पास आंने लगती है और हमारी हो जाती है।

इस एक ख्याल के पुख्ता करने के लिये तथा उसको अनुभव में लाने के लिये बड़े ही त्याग की आवश्यकता होती है यह त्याग वाणी से कहने मात्र का नहीं होता बल्कि दिल का होता है। हमारा दिल पूर्ण रूप से ऐसा बन जाना चाहिये कि हमारा जीवन और हमारे काम दूसरों के लिये हैं न कि अपने लिये। वास्तव में स्वार्थ बुद्धि का त्याग ही "त्याग" कहलाता है न कि कार्यों का त्याग। जैसा कि गीता में आया है—

विहाय कामांन्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहंकाराः स शान्तिमधिगच्छति ॥

अर्थ—जो कामनाओं को त्याग कर, निस्पृह होकर तथा ममता और अहङ्कार को छोड़ के अपने कार्य किया करता है उसी को शान्ति प्राप्त होती है।

हम कर्म करते हुंये (चाहे वह कर्म सांसारिक हों अथवा पारमार्थिक) जब तक अपने लाभ का ख्याल दिलमें रखेंगे, जब तक ममता और अहङ्कार की धुरी पर हमारे कर्मों का चक्र घूमता रहेगा तथा जबतक हम अपने को दूसरों से अलग समझते हुये सुख-दुःख के बन्धन में जकड़े रहेंगे जब तक शान्ति हमारे भागों में नहीं आ सकती। उस समय तक बेचैनी की जिन्दगी वसर करते हुए हम दुःखी रहेंगे और इस अनन्त ब्रह्माण्डीय भण्डार में से असन्तोष अपने लिये खींचते रहेंगे और उसका ढेर अपने अन्दर इकट्ठा कर लेंगे।

शुद्ध विचारों को अपने में भरना, उनके अनुसार जीवन बनाना, हर समय उनकी जाँच-पड़ताल करना, तथा अपनी उन्नति के लिए चिन्तित रहना ही शान्ति वा सन्तोष की प्राप्ति के साधन हैं। यह साधन हमको आप्त (पूर्ण महापुरुष) के द्वारा मिल सकते हैं। उनके समीप बैठने से ही हमको ईश्वर पर विश्वास हो सकता है। यही ईश्वरीय एक ही सत्ता हमारे और दूसरों के अन्दर व्यापक हुई-हुई हम सबका संचालन कर रही है। इसका ज्ञान सत्संग से मिलता है। पुस्तकों के पढ़ने वालों का मौखिक होता है इसीलिये वह सब कुछ जानते हुये, और दूसरों को उपदेश देते हुये भी समय आने पर परीक्षा में उतीर्ण नहीं होते यह उनके केवल विश्वास की कमी है।

पण्डित और मशालची इनको सूझे नाँहि ।
औरन को करैं चान्दना आप अंधेरे माँहि ॥

जिस समय ऐसा यकीन हो जाता है कि सर्व दुःख निवारणी माँ हमारे समीप ही है उस समय हम निर्भय हो जाते हैं, उसके डर से कोई ऐसा काम भी नहीं कर सकते कि जिसका शास्त्रों ने निषेध किया हैं और जिस समय हमको ऐसा पूर्ण विश्वास हो जाता है कि जैसी वह हमारे समीप है और हमारी सब तरह से रक्षा कर रही है वैसा ही वह सब के साथ है और सबका ही पुत्रवत् पालन कर रही है उसी वक्त हमारे दिल में दूसरों के लिये प्रेम उत्पन्न हो जाता है और हमको सब अपने ही नजर आने लगते हैं।

साधारण जीवन बिताने वाले भी ऐसे लोग जो स्वार्थी नहीं हैं, तथा जिनका काम दूसरों को ही सुखी बनाना है वह अन्यों की अपेक्षा खुश दिखाई देंगे उनकी जिन्दगियाँ सुखमय बन जाती हैं, उन्हें शोक बहुत कम होता है और वह अपनी इसी धुनि में अपने को भूल जाते हैं इसलिये "पर-सेवा" ही अहङ्कार और ममता के त्याग की सीढ़ी है और सुख और सन्तोष के प्राप्त करने के लिये औषधि है।

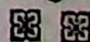
जो लोग अपने ही लिये जीते हैं, अपने ही लिये कमाते हैं, तथा अपने ही लिये सारे कार्य करते हैं वह जगत में दुःखी और असन्तोषी रहेंगे जब तक वह अपने इस स्वभाव को बदल न डालेंगे। केवल अपने ही लिये सुख का ढूँढ़ने वाला मनुष्य कभी सुखी नहीं रह सकता यह निश्चय ही है।

जब हमको इस बात का प्रत्यक्ष अनुभव हो जायेगा कि यह सारी दुनिया हमारे उस जीवन में शरीक है कि जो हमारे अन्दर होकर बह रहा है उस समय हम समुद्रवत गम्भीर और शान्त हो जायेंगे। चुलबुली-चञ्चल स्वभाव वाली नदियाँ आयेंगी और हम से मिलते ही अपने स्वभाव को त्याग हमारे जैसी बन जायेंगीं। इस अवस्था में पहुँच कर हम खुद भी शान्त रहेंगे और दूसरे अपने मिलने वालों को भी शान्त कर देंगे।

तात्पर्य यह है कि वासनाओं के त्याग से ही शान्ति मिलती है। इसी शान्ति को असली ज्ञान कहना चाहिये। यही शान्ति मुक्ति है। यही भगवद् दर्शन है। हमको मृत्यु से पूर्व ही इस शान्ति को अवश्य प्राप्त कर लेना चाहिये। इसकी प्राप्ति का साधन निष्काम उद्योग है, इसके द्वारा ही यह सुलभ होती है। ये ही मनुष्य जीवन का उद्देश्य है।

शक्नोती दैव यः सोढुं प्राक् शरीर विमोक्षणात् ।
काम क्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः ॥

अर्थ—शरीर छूटने से पहले ही जो काम-क्रोध के वेग को थाम लेने में समर्थ होता है वही मनुष्य योगी है वही सुखी है।



समाचार इधर-उधर के



गन्दी आदतों का होम्योपैथिक उपचार

कामुकता-पूर्ण अश्लील-चिन्तन—स्टेफिसैग्रिया

कसमें खाना और कटु भाषण करना—एनाकार्डियम

गाली देना और झगड़ते रहना—लाइकोपोडियम

गाली देना और अश्लील हरकतें करना— हायोसियामस

मुंह की विचित्र भाव भंगिमा बनाना— हायोसियामस

होठों को दाँतों से चबाते रहना— आरमट्रिफिलियम

इधर-उधर थूकते रहना— सिना

दाँतों को कड़मड़ाते रहना— फाइटो लक्का

दाँतों से नाखून काटना— आरम ट्रिफिलियम

खर्राटे लेकर सोना— लेमना माइनर

सोते समय दाँत पीसना— सिना

नाक में उँगली डालकर खुजलाना— आरम ट्रिफिलियम

नाक को उँगली से रगड़ते रहना— सिना

बच्चों का अँगूठा चूसना— कैलकेरिया फास

बार-बार हाथ पाँव धोते रहना— सिफिलिनम

शराब पीने की अदम्य इच्छा— सिफिलिनम

तम्बाकू (खैनी) खाने की प्रबल इच्छा— डैफिनी इण्डिका

सिगरेट-बीड़ी पीने की आदत— टैबेकम (उच्चशक्ति)

मिट्टी या खरिया (चाक) खाना— कैलकेरिया कार्ब

मान्स खाने की अत्यधिक चाह— फेरम मेट

अधिक मिर्च-मसाले खाने की इच्छा— एलियम सैटाइवा

अधिक तली-भुनी चीजें खाने की इच्छा—एल्यूमिना

अधिक से अधिक खाने की इच्छा— आयोडियम

बार-बार खाने की इच्छा— सिना

मीठा अधिक खाने की लालसा— अर्जेन्टम नाइट्रिकम

नमक अधिक खाने की चाह— नेट्रमम्यूर

अधिक खट्टी चीजें खाने की इच्छा—वेराट्रम एल्बम

स्वभाव-सुधार की चिकित्सा सम्बन्धी आवश्यक बातें

नोट—१. मानसिक रोगों अथवा पुराने रोगों की चिकित्सा करने में उच्चशक्ति [सामान्यतया १००० से १०,००० शक्ति तक की औषधि प्रयोग करना चाहिये। प्रातः खाली-पेट आधे-आधे घण्टे पर ३ खुराक (८-१० गोली की प्रति खुराक) धीरे-धीरे चूसना चाहिये। उस दिन अन्य कोई औषधि न लें।]

२. दवा सेवन के पश्चात् १ घंटे तक कुछ न खाय।

३. जहाँ तक सम्भव हो दवा-सेवन काल में एलोपैथिक दवाओं अथवा तामसिक भोजन, तेज गरम मसाले और बहुत चटपटी चीजें न लें।

४. पुराने और कठिन रोगों की चिकित्सा स्वयं न करके किसी सुयोग्य चिकित्सक की राय लेना अच्छा होता है।

५. १००० शक्ति की औषधि प्रतिदिन एक खुराक और इससे ऊँची शक्ति की औषधि १५ दिन में एक दिन लेना चाहिये।

६. विशेष जानकारी हेतु सम्पर्क सूत्र :

डा० पी. के. द्विवेदी
धर्मार्थ होम्योपैथिक चिकित्सालय
सनातन धर्म मंदिर, सुभाष नगर (मैन मार्केट)
मेन—नजफगढ़ रोड, नयी दिल्ली

रामाश्रम सत्संग, मथुरा के उपकेन्द्रों के सत्संग कार्यक्रम

सूरत	—	दिनांक ६, ७ एवं ८ जनवरी १९९८
	—	स्थान—अग्रवाल सेवा सदन, घुड़दौड़ रोड—सूरत
बड़ौदा	—	दिनांक ९, १० एवं ११ जनवरी १९९८
	—	स्थान—प्रजापति हाल—स्वाति चार रास्ता न्यू समा रोड—बड़ौदा
बुलन्दशहर	—	दिनांक २६, २७ एवं २८ जनवरी १९९८
	—	सम्पर्क सूत्र—श्री फतेह सिंह मध्य गंगा कैनाल कालोनी, बुलन्दशहर
हापुड़	—	दिनांक २८, २९ एवं ३० जनवरी १९९८
		सम्पर्क सूत्र—श्रीजयपाल सिंह जाखड़ ग्राम-पो० सिकन्दरपुर काकौड़ी जिला—गाजियाबाद
मेरठ	—	दिनांक ३०, ३१ जनवरी एवं १ फरवरी १९९८
		सम्पर्क सूत्र—डा० जे० एस० त्यागी ५, प्रोफेसर कालोनी, मेरठ

शोक समाचार

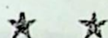
अत्यन्त दुःख के साथ सूचित किया जाता है कि—

कल्याण के श्री जगदीश चन्द्र अग्निहोत्री जी के बड़े भाई का २२ अक्टूबर को, राँची के श्री विरेन्द्र कुमार सिन्हा जी के लड़के निलेश कुमार का ३० अक्टूबर को, श्री नित्यानन्द जी का सुचनगर मुरादाबाद में ६ नवम्बर को, मुम्बई मलाड के श्री रामाकान्त मौर्य जी की धर्मपत्नि का ३ नवम्बर को, घोड़ा डोंगरी बैतुल के श्री सुन्दरलाल जी मालवीय का ३० अक्टूबर को, समस्तीपुर के श्री रामदयाल महतो जी की पौत्री का ८ अक्टूबर को, सलैया के मन्नू यादव का ३ नवम्बर को, छत्तरपुर के श्री राजनाथ जी के ससुर जी का २४ अक्टूबर को, वढ़ौना के श्री चतुर्भुज शर्मा जी के ससुर जी का २० अक्टूबर को, जमुई के श्री शंकर सिंह जी के लड़के का १३ नवम्बर को, आलापुर लखीसराय के श्री बाबूलाल साहू जी के पिताजी का ५ अक्टूबर को, बिजावर के पं० श्री चिन्तामन पटैरिया जी का २ नवम्बर को, बनारस के श्री महावीर प्रसाद जी के पिताजी का २० जुलाई को और भतीजे का २३ अप्रैल को, सागर के श्री तुलसीराम जी सैनी के चाचाजी डा० वालमुकन्द सैनी जी का १६ नवम्बर को, रूपैठा (रोहतास) के डा० राम अवदान शर्मा जी की धर्मपत्नी का २४ अक्टूबर को, लीलाकुट्टी के श्री स्वरूपानन्द तिवारी जी के पुत्र का ११ नवम्बर को, आलमपुर के श्री पारसनाथ विश्वकर्मा जी की माताजी का १ नवम्बर को, धनबाद के श्री लखनलाल जी की धर्मपत्नी का २५ नवम्बर को, विलासपुर के स्वामी चरणसिंह जी का १४ अक्टूबर को, करगहर के श्री राम अवतार साधु जी की माताजी का २१ अक्टूबर को, श्री राम अवदान शर्मा जी की धर्मपत्नी का २४ अक्टूबर को, श्री टेकराम जी की माता जी का २३ नवम्बर को, सदरसा के श्री सुखनन्दन कामत जी के दामाद का ३ नवम्बर को, उन्नाव के श्री एस० डी० शर्मा जी की सास का १५ नवम्बर को, बड़ौदा के श्री केशवलाल जी के पुत्र का ८ अगस्त को, मुँगेर के श्री शिवनन्दन प्रसाद साहु जी का २६ मार्च को, पीपरा खास के श्री राधा कृष्ण प्रसाद जी की बहन का ४ अगस्त को, यारपुर के शैलनाथ उपाध्याय जी की माता जी का ११ नवम्बर को, जमपुर के श्री राजेन्द्र कुमार मिश्रा जी का ६ नवम्बर को, उरई के श्री शिवनारायण उपाध्याय की चाची जी का १५ अक्टूबर को, भाडलपुर (कन्नौज) के श्री मनोज कुमार मिश्र जी के पिताजी का ५ नवम्बर को, डेहरी ऑनसोन के श्री ओमप्रकाश चौधरी जी के ससुर का २६ नवम्बर को, मुसहा के श्री ठाकुर प्रसाद बघेल जी की धर्मपत्नी का १५ अक्टूबर को, मनेर के सरयू प्रसाद जी के साला का ७ सितम्बर को, चुरू के मालसिंह जी की माता जी का १६ नवम्बर को, कानपुर के श्री सोमेश्वर दयाल कपूर जी का १९ नवम्बर को, गंगापुर सिटी के श्री भगवानदास शाक्यवाल जी की पुत्री का ६ दिसम्बर को, मटिया के श्री कामेश्वर प्रसाद वर्णवाल जी का १९ अक्टूबर को, बलिया के स्व० दयाशंकर जी के दामाद श्री कृष्ण मोहन श्रीवास्तव जी का १८ नवम्बर को, सिवान के श्रीमती लक्ष्मीदेवी का २२ नवम्बर को, सीकर के श्रीमती आशा देवी शर्मा जी की ननद का ६ नवम्बर को, श्री सर्वानन्द तिवारी जी के छोटे भाई का ११ नवम्बर को स्वर्गवास हो गया।

परम पूज्य गुरु महाराज जी से प्रार्थना है कि दिवंगत आत्माओं को शान्ति एवं शोक सन्तप्त परिवारीजनों को धैर्य प्रदान करें।

राजस्थान तथा बिहार सरकार द्वारा स्वीकृत

❁ साधन के नियम ❁



१. गूढ़ तथा अनुभवी गुप्त रहस्यों को सरल भाषा द्वारा जनता तक पहुँचाना तथा सदाचार की शिक्षा देना "साधन" का मुख्योद्देश्य है।

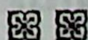
२. साधन प्रत्येक मास की २०-२१ तारीख को प्रकाशित होता है। जिन ग्राहकों को पत्रिका ३० तारीख तक न मिले, उन्हें डाकखाने तथा कार्यालय से तलाश करना उचित है। अंक न मिलने पर एक माह के अन्दर सूचित करने पर अंक दोबारा भेज दिया जायेगा।

३. साधन में आध्यात्मिक, सामाजिक तथा शारीरिक उन्नति के लेख ही छापे जायेंगे। राजनैतिक तथा अश्लील लेख भेजने का कोई भी सज्जन कष्ट न करें।

४. लेखों को घटाने बढ़ाने और छापने न छापने का अधिकार सम्पादक को रहेगा, परन्तु लेख प्रकाशित नहीं होने पर सम्पादक उत्तरदायी न होगा। लेख सरल भाषा में कागज के एक ओर ही स्वच्छ लिखे हों।

५. ग्राहकों को पता व ग्राहक नम्बर स्वच्छतापूर्वक लिखना चाहिए। उत्तर के लिए टिकिट भेजना उचित है। बिना ग्राहक नम्बर के विलम्ब हो सकता है।

६. साधन का वार्षिक मूल्य रु० ६०/– है। एक प्रति का मूल्य रु० ५.०० है। केवल अगस्त १९९७ विशेषांक का मूल्य १२.०० है। एक वर्ष से कम के ग्राहक नहीं बनाये जायेंगे।



Reg. No. of R. No. 2358/57

Postal Regd No. MTR - HO - 12

Licence No. 001/ 97 to Post without prepayment



प्रबन्ध सम्पादक : आलोक कुमार, साधन हिन्दी मन्थली कार्यालय, मथुरा.
प्रकाशक : हेमेन्द्र कुमार, साधन हिन्दी मन्थली कार्यालय, डैम्पियर, नगर, मथुरा
मुद्रक : हेमेन्द्र कुमार, साधन प्रेस, डैम्पियर नगर, मथुरा.

तार का पता - साधन प्रेस • टेलीफोन - 404545, 404066

साधन

Vol 65 1997 No 1 - 6